Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक :
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
सज्जा :
सुमीता

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 25, अंक : 381, 16 से 31 मई, 1985

भावावेग की कहानियां

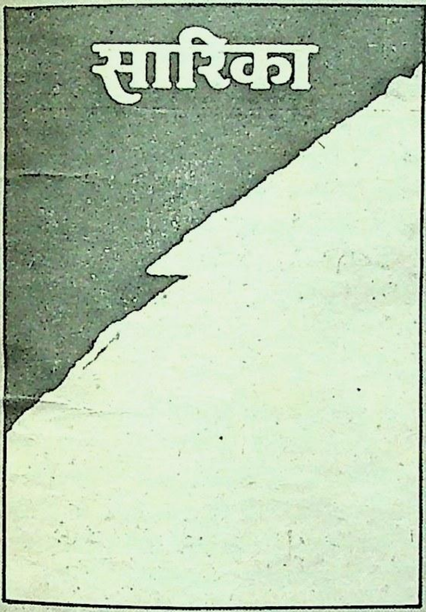

आवरण : सुमीता

कहानियां-उपन्यास

9 नागिन (बंगला) :
ताराशंकर बंद्योपाध्याय
12 अंतरंग (फ्रांसीसी)
ज्यां पॉल सार्त्र
17 चित्रलेखा :
भगवतीचरण वर्मा
21 जरा-सी बात (उर्दू) :
इस्मत चुगताई
26 पुनरुत्थान (रूसी)
लेव तात्स्तोय
30 बंसीकाका (उर्दू) :
बलराज वर्मा
34 न हन्यते (बंगला)
मैत्रेयी देवी
38 स्वप्न की तरह :
आशीष सिन्हा
47 डोरियन ग्रे का चित्र (अंग्रेजी) :
ऑस्कर वाइल्ड
54 आदमी आत्महत्या करेगा:
राजकुमार गौतम
58 सांपों की पहाड़ी (फ्रांसीसी):
गाइ द मोपासां
60 दीवारों वाला लैंडस्केप (अंग्रेजी)
एस. जे. फिट्जेरात्ड
63 शिशुतीर्थ (बंगला) :
रवींद्रनाथ ठाकुर

विशिष्ट आयोजन

52 धरती बरसात मांगती है :
रमेश बत्तरा
64 अन्ना केरेनिना को तात्स्तोय की तलाश है :
ऋजेश्वर मदान

लघु रचनाएं

15 संघर्ष की शुरुआत :
रजनीश कुमार
25 अजन्मे की मौत :
हेनरी जोयात
37 यही सच है :
पृथ्वीराज अरोड़ा
51 तलाक :
कैलाश सतभैया

परिचर्चा

45 चरम आवेग के काम, कितने सही कितने गलत :
सुशील वर्मा

अन्य आकर्षण

6 आपकी बात
8 अपनी बात
66 सांप का पिटारा :
हशमत
70 बतंगड़ :
शरद जोशी
72 पखवारे की पुस्तकें :
डा. धनंजय, मस्तराम कपूर
74 तीसरी नजर :
राकेश वत्स

संपादकीय पता : सारिका, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

फिल्म कथा साहित्य अंक

ग्लैमर की अंधी गली के साथ-साथ

फिल्म साहित्य कथा अंक में निहित सामग्री अपनी उत्कृष्टता के कारण सहज ही आकर्षित कर गयी. **सारिका** का यह अंक सिनेमा के नाम पर नाक-भौं सिकोड़नेवाले उन बुद्धिजीवियों को कड़ी चुनौती है, जो सिनेमा को महज ग्लैमर की खाई मान बैठे.

'ग्लैमर की अंधी गली से बाहर टंगे कुछ नाम' में भीड़ से जुदा कलाकारों का जिक्र बदलते सिनेमा ट्रेंड के अनुरूप ही उपयुक्त है. यहां उन सितारों का जिक्र भी किया जाना चाहिए, जो जब कभी ग्लैमर की अंधी गली से निकलकर कला के उजास भरे रास्ते पर आये हैं, बिल्कुल सफल रहे हैं. 'हाथ की सफाई' और 'हत्यारा' सरीखी हिंसात्मक फिल्मों में धूम मचानेवाले विनोद खन्ना गुलजार की 'मीरा', 'अचानक' और अरुणाविकास की 'शक' में एक अत्यंत संवेदनशील अभिनेता के रूप में उभर कर आये, इसी तरह से 'डॉन' के तस्कर अमिताभ ऋषिकेश मुखर्जी की 'आलाप' में गायक-ट्रक-ड्राइवर की भूमिका को जीवंत करते नजर आये. वक्त आने पर ग्लैमर के चोले को उतार फेंक कला का परिधान अंगीकार करने के लिए ये अभिनेता बधाई के हकदार हैं.

0 शशांक दुबे, उज्जैन (म. प्र.)

समझौतों भरा फिल्मी लेखन

संपादकीय के शब्दों "फिल्म जैसे स्थूल और दृश्य माध्यम" द्वारा आरंभ तथा अंतिम पृष्ठ के वाक्यांश "फिल्मों में भी जो एक नयी कलात्मक गहराई देखने को मिली" द्वारा अंक की समाप्ति स्वस्थ दृष्टिकोण का द्योतक है. यह सोच अब बेमानी हो गयी है कि किसी छपी हुई किताब या कहानी पर बनी फिल्म अन्य फिल्मों से अधिक महत्वपूर्ण होती है.

सिनेमा और साहित्य की भाषा को नजदीक लाने का प्रयास फिल्मकारों द्वारा लगातार होता रहा है. गोदार की कोई फिल्म किसी साहित्यिक कृति पर आधारित नहीं है, लेकिन ब्रेथलेस, ल' पेटी सोल्दात और ल' केरेबिनिए को परंपरागत फिल्म की तरह देखा ही नहीं जा सकता. एक पुस्तक की तरह ही पढ़ा जा सकता है. क्योंकि प्रत्येक बिंब शब्द की तरह एक संकेत है, किसी स्थूल वस्तु को दिखानेवाली तस्वीर मात्र नहीं. हिंदी में सईद मिर्जा की फिल्में फिल्मकार के अनुभव जगत से पूरी तरह जुड़ी हुई फिल्में हैं, लेकिन साहित्यिक कृति पर आधारित नहीं. ऋत्विक घटक की फिल्में कौन से साहित्यिक मूल्यों पर खरी नहीं उतरतीं? सत्यजित राय की तरह अपने आपको रवींद्र साहित्य से सराबोर करके फिल्म रचनेवाला तो कभी-कभी ही आ पाता है. अक्सर कहानी तथा उपन्यास का प्रयोग विचार या बीज के रूप में ही हो पाता है. अब्बास द्वारा स्वयं लिखी तथा निर्देशित की गयी फिल्में भले ही निर्माण की दृष्टि से बेहतर न हों, परंतु विचार की दृष्टि से उत्तम हैं, परंतु जब वे राजकुमार के साथ समझौता करते हुए 'बा' लिखते हैं, तब प्रत्येक स्तर पर अपने आप को रसहीन करते हैं. इसी प्रकार कमलेश्वर और राही मासूम रजा, गलत-सलत समझौते करते हुए आज कहीं के भी नहीं रहे हैं. लेखक, फिल्म कला के ज्ञान द्वारा अपने लेखन को समृद्ध करता है और नये तरह के लेखन द्वारा ऐसी विधा विकसित कर सकता है, जहां फिल्मकार लेखक की पूरी कृति, प्रत्येक शब्द पर निर्भर रहे. इस शैली का विकास 'हिरोशिमा मान अमोर' और 'लास्ट इयर इन मरियनबाद' के लेखक राब्व ग्रिये ने किया है.

साहित्य और सिनेमा की भाषा का अंतर लगातार कम करने की ओर हिंदी के साहित्यकारों को ध्यान देना होगा. मैं ऐसे छः फिल्मकारों के नाम गिना सकता हूं, जो अच्छी फिल्में तो बना ही रहे हैं, हिंदी का आधुनिकतम अच्छा साहित्य रुचि लेकर और खोजकर पढ़ते हैं. शायद ऐसे छः साहित्यकारों के नाम गिनाना कठिन होगा, जो खोजकर और टिकट खरीदकर अच्छी फिल्में देखते हों और साथ ही अच्छी कहानियां, कविताएं या उपन्यास लिखने में भी लगे हों. साढ़े तीन विदेशी फिल्में देखकर लेखन को तिलांजलि दे देना तथा फिल्म समीक्षा या पटकथा के क्षेत्र में प्रवेश का प्रयत्न लेखक को अलेखक ही बना सकता है. फिल्म की रचनात्मकता का समझकर उसका रचनात्मक लेखन में प्रयोग ही साहित्यकार का सही उद्देश्य हो सकता है.

0 मनमोहन चड्ढा, पुणे

'सारिका' की अधूरी बात

'सारिका' का 'फिल्म साहित्य कथा अंक' अच्छा लगा. इसमें आठ कहानियां अथवा उपन्यास के जो अंश दिए हैं, वे भारतीय साहित्य में 'मील का पत्थर' साबित हुए हैं. 'विश्व की दस कालजयी फिल्मों' का उल्लेख करके आपने सिनेमा के गौरवशाली इतिहास के पन्नों को सबके सामने खोल दिया है.

इसी क्रम में एक बात और, आज का सिनेमा ग्लैमर तथा अतियथार्थवाद की ओर निरंतर बढ़ता जा रहा है. जिसमें किशोर मन पर इनकी गहरी छाप अंकित हो रही है. इस नग्नता, अश्लीलता और फूहड़पन के साथ मारधाड़, बलात्कार, डाके-हत्या आदि से युक्त घटनाओं को आधार बनाकर सिनेमा बनाना आम बात हो गयी है. यह समाज के लिए कितना सुखकर है? इस विषय पर 'सारिका' में सामग्री का अभाव खटका.

'सारिका' एक मुखर और जागरूक पत्रिका रही है. इसकी लोकप्रियता का कारण इसकी सहज, स्वाभाविक और रोचक अभिव्यक्ति हो रही है, किंतु इस अंक में पाठकों के साथ अन्याय हुआ.

● डा. धर्मध्वज त्रिपाठी, रायबरेली

कहानी एक पुराने किले की

'सारिका' का **'फिल्म कथा साहित्य अंक'** ऐसा लगा मानों भारतीय भाषाओं के साहित्य के रंग-बिरंगे छींटे इस नन्हीं पत्रिका के पन्नों में पड़ गये. उन्हें पढ़ते समय दिल बाग-बाग हो उठा. एक से बढ़कर एक साहित्य हमारे यहां उपलब्ध है, पर जैसा कि **अपनी बात** में आपने कहा है, 'हिंदी की साहित्यिक कृतियां उनके व्यवसाय को चौपट तो कर सकती हैं, लेकिन बढ़ा नहीं सकतीं.' बहरहाल, अपना एकमत आपको लिखती हूं. 'काबुलीवाला' पर बंगला और हिंदी दोनों में फिल्में बनीं, पर अगर आप गुरुदेव की कहानी 'क्षुधित पाषाण' की कथा भी छाप देते तो अच्छा रहता. हो सकता है स्थानाभाव के कारण यह आप न कर पाये हों. सन् 1961 में देखी तपन सिन्हा की यह फिल्म मैं अब तक नहीं भूल पायी हूं. मूल कथा में भी सुंदर इसका रूपांकन हुआ है. उस जमाने में देश-विदेश के शायद पुरस्कार भी जीते थे.

आप अपनी पत्रिका में इसकी कहानी अवश्य प्रकाशित करें. अहमदनगर के पुराने किले को देखकर गुरुदेव ने किस सुंदर कहानी का सृजन किया, यह आपके सुधी पाठक जान सकेंगे.

0 ... जे. नागावकर, बंबई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरानी रचना उर्फ बचत का सौदा

सारिका: अंक 376 के मुखपृष्ठ सहित शेष पृष्ठों का अवगाहन करने तक मुख से मुस्कराहट विलीन नहीं हुई. बहुचर्चित जासूसी कांड से हिंदी को बड़ा फायदा हुआ है, वह यों कि **शरद जोशी** का दिमाग जासूसी साहित्य लेखन के प्रति सक्रिय हो गया है. निश्चय ही देवकीनंदन खत्री एवं गहमरी के मानक भंग करने की प्रतिभा **मुद्रिका रहस्य उर्फ असली किस्सा शकुंतला का** के लेखक में है. इस रहस्योद्घाटन का श्रेय सारिका को है, अस्तु बधाई. **के. पी. सक्सेना** से और अच्छे व्यंग्य की उम्मीद थी. **नरेंद्र कोहली** की एक ही रचना देकर आपने पाठकों को टुंगाया है. शायद **मुद्गलजी** ने भी **'सदाचार का तावीज'** बांध रखा है, जिससे यह आवाज निकल रही है—**"परसाई के भाव बढ़ गये हैं, पुरानी रचना छापकर पारिश्रमिक तो बचा लें."**

0 रामेश्वरसिंह सोलंकी, इंदौर

व्यंग्य की विशिष्ट प्रस्तुति

देशी और विदेशी कथाकारों की चुनिंदा रचनाओं के गुलदस्ते के रूप में **सारिका** का **व्यंग्य कथा विशेषांक** दिल और दिमाग—दोनों को तरोताजा करनेवाला लगा. साथ ही मजाक की मिठास अपने अंदर झांकने के लिए एक खूबसूरत झरोखा भी खोलती लगी.

रचनाकारों में **नरेंद्र कोहली, के. पी. सक्सेना, हरिशंकर परसाई** और **विनोद शंकर शुक्ल** अधिक असरदार हैं तो **अंतोन चेखव** और **पी. जी. वुडहाउस** ज्यादा वजनी. उल्लेख्य है कि कोहलीजी ने 'घर की मुर्गी दाल बराबर' मसल की मजेदार व्याख्या की है. उधर सक्सेनाजी ने राजनीति के इंद्रधनुषी रंग का विमोहक विच्छेदन किया है.

मराठी जैसी दूसरी भाषाओं के व्यंग्यकारों की रचनाओं को भी (लघु व्यंग्य के अतिरिक्त) इस अंक में सम्मिलित करना समीचीन था. शायद तब उपहार अंकों का यह क्रम और कमनीय लगता.

फिर भी, व्यंग्य जैसी सशक्त विधा की विशिष्ट प्रस्तुति के लिए सारिका गौरव की अधिकारिणी है.

0 शितिकंठ, कुमारबाग (पं. चंपारण)

व्यंग्य और आदमी की अहमियत

सारिका का **'व्यंग्य कथा विशेषांक'** अपने आप में पूर्ण और सार्थक अंक लगा. साहित्य का वह पक्ष, जो तकरीबन अनछुआ और हंसने का प्रसाधन ही समझा जाता था, परंतु जिसमें अब हम जीवन की सार्थकता को ढूंढ़ने का प्रयास कर रहे हैं. इस व्यंग्य को सार्थक बनाने में आंदोलन परसाईजी ने दिया और जिसकी पतवार शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल और रवींद्रनाथ त्यागी ने खेना शुरू किया हुआ है.

आज का व्यंग्य हंसी या मुस्कराहट का तलबगार नहीं है, बल्कि आज जिस प्रकार आदमी अपनी परिभाषा बदलकर जी रहा है, अपनी मान-मर्यादाओं का अतिक्रमण करके किस प्रकार मानवीय मूल्यों का मर्दन कर रहा है, इन सब पहलुओं पर सोचने के लिए आतुर है. यह बात राजनैतिक वातावरण, साहित्यिक-क्षेत्र और सामाजिक दायरे में, सब जगह बराबर लागू होती है.

सारिका के इस अंक ने वास्तविकता को उजागर कर आदमी की अहमियत का परिचय दिया. वास्तव में आदमी इतना हल्का है कि वह फूंक से उड़ सकता है और वह इतना ढीठ भी है कि चाहो तो चक्रवात से भी टस से मस नहीं होगा. कहने का अभिप्राय यह है कि पैसे फेंककर उससे देश की अस्मिता से खिलवाड़ करवा लो या फिर पद का मोह, जहां उसे दुनियादारी की सब चीजें मिलती हों.

0 रामरत्न शर्मा, दिल्ली

भाषा के पचड़े को अलग करके

'अपनी बात' (व्यंग्य कथा विशेषांक) में आपने कहा है कि हिंदी साहित्य के पास अच्छे और महत्त्वपूर्ण व्यंग्यकारों की कमी नहीं है. साथ ही आपने इस वर्ष विशेष रूप से हिंदी के व्यंग्य लेखन की समृद्धि को ध्यान में रखते हुए कुछ लेखकों की रचनाओं को पुनर्प्रकाशित भी किया इस अंक में. किंतु कुल बाइस व्यंग्य रचनाओं में से पूरी दस रचनाएं अनूदित (दूसरी भाषाओं से) देखकर मन आनंदित उतना नहीं रह सका, जितना कि 'अपनी बात' को पढ़कर हुआ था.

इस अंक को पढ़कर यही महसूस हुआ है कि हिंदी साहित्य के पास अच्छे और महत्त्वपूर्ण व्यंग्यकारों की निश्चय ही कमी है. और यह भी कि अभी गिने-चुने लोग ही लिख रहे हैं हिंदी में. वैसे तो, प्रसिद्ध व्यंग्य चित्रकार मारयो का मुखपृष्ठ पर व्यंग्य चित्र मुझे भी हर दृष्टि से अच्छा ही लगा, पर यह भी लगा कि विशुद्ध भारतीय व्यंग्य चित्रकार शायद इतने समर्थ नहीं कि उनका चित्र 'सारिका' के मुखपृष्ठ पर आ सके.

हां, भाषा आदि के पचड़े को अलग करके देखने पर 'सारिका' का यह व्यंग्य अंक निश्चय ही शानदार व मजेदार अंक है.

0 सुशील कुमार 'अकेला', खगड़िया

भ्रष्टाचार, फिल्म और धंधा

सारिका का यह अंक व्यंग्य विधा को निश्चित रूप से उभारता है. **हरिशंकर परसाई** का **'सदाचार का तावीज'** विशेष रूप से ध्यानाकर्षित करता है. सच में भ्रष्टाचार समस्त देश में ऐसा फैला है कि इसका अंत होना मुश्किल-सा हो गया है. इसे जब-जब समाप्त करने का प्रयत्न किया जायेगा, यह तब-तब और भी जटिल एवं उलझता चला जायेगा. **इम्तियाज अली** का **'फिल्म बनाने का आसान तरीका'** और **इब्ने इंसा** का **'फिल्म माई का लाल सेंसर होती है'** ने निराश किया. व्यंग्य के नाम से इसे अभिहीत नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इसमें वे चीजें नहीं हैं, जो मानव-जीवन से संबंधित हैं. इसके ठीक विपरीत **बाला दुबे** का **'बदलना धंधा डाकू गब्बर सिंह का'** ने देश के तमाम असामाजिक तत्त्वों को खोलकर हमारे सामने प्रस्तुत किया है, जिसमें नेता भी हैं, डाकू भी, कवि-लेखक भी हैं, प्रकाशक भी, पुलिस भी है और श्रोता भी. इनके कर्मपक्ष को चरितार्थ किया है, जो आज-कल ये समुदाय कर रहे हैं. इन सारे तत्त्वों को बड़े ही कुशल ढंग से एवं एक कहानी के रूप में बुनकर बालाजी सचमुच बधाई की पात्रा बनीं. **(बालाजी महिला नहीं, पुरुष हैं—सं)**

0 मुकेश गुप्त, भागलपुर

लघु कथाओं की कमी

'व्यंग्य कथा विशेषांक' में काफी मेहनत व शोध के पश्चात ही प्रसिद्ध लेखकों व व्यंग्यकारों की रचनाओं को स्थान दिया गया है. तभी संपूर्ण रचनाएं एक से एक अच्छी-सी जान पड़ रही हैं. कुछ विदेशी लेखकों की रचनाएं पढ़ी हुई थीं, दुबारा पढ़ने को मिलीं फिर भी अच्छी लगीं सामयिक होने के कारण.

पिछले पांच विशेषांकों से अत्यंत अच्छी-अच्छी रचनाओं के विशेषांकों ने जहां हमें स्वस्थ मनोरंजन व दिमागी 'रोगन' दिया है, इसकी बहुत खुशी भी है; वहीं कुछ निराशा भी हुई है. वह इस कारण कि लघुकथाओं को पर्याप्त स्थान नहीं मिल पा रहा है. कृपया लघु कथाओं को पर्याप्त स्थान दें.

आपकी सज्जाकार **श्रीमती सुमिता जी** के इस विशेषांक में रेखाचित्र काफी अच्छे लगे.

0 रतनलाल राहचंदानी, जोधपुर □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

विश्व में निर्माण या विनाश की जितनी भी बड़ी घटनाएं घटी हैं, उनके पीछे भावावेग अवश्य रहा है. भावावेग जब नियोजित और नियंत्रित ढंग से उभरता है तो नयी व्यवस्था और नये निर्माण को जन्म देता है और जब वही आवेग अफवाहों के सहारे अनियोजित और अनियंत्रित होकर सामने आता है तो पागलपन बन जाता है. और वह पागलपन बहुत बड़े विनाश की सृष्टि करता है. दोनों ही स्थितियां इतिहास ने देखी हैं और आज भी देखी जा रही हैं. लाल क्रांति और हरी क्रांति एक सुलझे हुए नेतृत्व द्वारा नियंत्रित जनावेश की परिणाम हैं. इसी तरह धर्मांधता, दंगे, हत्याएं, बलात्कार, आगजनी दूसरे किस्म के अनियंत्रित आवेग के परिणाम होते हैं. विश्व विजय के सपने पालनेवाले आक्रांताओं से लेकर द्वितीय विश्व युद्ध तक जितनी भी लड़ाइयां लड़ी गयी हैं, वे भी कहीं न कहीं भावावेग से संचालित थीं.

अधिकांश प्रेम कथाएं और प्रेम की अच्छी-बुरी प्रतिक्रियाएं आवेग से ही निर्देशित होती रही हैं. दुष्यंत-शकुंतला, नल-दमयंती, रोमियो-जूलियट, लैला-मजनूं, शीरीं-फरहाद और हीर-रांझा से लेकर नानावटी कांड तथा आज के कातिलाना प्यार के किस्सों तक आवेग ही काम करता आया है. जहां यह आवेग एक धारा में और नियंत्रित ढंग से रहा है, वहां इसके परिणाम अच्छे निकले हैं और जहां इससे हटा है, वहां परिणाम भयानक मिले हैं. परिणामों के आधार पर ही आवेग की गति और दिशा का तथा प्रवाह की शक्ति का पता चल जाता है.

प्राचीन क्लासिकी साहित्य से लेकर आज के किसान आंदोलनों और मजदूर आंदोलनों तक के साहित्य के पीछे कहीं न कहीं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष यह आवेग मिल सकता है. दरअसल भावावेग की कहानियों की भारतीय या अभारतीय साहित्य में बहुतायत है. रचनाओं की कमी होने या बहुतायत होने दोनों ही स्थितियों में चयन की प्रक्रिया मुश्किल हो जाती है. बहुतायत में रचनाओं को सीमित संख्या में छांटते समय किसी के भी सामने सबसे बड़ा सवाल यही आता है कि किसे लिया जाये, किसे छोड़ा जाये. दुविधा की स्थिति हमेशा तकलीफदेह होती है. फिर भी यह अंक आपके सामने है और रचनाओं के सही निर्णायक हमारे पाठक ही हैं.

हमारी कोशिश रही है कि सभी तरह के भावावेग का प्रतिनिधित्व आपके सामने प्रस्तुत किया जा सके. इस संबंध में हम कहां तक सफल हुए हैं, यह आप ही बता सकते हैं. सही बात तो यह है कि भावावेग के लिए कोई फार्मूला तय नहीं किया जा सकता और न कोई लकीर ही खींची जा सकती है, क्योंकि इसके संदर्भ काफी बड़े और व्यापक हैं. कुछ लोग तो यहां तक कहते हैं कि मन, बुद्धि, शरीर और समाज के सारे व्यापार आवेग द्वारा ही संचालित होते हैं. और कुछ लोग इससे भी दो हाथ आगे बढ़कर प्रकृति में भी आवेग के दर्शन करने लगते हैं. हमारा यह अंक इतने व्यापक संदर्भों और अर्थों में नहीं रखा गया है.

लेखकीय आवेग राजनीतिज्ञों के आवेग से अलग हटकर होता है. सही लेखक स्थितियों का निजी हित में लाभ नहीं उठाता, लेकिन राजनीतिज्ञ ऐसा कर सकते हैं या कर लेते हैं. यही कारण है कि अधिकांश समस्याएं निजी हित के टकराव से ही पैदा हो जाती हैं और उनके दुष्परिणाम आम आदमी के हिस्से आते हैं, जबकि लेखक रचनात्मक सक्रियता के तहत अच्छे परिणामों की कल्पना करता है और उन्हें दूसरों में बांट देने की कामना रखता है. आज के हालात को देखते हुए यही लग रहा है कि जनहित की बात सही अर्थों में रचनाकार के हिस्से में ही रह गयी है. दूसरों का इससे ज्यादा सरोकार नजर नहीं आ रहा.

आज रचना की नियति आदमी और समाज की नियति के साथ ज्यादा जुड़ गयी है. यह एक अच्छी बात कही जा सकती है, लेकिन रचनाधर्मिता में राजनीति के नाजायज प्रवेश पर सतर्क दृष्टि रखनी पड़ेगी, अन्यथा रचना के लिए दुष्परिणाम झेलने का संकट पैदा हो सकता है.

इसी अंक में हम कृष्णा सोबती का हशमत स्टाइल में लिखा एक आलेख प्रस्तुत कर रहे हैं. यह आलेख तीसरी नजर की पहली किस्त पर प्रतिक्रिया भी है और कुछ विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण मुद्दों का खुलासा भी. हम समझते हैं कि तीसरी नजर और कृष्णा जी के इस महत्वपूर्ण आलेख को एक अच्छी बहस का मुद्दा बनाया जा सकता है और इस बहस के लिए हम आप सब साहित्य प्रेमियों को सादर आमंत्रित करते हैं. हम आपसे वैसी ही बेबाक प्रतिक्रियाएं चाहते हैं जैसी आपने गोविंद मिश्र के पत्र पर भेजी हैं. गोविंद भाई के पत्र पर हमें अब तक ढेरों प्रतिक्रियाएं मिल चुकी हैं और लगातार मिल रही हैं. उन प्रतिक्रियाओं का प्रकाशन हम 'सारिका कहानी मंच' के 'नवांकुर विशेषांक' यानी कि अगले अंक से शुरू कर रहे हैं. हमें अपने पाठकों की बुद्धिमत्ता और जागरूकता पर न सिर्फ विश्वास है, अपितु गर्व भी है.

आज का सामाजिक परिवेश और भावावेग की रचनाधर्मिता का सवाल

अ. भा. शुक्ल..

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागिन

• ताराशंकर बंद्योपाध्याय

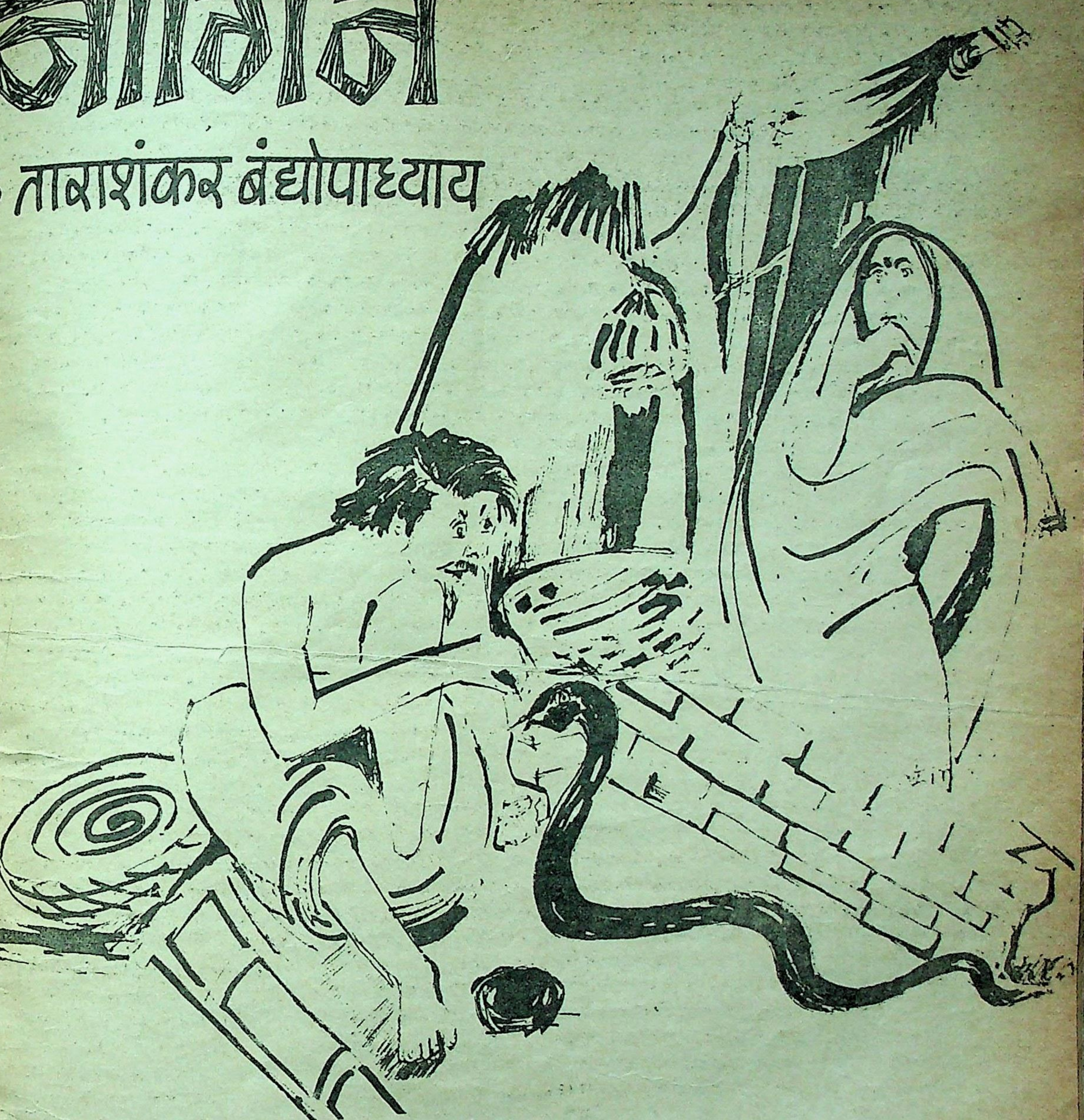

पुरुस एक हो और स्त्रियां दो–तब सौतिया डाह की बात से किसे इन्कार हो सकता है, पर सौतिया डाह के मामले में जब एक स्त्री के मुकाबले कोई स्त्री नहीं, एक नागिन हो तो इसे आप क्या कहेंगे–कपोल कल्पना, गप या सरासर सच्च? जवाब दे रहे हैं बंगला के प्रख्यात रचनाकार ताराशंकर वंद्योपाध्यांय.

तारा बाबू भारतीय साहित्य में ही नहीं, वरन विश्व में अपना विशिष्ट स्थान बना चुके हैं. उनके उपन्यास 'गणदेवता' को 1966 में भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया था

लंगड़ा शेख पकी हुई ईंट एक-एक करके भट्ठे से बाहर निकाल रहा था. बचपन में उसकी टांग टूट गयी थी. तभी से वह लंगड़ाने लगा और इस तरह लंगड़ा शेख कहलाने लगा. उसके काले चेहरे पर नाक के स्थान पर एक सूराख था, जो प्राय: बहता रहता था. नाक किसी घातक रोग की भेंट हो गयी थी. इसके बावजूद वह सूंघ सकता था. चेहरे पर चेचक के गहरे दागों ने उसे और भी कुरूप बना दिया था, पर वह अपने काम बड़ी फुर्ती से करता था, जिससे लोग प्रसन्न होकर उसे काम देते रहते थे.

सामने से वाहिद शेख, जो इसी भट्ठे पर काम करता था, किसी चुलबुले ग्रामीण गीत के सहारे अपनी बैलगाड़ी लंगड़े की ओर हांक रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था. गाड़ी सहसा रुक गयी. वाहिद शेख ने एक गाली से बैलों का सत्कार किया. उनकी दुम तेजी से मरोड़ी, लेकिन बैल अब एक पग भी आगे बढ़ना नहीं चाहते थे और अपनी अपनी थूथनी फुलाये बेचैन हुए जा रहे थे. वाहिद शेख को बैलों की यह अवज्ञा भली न लगी और उनकी खबर लेने के लिए क्रोध से जैसे ही वह गाड़ी से कूदा तो स्वयं ही ठिठककर रह गया. बीच रास्ते में एक नाग फन उठाये हुए कुंडली मारे अपने इर्द-गिर्द से बेपरवाह झूम रहा था. वाहिद शेख ने ईंट का टुकड़ा उठाया और इससे पहले कि वह मारे, लंगड़े ने देख लिया और वह भट्ठे से कूद पड़ा और चिल्लाने लगा, "नहीं, नहीं वाहिद! इसे मत मारना! मैं इसे जिंदा पकड़ लूंगा." और तेज़ कदमों से लंगड़ाते हुए दौड़ पड़ा.

वाहिद शेख इधर थोड़ी देर के लिए नाग के चमचमाते जवान शरीर से जैसे सम्मोहित हो गया और अपने ही आप कहने लगा, "अल्लाह कसम, कितना सुंदर है यह नाग. मुंह की लाली है कि सिंदूर रिस रहा है और फन. . . . लेकिन नाग को खतरे का एहसास हो गया था और देखते ही देखते वह सामने ईंटों में घुसकर गायब हो गया.

लंगड़ा शेख संपेरा भी था. उसके पास कई प्रकार के छोटे-बड़े सांप पिटारियों में सुरक्षित थे, जो उसकी गफानमा झोंपड़ी में कतार-दर-कतार रखे रहते थे. वह प्राय: इन पिटारियों को बांस के दोनों ओर रस्सियों में लटकाकर बीन बजाते हुए नगर की ओर निकल जाता. सांपों का खेल दिखाता और कुछ कमा लेता. इनमें अधिकांश सांप उपयुक्त आहार और देखभाल न होने के कारण मर भी जाते और लंगड़ा शेख को नये सांपों की खोज रहती. यदि सांपों के खेल से संतोषजनक आय न हो पाती तो वह मजदूरी करने के लिए बगल में टोकरी दबाये निकल जाता. यदि यों भी सफलता न होती तो भीख मांग लेता, पर उसे ईंट के भट्ठे पर अक्सर काम मिल जाया करता था. उसकी दिनभर की आय का अधिकांश भाग अफीम और गांजे की भेंट हो जाता और जो भी पैसे बच रहते, उससे वह ताड़ी चढ़ा लेता. नशे में चूर लड़खड़ाता हुआ शाम को खाली जेब घर लौटकर आता तो अपनी जीवन-साथिन, जुबैदा के चरणों में गिरकर रोने लगता, "तुझे कितना दुख है जुबैदा. मैं लंगड़ा होने के कारण कुछ भी तो कमा नहीं सकता. और तुझे भूखा रहना पड़ता है."

जुबैदा स्वभाव से धैर्यवान और कृतज्ञ थी. वह अपने पति की आदतों से अच्छी तरह अवगत थी. इसके बावजूद उसे अपने पति से प्यार और सहानुभूति थी. पति को अपने कदमों में इस प्रकार लोटते हुए देखती तो हंस पड़ती, "बस, बस! अब पागल न बनो. अरे, मेरे पांव छोड़ो. उठो, मैं तुम्हारे लिए रोटी लाती हूं." और उसके सिर पर प्रेम से हाथ फेरने लगती. इसी तरह दिन रूखे-सूखे कट रह थे.

दूसरे दिन पौ फटने से पहले ही लंगड़ा शेख एक खाली पिटारी और लकड़ी का टुकड़ा लिये ईंटों के भट्ठे के पास पहुंच गया और एक ऊंची जगह पर बैठकर किसी चीज को ढूंढ़ने लगा. आस-पास पेड़ों पर चिड़ियों की चहकार के साथ निकट के मंदिर से घंटियों के बजने की आवाज आ रही थी. इधर भट्ठे में ईंट पक रही थी. इतने में सूर्य देवता ने पूर्व की ओट से झांका और उधर से शेख उछल पड़ा. उससे कुछ कदम दूर वही नाग, जो कल ईंटों के ढेर में गायब हो गया था, अपनी धुन में मग्न फन को कुछ ऊपर उठाये पूर्व की ओर बढ़ रहा था. हल्की-हल्की कुंवारी धूप का रंग कुछ पीला और कुछ किरमिज़ी लग रहा था. लंगड़ा अभी इस आकर्षक दृश्य से आनंदित हो रहा था कि नाग सहसा रुक गया और कुंडली मारे फन को ऊंचा किये झूमने लगा, मानो वह सूर्य देवता को नमस्कार कर रहा हो. वह इतना तन्मय था कि शेख के बढ़ने की आहट तक उसे सुनाई न दी, पर लंगड़ा शेख जब निकट पहुंचे तो एक जोरदार 'हैं' के साथ फन को धरती पर दे मारा. नाग जब धरती पर फन मारते हैं तो जल्दी उठ नहीं सकते. लंगड़े ने इससे लाभ उठाकर उसकी गर्दन पर लकड़ी रख दी और चटपट दूसरे हाथ से उसकी दुम पकड़कर दो-तीन तेज झटके दिये, जिससे नाग विवश होकर झूल गया. यह सब कुछ ही क्षणों में हो गया. लंगड़े ने उसे ध्यान से देखा और बुदबुदाने लगा, "मादा है."

एक-दो माह के बाद नागिन उपयुक्त आहार और देखभाल से तगड़ी हो गयी और उसकी त्वचा चिकनी और चमचमाने लगी. एक दिन लंगड़ा शेख जब गांजे की दूकान से वापस आया तो उसने अपनी पत्नी को आवाज दी, "जुबैदा, देख तो मैं क्या लाया हूं." और उसने अपने फटे कुरते की जेब से कोई चमकदार चीज बाहर निकाली और अपनी हथेली पर रखकर जुबैदा के सामने कर दी. यह एक छोटी-सी पीतल की कील थी. जुबैदा ने पूछा, "क्या करोगे इस कील का?"

लंगड़ा हंस पड़ा? "क्या करूंगा? अरे, यह मेरी दूसरी बीवी के लिए है, जो मुझे जान से ज्यादा प्यारी है."

और दूसरे ही क्षण वह कमरे में घुस गया और जब बाहर निकला तो नागिन उसके गले के इर्द-गिर्द लिपटी हुई कुलबुला रही थी. मोटापे के कारण उसमें वह पहले जैसी चुस्ती नहीं थी. वह अब लंगड़े के हाथों से भी लिपटी जा रही थी.

जुबैदा चिल्लायी, "देखो, नागिन से इतनी लापरवाही ठीक नहीं, आखिर नागिन है यह, तुम्हें डस भी सकती है."

लंगड़े ने कहकहा लगाया, "यह सच है, पर मैंने इसके दांत तो निकाल दिये हैं और जब फिर वे उग जायेंगे तो देखा जायेगा. देखती नहीं, वह स्वयं मुझे डसना नहीं चाहती. आखिर यह मेरी लुगाई ही है न!" फिर उसने नागिन के मुंह को उंगलियों से दबा लिया और उसे प्यार किया. "डायन"! जुबैदा बड़बड़ा रही थी, "मुझे पता है, जितने तुम गंदे हो, उसी तरह तुम्हारा प्यार भी गंदा है."

नागिन अब गले से होते हुए उसके हाथों से लिपटी जा रही थी. आंखें खूब उजली थीं और वह बार-बार अपनी पतली जीभ बाहर निकाल रही थी. जुबेदा को इस दृश्य से घिन-सी होने लगी उसने मुंह दूसरी ओर फेर लिया. लंगड़े ने कहा, "जुबेदा, क्या तुमने कभी सांपों के जोड़े को रति करते हुए देखा है? ऐसे में मादा नर से लिपट जाती है. स्वाभाविक कामना सबकी होती है, चाहे मनुष्य हो या कीड़े-मकोड़े." जुबैदा की उद्विग्नता पर लंगड़ा हंसने लगा, "तुम तो बस बुरा मान जाती हो."

जुबेदा ने झुंझलाते हुए जरा कटुता से कहा, "मैं क्यों बुरा मानने लगी, पर मैं तुम्हें सचेत किये देती हूं, सांप से इतना बेजा प्यार तुम्हें एक दिन खत्म ही करके रख देगा."

लंगड़ा अकस्मात गंभीर होकर गया, "पर जुबेदा, मुझे डर है कि यह बेजा ईर्ष्या, कहीं एक दिन तुम ही को खत्म न कर दे." जुबेदा चुप हो गयी. लंगड़े ने नागिन को अपनी गोद में ले लिया. फिर उसकी दुम को पांव के अंगूठे से दबा दिया और बायें हाथ से उसका मुंह जोर से बंद कर कर दिया. फिर दायें हाथ से तत्काल उसकी नाक को कील से छेद डाला. पीड़ा और क्रोध से नागिन तड़पकर अलग हो गयी और 'हिस' करती हुई लंगड़े पर हमलावर हुई. लंगड़े ने पिटारी के ढक्कन को सामने कर दिया, "प्यारी, इतनी नाराज न हो, देखो तो, तुम इस कील के साथ कैसी सुंदर लगती हो." फिर जुबैदा की ओर मुड़कर कहा, "जुबैदा, जरा आईना तो ला दे. यह भी अपनी शक्ल देख ले."

जुबेदा जब अरुचि से जाने लगी तो लंगड़े ने फिर कहा, "जरा सिंदूर की डिबिया भी लेती आओ."

"सिंदूर का क्या करोगे?" जुबैदा ने पूछा.

"अरे, तुम देखती जाओ जुबैदा. मैं अगर अभी बता दूं तो फिर मजा न आयेगा."

जुबैदा आईना और सिंदूर की डिबिया लंगड़े के सामने रखकर अंदर चली गयी. उसने नागिन के सिर को पकड़ा और सिंदूर की पतली और स्पष्ट रेखा उसके माथे पर खींच दी. फिर एक जोरदार कहकहा लगाया, "लो, आज हमारी शादी की रस्म अदा हो गयी और अब तुम मेरी दूसरी बीवी हो."

कुछ दिन और बीत गये. एक दिन धुआंधार बारिश हो रही थी और लंगड़ा शेख बाहर गया हुआ था. बारिश लगातार होती रही और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा साहब की बख्शीश

□ अशोक लव

राजा साहब शरीर से तो बूढ़े हो गये हैं, पर यौवनावस्था में बिगड़ी आदतें ज. नहीं पा रही हैं. शाम घिर आती है. शराब मंगाते हैं. बुधुवा बोतल लाता है. सोडा लाता है. राजा साहब शराब पीने लगते हैं.

"सुने हैं बुधुवा, तुम्हारी औरत बड़ी सुंदर बाड़ी है." राजा साहब पूछते हैं.

बुधुवा हाथ जोड़े गर्दन झुकाये खड़ा रहता है.

"तनी अपन जोरू का तो ला. हम तो अभी उकर बख्शीश भी नइखी देहले."

"मालिक ! अभी आप शरबवा पिओ. हम सवेरे उनकरा के तैयार कराके ले आल्ब." डरते-डरते बुधुवा बोलता है.

"अरे! ई तोहार ज़बान कइसे चलत बाटे. जा उनका के अभी लेकर आवा." राजा साहब धमकाते हुए बोले.

राजा साहब की डांट सुन बुधुवा चला गया.

दस-पंद्रह मिनट बाद बुधुवा के संग लंबा घूंघट निकाले लछमिया पाजेब बजाती, कांपती आ गयी. आकर राजा साहब के पांव छुए.

"हां तो बुधुवा, हम तोहरा जोरू के बख्शीश नइखी देले. आज हम देब." शराब से लड़खड़ाती ज़बान से राजा साहब बोले.

बुधुवा कांप गया. वह पहले इसे झूठ समझता था. राजा साहब को बदनाम करने की चाल समझता था. उसके कानों में लोगों द्वारा कही बातें गूंजने लगती हैं, "अरे, अब त राजा साहब बुढ़ा गईल बाड़े. उ ता खुद कुछ नइखन कर सकत. नौकर और उनकर औरत के बुलाके अपना सामने. . "

राजा साहब की आवाज बुधुवा को चौंका देती है, "बुधुवा, तनी अपन कपड़ा उतार त हम देखे के चाहत बानी कि तू लछमिया संग. . ."

बुधुवा राजा साहब की धमकियां सुनता है. उनका गुस्से का रूप वह जानता है. लछमिया भी धमकियां सुनती है. दोनों कांपते हाथों से एक-एक वस्त्र उतारते हैं.

देखते-देखते बोतल खाली हो जाती है. बुधुवा और लछमिया भी थककर अलग हो जाते हैं.

राजा साहब पचास का नोट उठा लछमिया की ओर बढ़ाते हैं. लहंगा हाथ में थामे लछमिया गर्दन झुकाये, कांपते हाथों से बख्शीश लेती है और बुधुवा के कांपते हाथों में रख देती है. □

लंगड़ा इस प्रकार दो दिन बाहर रहा. इन्हीं दिनों जुबैदा को अपने घर में एक अजीब, लेकिन तल्ख गंध का एहसास हुआ. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह गंध किधर से आ रही है. दो दिन के बाद जब बारिश रुकी तो लंगड़ा शेख भूख से निढाल घर लौटा और जब रोटी खाने लगा तो उसे भी इस गंध ने आकृष्ट किया. उसने रोटी छोड़ दी और कमरे में चारों ओर घूम-फिरकर देखा कि गंध कहां से आ रही है. नागिन की पिटारी के पास रुक गया और कहने लगा, "हां, तो यह बात है."

"क्या बात है?" जुबैदा ने पूछा.

"यह गंध नागिन के शरीर से आ रही है जुबैदा. आखिर यह भी तुम्हारी तरह मादा है न! इसे नर की जरूरत महसूस हो यही है. इस गंध के सूंघते ही नर सीधा मादा के पास पहुंच जाता है, लेकिन इससे पहले ही हमें इस नागिन को आजाद कर देना चाहिए."

लंगड़े शेख को पता था कि जब नागिन इस स्वाभाविक इच्छा का शिकार हो जाती है तो बहुत उद्विग्न हो जाती है. जुबैदा ने तनिक मुस्कराते हुए कहा, "क्या यह तुम बर्दाश्त कर सकोगे? खैर, फेंक आओ इस गंदगी को. जान तो छूटे इस बला से".

दूसरे ही दिन सुबह लंगड़ा नागिन को मैदान में छोड़ आया. वह दिन भर मौन और चिंतातुर-सा रहा. जुबैदा से भी बात न की. उधर बारिश हो रही थी. मियां-बीवी दोनों बरामदे में बैठे हुए थे.

लंगड़े ने सहसा जुबैदा को अपने आलिंगन में भींच लिया, "ऊपर वाला ही जानता है, मैं किस तरह इस बात को भूल सकूंगा कि मैं आज तक तुम्हारी सच्ची मोहब्बत और हमदर्दी के सहारे ही जी रहा हूं, वरना मुझ जैसा बदसूरत लंगड़ा. . . "

जुबैदा चीख उठी, "लो, फिर वह डायन आ गयी. वह देखो, सामने गंदे पानी की उस नाली में किस तरह फन उठाये तैर रही है."

लंगड़ा शेख अकस्मात उठ खड़ा हुआ, "उसे वापस आना ही चाहिए था. जुबैदा, मैं उसे वापस ले आऊं," अपने आलिंगन को इस तरह तोड़कर लंगड़े का उठ जाना और वह भी नागिन जैसे तुच्छ कीड़े के लिए, जुबैदा को अप्रिय लगा. ईर्ष्याग्नि भड़क उठी. उसने हठात् पति का कुरता पकड़ा और उसे अपनी ओर खींच लिया, "नहीं, नहीं, मैं तुम्हें इस तरह जाने नहीं दूंगी. और तुम उस डायन को यहां नहीं लाओगे. समझे." फिर वह क्रोध से बावली हो गयी, "निकल जा यहां से, मरदूद कहीं की."

यह कहकर उसने पास पड़ी गोबर की सूखी और सख्त टिकिया को नागिन की ओर जोर से फेंका. निशाना ठीक लगा. और चोट खाकर नागिन तड़प उठी. बिफरी. दो-चार कदम तेजी से जुबैदा की ओर बढ़ी. फिर रुक गयी. दो-चार बार अपने सिर को जमीन पर दे मारा और फिर गंदी नाली में छलांग लगाकर तेजी से बाहर निकल गयी.

रात गये जुबैदा ने अपने पति को जल्दी-जल्दी जगाया, "देखो तो, किसी ने मुझे काट खाया है."

लंगड़ा शेख जाग पड़ा और दीये की मद्धिम लौ में उसने देखा कि जुबैदा के बायें पांव के अंगूठे में जख्म हो गया है और उससे गर्म-गर्म खून धीरे-धीरे रिस रहा है. जुबैदा ने दरवाजे की ओर देखा और इशारा करते हुए चीख पड़ी, "वह देखो, वह तुम्हारी चहेती लुगाई, तुम्हारी बीवी भागी जा रही है. नागिन ने आखिर मुझे डस ही लिया—डायन!"

लंगड़ा गुस्से से आगे बढ़ा और बड़ी ही फुरती से नागिन को अपने अधिकार में ले लिया और पिटारी में बंद करके उस पर जोर से थपकी दी, "जालिम, अगर जुबैदा को कुछ हो गया तो मैं तेरे-टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दूंगा."

जुबैदा पर मौत के साये छाने लगे. उसके सिर के बाल झड़ने लगे और लंगड़ा विवशता से अपनी जीवन-साथिन के करीब बैठा हुआ रोता रहा. उसकी दशा दयनीय थी. सुबह की किरण के साथ ही जुबैदा ने लंगड़े की गोद में दम तोड़ दिया. सांप के काटे का इलाज करने वाले, जो रात ही रात आये हुए थे, जुबैदा को मौत के चंगुल से बचा न सके. एक ने कहा, "लंगड़ा शेख, इस जात की नागिन का काटा बच ही नहीं सकता. इसे कोई चोट पहुंचाये तो फिर उसका बदला भी खतरनाक होता है. शायद उसने तुम्हें ही डसना चाहा था, लेकिन. . ."

लंगड़े के आंसू बरबस निकल आए. वह आप ही आप कहने लगा, "नहीं भाई, वह मुझे डसने नहीं आयी थी, वह जुबैदा. . ." फिर वह सिसकियों के बीच में कह गया, "आह, सौत का जलापा!"

लंगड़े ने नागिन के टुकड़े नहीं किये, बल्कि उसने यह कहकर उसे मुक्त कर दिया, "मैं जानता हूं, इसमें तेरा कसूर नहीं. यह औरत जात की स्वाभाविक दुर्बलता है." उसने फिर अपनी गुफानुमा झोंपड़ी को सदा के लिए 'विदा' कह दिया और भिक्षा का थैला गले में डाले कहीं दूर निकल गया. झोंपड़ी में अब नागों का पूरा खानदान बस गया है. उस ओर दिन के समय भी कोई नहीं जाता. □

प्रस्तुति : सुर[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या मात्र नारी देह ही पति और प्रेमी के रिश्ते का आधार है? क्या पति और प्रेमी की तरह पत्नी और प्रेमिका का अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं हो सकता? अस्तित्ववाद के प्रवर्तक सार्त्र के बहुचर्चित कहानी 'इंटीमेसी' का सार-संक्षेप.

अंतरंग

• ज्यां पॉल सार्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुलु को निर्वस्त्र होकर सोने की आदत थी. एक तो उसे देह पर चादरों का स्पर्श अच्छा लगता था, दूसरे कपड़े धुलवाना बहुत ही महंगा था. शुरू-शुरू में हेनरी ने विरोध किया, लेकिन बाद में वह भी पत्नी का अनुकरण करने लगा. हालांकि इसका कारण महज आलस्य था. जब भी कोई साथ होता, वह जड़-सा हो जाता था (इसीलिए वह स्विस लोगों को पसंद करता था, और खासतौर से जेनेवाइयों को, जिनके शरीर हमेशा जड़ से और अकड़े रहते थे.) लेकिन कुछ चीजों में वह लापरवाह था. जैसे कि सफाई रख पाना. अक्सर वह कच्छा नहीं ही बदलता था. लुलु जब उसके कच्छे धोने के लिए ले जाती थी, तब वह यही पाती थी कि उनका निचला भाग टांगों की रगड़ से पीला पड़ गया है. लुलु को भी साफ न रहना बुरा नहीं लगता. साफ न रहने में एक कोमलता है. अंग्रेज उसे इसीलिए अच्छे नहीं लगते थे क्योंकि उनकी देह से कोई गंध ही नहीं छूटी थी. एकदम गंधहीन. लेकिन उसे पति की यह लापरवाही पसंद नहीं थी क्योंकि यह सहलाये जाने का बहाना बन गयी थी. सुबह उठने पर, वह अपनी देह को बहुत धीरे से बरतता था, उसका सिर सपनों से भरा रहता. दिन की तेज रोशनी, ठंडा पानी और खुरदरा ब्रश उसे अन्याय सहने पर मजबूर करते थे.

लुलु पीठ के बल लेटी रही. उसने बायें पैर का अंगूठा चादर में बने छेद में फंसा दिया था. चादर फटी नहीं थी बल्कि उधड़ गयी थी. कल इसे जरूर ठीक करूंगी, यह सोचकर लुलु ने दबाव बढ़ा दिया और धागों का टूटना महसूसती रही. हेनरी सो नहीं रहा था लेकिन चुप था. अक्सर वह लुलु से कहता, "मैं जैसे ही आंखें बंद करता हूं, अपने आपको जकड़ा हुआ पाता हूं और एक उंगली तक नहीं हिला पाता. जैसे मकड़ी के जाल में फंसी बड़ी-सी मक्खी." लुलु को इस जकड़ी हुई देह का स्पर्श अच्छा लगता. अगर यह इसी तरह लेटा रहे, जड़, मैं इसका बहुत खयाल रखूंगी. बच्चे की तरह इसे साफ करूंगी, और कभी-कभी पेट के बल लिटाकर पीछे एक-दो चपत लगा दूंगी और जब भी इसकी मां आयेगी तो इसे नंगा जरूर करूंगी, सोते समय इसका ओढ़ना उठा दूंगी ताकि इसकी मां इस नंगी देह को देख सके. लुलु ने पति के कूल्हों पर हाथ फिराया और च्यूंटी काट दी. हेनरी थोड़ा कुनमुनाया लेकिन उठा नहीं. "नपुंसक!" यह शब्द लुलु को हमेशा मुस्कराने पर मजबूर कर देता था. जब वह हेनरी के प्रेम में थी और वह यूं लेटा रहता था उसे हमेशा 'गुलीवर' की कहानी याद आ जाती जो उसने बचपन में पढ़ी थी. वह हेनरी को 'गुलीवर' कहती, हेनरी को अच्छा लगता था क्योंकि यह एक अंग्रेजी नाम था और इस शब्द के कारण वह पढ़ी-लिखी लगती थी. सिर्फ हेनरी चाहता था कि इसे अंग्रेजी लहजे से बोला जाये. हे प्रभु, तभी तो उसे गुस्सा आता है. अगर इसे पढ़ी-लिखी ही चाहिए तो यह जीन बेदे से शादी क्यों नहीं कर लेता, उसके स्तन तो बछड़े के सींगों जैसे हैं, लेकिन भाषाएं पांच बोल सकती है.

लुलु ने चादर के छेद में से अंगूठा निकाल लिया और अपनी टांगों पर इस देह का स्पर्श महसूसा. फिर गुड़गुड़ सुनी, बातें करता पेट. पता नहीं यह आवाज मेरे पेट से आ रही है या इसके पेट से. लुलु ने आंखें बंद कर लीं, नलियों में जब तरल पदार्थ बहता है तब यह आवाज होती है.

नलियां सबके पेट में होती हैं. रिरेत के भी और मेरे भी (मैं उसके बारे में सोचना नहीं चाहती, पेट में दर्द-सा होने लगता है.). यह मुझे प्यार करता है लेकिन मेरी आंतों को नहीं. अगर मेरा आमाशय ग्लास में डालकर इसे दिखाया जाये तो यह पहचानेगा भी नहीं. हमें पूरे शरीर को प्यार करना चाहिए, आंतों, जिगर और नलियों सहित. हम उन्हें इसलिए प्यार नहीं कर पाते क्योंकि हमें उनकी आदत नहीं है. अगर हम उन्हें अपने हाथों और बाहों की तरह देख पाते तब शायद . . . उसने अपनी आंखें बंद कर लीं और नीले घेरे उसकी आंखों में तैरने लगे. मेले में घूमते घेरों की तरह. जहां कल रात वह रबड़ के तीर चलाती रही थी. एक तीर लगने पर एक शब्द बनता है और शब्द जुड़कर शहर का नाम बन जाते थे. इसने मुझे 'डिजोन' पूरा नहीं करने दिया. और मेरी पीठ पर अपना दबाव बढ़ाता रहा. मुझे इन लोगों से नफरत है जो मेरी पीठ छूते हैं. अगर मेरी पीठ नहीं होती तो अच्छा होता. अच्छा नहीं लगता अगर कोई तुम्हारे बगैर देखे हरकतें करता रहे. वे मुट्ठी में एक हिस्सा भर लेंगे और तुम्हें उनके हाथ दिखाई नहीं देंगे. तुम सिर्फ महसूस कर सकते हो कि वे हाथ ऊपर जा रहे हैं या नीचे लेकिन तुम्हें पता नहीं लगता कि आगे वे क्या करेंगे. वे पूरी तरह तुम्हें देख सकते हैं और तुम बिल्कुल नहीं. हेनरी को यह बहुत पसंद है. हेनरी को मालूम है कि जब वह मुझे पीछे से छूता है तो मैं शर्म से मर जाती हूं. और मेरी शर्म उसे उत्तेजित करती है (वह डर गयी). मैं इसके बारे में सोचना नहीं चाहती. मैं रिरेत के बारे में सोचना चाहती हूं. वह हर शाम रिरेत के बारे में सोचती है, जब हेनरी उसके चेहरे से नाक छुआना और धीरे-धीरे गुरगुराना शुरू करता है. हेनरी की चमड़ी कोमल और भूरी है सिवाय गुलाबी पेट के. रिरेत कहती है, "लुलु, तुम नहीं जानती, खूबसूरत मर्द का शरीर कैसा होता है." मुझे यह सुनकर गुस्सा आता है. क्यों नहीं जानती! उसका मतलब होता है, चट्टान जैसा शरीर. लेकिन मुझे बिल्कुल पसंद नहीं. पिटरसन का शरीर ऐसा ही है लेकिन जब उसने मुझे अपनी बाहों में लिया तो मुझे लगा जैसे मैं कीड़ा होऊं. मैंने हेनरी से शादी की क्योंकि वह कोमल है और पादरी जैसा दिखता है. पादरी अपने कोट के अंदर औरत जैसे कोमल होते हैं और मैंने सुना है कि वे स्टाकिंग्स पहनते हैं. जब मैं छोटी थी तब हमेशा सोचती थी कि मैं पादरी का चोगा उठा दूं और देखूं.

एक कड़ा बाल, जैसे नीग्रो का हो. फिर रिरेत का कान उसकी स्मृति में उभरा, छोटा, लाल और सुनहरा. लुलु को मजा नहीं आया क्योंकि साथ ही रिरेत की आवाज सुनाई दी, "तुम पियरे के साथ जरूर चली जाओ लुलु, इसी में समझदारी है." मुझे रिरेत बहुत अच्छी लगती है. लेकिन कभी-कभी मैं तंग होती हूं. जब वह अपनी ही बातों से खुद प्रभावित हो जाती है और अपने आपको बहुत महत्वपूर्ण समझने लगती है. दो रात पहले रेस्तरां में वह बहुत गंभीर मुद्रा में उसे समझाने लगी थी, "तुम हेनरी के साथ नहीं रह सकती क्योंकि तुम उसे प्यार नहीं करतीं. यह अपराध होगा." वह कभी भी इसे बुरा कहने का मौका नहीं चूकती. यह गलत है, हेनरी ने हमेशा उससे अच्छा व्यवहार किया है. शायद अब मैं हेनरी को प्यार नहीं करती पर रिरेत के बताने का तरीका गलत है. वह हमेशा निश्चित होती है या तो तुम प्यार करते हो या नहीं करते सीधी-सी बात है. मेरे साथ बात इतनी सीधी नहीं है. पहली बात तो यह कि मुझे इस घर की आदत है और दूसरी यह कि वह मेरा पति है. मैं रिरेत को हमेशा पीटना चाहती हूं. मोटी, "यह अपराध होगा!" बांह उठाकर कहती है. रिरेत की नंगी बाहें मुझे अच्छी लगती हैं. लुलु मुस्कुरा दी. उसके छोटे भाई ने एक दिन पूछा था, "तुम्हारी बाहों के नीचे बाल क्यों हैं?" "यह एक रोग है." उसने जवाब दिया था. छोटे भाई के सामने कपड़े बदलना लुलु को अच्छा लगता था. वह बड़े अजीब फिकरे कसता था और बड़े ध्यान से लुलु के कपड़े तहाकर रखता था. वह दर्जी बनना चाहता था. लुलु की समझ में नहीं आता था अगर वह लड़का होती तो घुमक्कड़ बनती या फिर अभिनेता, लेकिन दर्जी नहीं. मैं तो नन बनना चाहती हूं. बड़े-बड़े घरों में खूब सारी चीजों के साथ रहना. मेरी आंखें भारी हो रही हैं और मुझे नींद आ रही है. मेरा पतला-सा प्यारा चेहरा और सिर पर कसा सख्त टोप, मैं विशिष्ट दिखाई देती. मैं सैकड़ों अंधेरे गलियारे देखती और जब नौकरानी बत्तियां जला देती, तब घरानों की बड़ी-बड़ी तस्वीरें और मेजों पर पड़ी मूर्तियां दिखाई देतीं. लेकिन मैं पूरी तरह भली नन नहीं बनूंगी. बस में चलते समय किसी भी पुरुष को आंख मार दूंगी. पहले वह गूंगा-सा रह जायेगा फिर मेरा पीछा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेगा और अंट-संट बोलता रहेगा. मैं पुलिसमैन से शिकायत करके उसे बंद करवा दूंगी.

"यह अपराध होगा!" लुलु इस वाक्य को याद करते ही उछल पड़ी. वे मुझे सता रहे हैं, क्या उन्हें दिखाई नहीं पड़ता. रिरेत बहुत भली है और सभी लोगों से समझदारी बरतती है लेकिन मुझे वह सोचने का समय नहीं देती. और यह, यह कहता है, "तुम आओगी." इसकी आंखें आग उगलती हैं, "तुम मेरे घर आओगी, मैं तुम्हें पूरा का पूरा चाहता हूं." इसकी आंखों से मुझे डर लगता है और यह अपनी उंगलियां मेरी बाहों में गड़ा देता है. जब भी मैं इसकी ऐसी हालत देखती हूं, मुझे इसकी छाती के बाल याद आ जाते हैं. "तुम जरूर आओगी. मैं पूरा का पूरा तुम्हें चाहता हूं." कैसे कह सकता है यह इस तरह. मैं कोई कुत्ता नहीं हूं.

उसके लिए मैंने पाउडर लगाया था और अपनी आंखों को सजाया था. उसे सजी हुई आंखें अच्छी लगती हैं लेकिन उसने मेरे चेहरे की ओर देखा तक नहीं. छातियां देखता रहा. मैंने चाहा कि वे सूख जायें. "तुम नीस के मेरे बंगले में रहोगी. संगमरमर की दीवारें और सीढ़ियां, और पीछे से झांकता समुद्र. हम वहां सारा दिन निर्वस्त्र रहेंगे." मुझे बड़ा अजीब लगता, नंगे होकर सीढ़ियां चढ़ना. मैं इसे आगे जाने को कहूंगी ताकि यह मुझे न देख सके. वरना मैं एक कदम नहीं चल सकूंगी और दुआ करूंगी कि यह अच्छा हो जाये. वैसे इनसे कोई फर्क नहीं पड़ता. मैं जब उसके साथ होती हूं, मुझे लगता है, मैं नंगी हूं. उसने मुझे बाहों में ले लिया और बोला, "अब तो मैं तुम्हारी चमड़ी के नीचे रहता हूं." सुनकर मैं डर गयी और मेरे मुंह से निकला, "हां." "मैं तुम्हें खुश करना चाहता हूं. पहले हम कार से जायेंगे, फिर नाव से, जब हम इटली पहुंचेंगे तो मैं तुम्हें सब दूंगा जो तुम चाहोगी." लेकिन जब हम बंगले पर पहुंचे तब वह बिल्कुल सूना था, कोई फर्नीचर नहीं. हम फर्श पर गद्दे बिछाकर सोये. वह मुझे अपनी बाहों में सुलाना चाहता था. अपनी गंध में. उसकी छाती पर काले घने बाल थे. मैं चाहती हूं कि पुरुषों की छाती पर बाल न हों. मैं दूर हटना चाहती लेकिन वह मुझे फिर अपनी गंध में खींच लेता. रात होने पर हम समुद्र की लहरों का शोर सुनते और वह मुझे जब मर्जी जगा लेता, आधी रात को भी, जब भी उसका मन होता. मैं कभी चैन से नहीं सो पायी, बीमारी के चार-पांच दिनों को छोड़कर.

लुलु ने आंखें खोल लीं. पर्दे के रास्ते, सड़क की लाल रोशनी की परछाईं दर्पण पर पड़ रही थी. लुलु को यह लाल रोशनी पसंद थी जिससे कुर्सी की कई परछाइयां बनती रहती थीं. हेनरी ने अपनी पैंट कुर्सी पर टांग दी थी और उसकी ब्रेसस नीचे लटक रही थीं. मैं इसे नयी ब्रेसस खरीद दूंगी. ना, मेरा मन नहीं होता, मैं इसे नहीं छोड़ूंगी. यह मुझे सारा दिन चूमता रहता है और मैं इसकी हो जाऊंगी. मैं इसकी खुशी बनूंगी, यह मेरी ओर देखेगा और सोचेगा, 'यह मेरी खुशी है, मैं इसे यहां छू सकता हूं और इसे दुबारा भोग सकता हूं, सब कुछ जब मेरी मर्जी पर है.' और पोर्ट रोयाल में. लुलु ने चादर फटककर दूर फेंक दी. उसे जब भी पोर्ट रोयाल की याद आती है, वह पियरे के प्रति नफरत से भर जाती थी. लुलु जब झाड़ी के पीछे गयी थी, तब उसका यही खयाल था कि वह कार के पास खड़ा यात्रा का मानचित्र देख रहा होगा लेकिन वह झाड़ी के दूसरी ओर से झांक रहा था. लुलु उठ खड़ी हुई और हेनरी को लात मारकर जगाया पर हेनरी "हुं-हुं" करके सोया ही रहा.

रिरेत डोम रेस्तरां के टैरेस पर बैठी थी. उसे लुलु पर गुस्सा आ रहा था. उसने पोर्ट का आर्डर दिया था, लेकिन वहां की शराब बिल्कुल बेस्वाद थी. लुलु को फर्क नहीं पड़ता, वह कॉफी पीती है. इस रेस्तरां में लोग हमेशा कॉफी पीते रहते हैं. इनकी जेब में दमड़ी नहीं होती. और ये गंदे कच्छे की तरह गंधाते हैं. असफलता मुझे पसंद नहीं. लुलु मुझे यहां आने को मजबूर करती है. रिरेत सोचती रही, लुलु के बारे में.

साढ़े ग्यारह हो गये थे. आधे घंटे की देरी लुलु के लिए बड़ी बात नहीं. रिरेत ने सोचा, वह कभी अपने पति को नहीं छोड़ेगी. सिर्फ इज्जत की वजह से, ताकि लोग उसके नाम के आगे श्रीमती लगायें. अब, मैंने तो सब कह दिया है जो मैं कह सकती हूं. लेकिन वह समझती है, इसमें उसी का नुकसान है.

डोम के सामने एक टैक्सी रुकी और लुलु उतरी. उसके हाथ में बड़ा-सा अटैची केस था और चेहरा शांत. "मैंने हेनरी को छोड़ दिया है."

"सच?" रिरेत हैरान रह गयी, "तुम्हारा मतलब है कि . . ."

"हां," लुलु बोली, "खत्म . . . छोड़ दिया."

"बहुत बहादुरी का काम किया तुमने." रिरेत चमक उठी.

"एक झटके में मैंने उसे कह दिया, उसकी बोलती बंद हो गयी."

"लेकिन कैसे? कल शाम तक तो तुम बिल्कुल तैयार नहीं थीं."

"उसने मेरे छोटे भाई को मारा, मेरे बारे में वह कुछ भी कहे लेकिन मेरे परिवार पर हाथ उठाये, यह मैं नहीं सह सकती . . . मैं नीचे जाकर पियरे को फोन करती हूं. मैं उसका चेहरा देखना चाहती हूं." लुलु उठी और कुछ दूर जाकर लौटी.

"मैं बहुत खुश हूं, मेरी प्यारी रिरेत."

"प्यारी, बहुत प्यारी लुलु," रिरेत ने लुलु का हाथ हाथों में ले लिया.

रिरेत को हैरान छोड़कर लुलु नीचे चली गयी. मेरी सुनती तो वह कब की हेनरी को छोड चुकी होती. आज कितनी खुश है. पति को छोड़ देना लुलु के लिए बहुत बड़ी बात है लेकिन आखिर मेरा भी कुछ प्रभाव है इस पर.

लुलु थोड़ी देर बाद लौटी.

"पियरे सुनते ही उछल पड़ा," लुलु बोली, "मैं उसके साथ लंच ले रही हूं. शायद हम कल रात की गाड़ी पकड़ लेंगे."

"मैं कितनी खुश हूं, लुलु," रिरेत ने कहा, "मुझे जल्दी-जल्दी बताओ. तुमने यह निर्णय कब लिया."

"मैंने तुम्हें बताया तो, हम रसोई में ही नाश्ता कर रहे थे. मेरा छोटा भाई राबर्ट आ गया. दोनों में बहस हो गयी. मेरे भाई ने इसे 'बूढ़ा गधा' कहा और हेनरी ने उसे चांटा मार दिया."

"और तुमने छोड़ दिया!"

"छोड़ दिया? किसे? कहां?"

"देखो भई, मुझे एक-एक बात क्रम से समझाओ, मुझे विश्वास नहीं हो रहा है कि तुमने हेनरी को छोड़ दिया है."

"छोड़ तो दिया है. एक घंटे से बता रही हूं."

"खैर, उसने राबर्ट को चांटा मारा. फिर?"

"फिर, मैंने उसे बाल्कनी में बंद कर दिया. बहुत मजा आया. उसने सिर्फ पजामा पहना हुआ था. वह कांच पर खटखटाता रहा लेकिन कांच तोड़ने की उसकी हिम्मत नहीं हुई. मैं होती तो दरवाजे का कांच तोड़ डालती चाहे हाथ लहूलुहान हो जाता. तभी मेरे सास-ससुर आ गये. और वह बाहर से ही मुस्कराने लगा. जैसे यह कोई मजाक हो."

लुलु को फिर हंसी आ गयी, "मैं हंस रही हूं, खाली पाजामे में घूमते हेनरी को याद करके. पता है, मैंने कैसे उसे बाहर निकाला. राबर्ट को चांटा मारने के बाद हेनरी उसे उपदेश पिलाने लगा. मैंने दरवाजा खोला और उससे कहा, 'देखो हेनरी, एक टैक्सी ने फूलवाली को कुचल दिया.' हेनरी फौरन बाहर आया. उसका खयाल था कि वह फूलवाली उसे प्यार करती है. 'कहां, कहां?' उसने दो बार कहा. मैं तेजी से पीछे हटी और यह दरवाजा बंद कर दिया. और चिल्लाकर बोली, 'यह मेरे भाई के साथ जानवरों की तरह बर्ताव करने की सजा है.' वह गुस्से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थानी लोक-कथा

संघर्ष की शुरुआत

▣ रजनीश कुमार

बात पुरानी है. एक शाम एक ठाकुर तख्त पर बैठा हुआ हुक्का पी रहा था. अफीम का नशा उसे पहले से ही था. उसके पैरों के पास नीचे चौकी पर एक चमार बैठा था. हुक्का पीते-पीते ठाकुर ने पीनक में चमार से पूछा, "क्यूं रे चमारड़ा, जो मैं चौकी पं बैठूं तू कठै बैठ सी?"

"धरती पै थारे चरणां तो में अन्नदाता." चमार ने विनम्र उत्तर दिया. ठाकुर अफीम के नशे में टन्न था. उसने आगे पूछा, "अर जो मैं धरती पै बैठूं तो तू कठै बैठ सी?"

"हूं थारे चरणां में खाडो खोदर बैठस्यूं अन्नदाता." चमार का वही विनम्र उत्तर था.

"अर अगर ई खाडे में बैठूं जणा?"

"तो मैं और ऊंडो खाडो खोदस्यूं अन्नदाता."

"अर मैं मठै बी जा बैठूं जणा?"

बात काफी आगे जा चुकी थी. चमार चुप हो गया. पर ठाकुर पर सनक सवार थी. उसने जोर देकर पूछा, "बतारे तूं कणा बैठ सी?"

चमार को लगा कि आखिर वह कितना नीचे जायेगा. वह गुस्से में बोला, "थे खाडा मैं बैठ स्यो तो में खाडा ने माटी ऊं पूर देस्यूं."

इस बार उसका स्वर विनम्र नहीं था. □

से लाल-पीला होने लगा. मैंने राबर्ट को आइसक्रीम दी. और राबर्ट के सामने कपड़े बदलने लगी, हेनरी को इस बात से बहुत चिढ़ है."

रिरेत हंसते-हंसते लोटपोट हो गयी, "हेनरी बाल्कनी पर पजामे में."

"तभी मेरे सास-ससुर आ गये," लुलु ने आगे कहा, "हेनरी की बाहें खिल गयीं. मैंने दरवाजा खोल दिया. हेनरी अंदर आया और सास-ससुर के सामने मुझे चूमा. 'मेरी छोटी-सी जोकर, मेरे साथ तमाशा कर रही थी.' मैं मुस्करा दी. सास-ससुर भी मुस्करा दिये. लेकिन उनके जाते ही इसने मेरे कान पर चांटा मारा. मैंने ब्रश से इसके होंठ छील दिये."

"बेचारी लुलु," रिरेत ने प्यार से कहा. पर लुलु ने झटके से प्यार बुहार दिया. "फिर हमने बात की. मैंने उसका मुंह कपड़े से पोंछा और फिर बताया कि मैं तंग आ चुकी हूं. मैं उससे प्यार नहीं करती. मैं उसे छोड़ना चाहती हूं. वह रोने लगा. 'मैं आत्महत्या कर लूंगा.' उसने कहा. लेकिन इस बार यह सब बेकार गया. मैंने उसे चुप कराया और कहा कि मैं एक महीने से पहले उसे नहीं छोड़ूंगी. तब वह ऑफिस गया. मैंने घर का काम निबटाया और उसके लिए एक चिट छोड़ दी."

"क्या लिखा उसमें."

"मैंने लिखा," लुलु गर्व से बोली, "सब्जी स्टोव पर है और मांस आइसबॉक्स में. बाकी काम खुद कर लेना. मैं तंग आ गयी हूं और जा रही हूं."

वे दोनों जोर से हंसीं, आसपास के लोगों ने एक नजर उन्हें देखा.

"अब मैं चलती हूं, पीयरे मेरा इंतजार कर रहा होगा."

रिरेत ने पूछा, "तुम कब लौटोगी?"

"दो बजे मैं तुम्हारे घर से तुम्हें ले लूंगी." लुलु चली गयी. एक बजा था. अब हेनरी वापस आया होगा और उसने लुलु का पत्र पढ़ा होगा. यह कल्पना रिरेत के लिए सुखद थी.

लौटकर वे बाहर निकलीं तो लुलु ने फूलों का आर्डर दिया. "थियेटर होटल में कल शाम पहुंचा दिये जायें." उसने संपन्न औरत की तरह कहा और रिरेत को देखा. वे चलने लगीं.

"मुझे एक ब्रा खरीदनी है." लुलु बोली.

"यहां से ले लेते हैं." रिरेत ने कहा.

सामने ही एक दूकान थी.

"नहीं, फिशर्स स्टोर से लेंगे." लुलु ने कहा.

"देखो लुलु, वह हेनरी के लौटने का रास्ता है. अच्छा नहीं लगेगा."

"क्यों अच्छा नहीं लगेगा. हेनरी हमें खा तो नहीं जायेगा."

और लुलु उस ओर चल पड़ी.

"पेरिस मुझे बहुत प्यारा लगता है, छोड़ने का मन नहीं होता."

"क्या बात करती हो, लुलु, तुम बहुत खुशकिस्मत हो जो नीस जा रही हो और अब तुम्हारा पेरिस छोड़ने का मन नहीं."

लुलु ने जवाब नहीं दिया. उसकी आंखें दायें-बायें किसी को खोज रही थीं.

रिरेत ने अचानक कहा, "वह सड़क के दूसरी ओर है. तुम उधर मत देखो."

पर लुलु मुड़ ही पड़ी, "कहां, कहां, हां, दिख गया."

"उसने हमें देख लिया है," रिरेत ने लुलु को घसीट लिया.

लुलु घबरा गयी थी. उसने अपने को रिरेत के हवाले कर दिया और वे तेजी से लोगों को पीछे छोड़ती गयीं. लेकिन मोड़ से पहले ही रिरेत को लगा कि एक पूरी छाया लुलु के ठीक पीछे चल रही है. हेनरी को देखते ही उसका क्रोध भड़क उठा. उसे यह गलती नहीं होने देनी चाहिए थी, पर अब देर हो चुकी थी. रिरेत को अपने पर गुस्सा आया. वे तेज चलने लगीं. हेनरी बिना कुछ बोले साथ चलता रहा. वह तेज सांस ले रहा था और उसकी आंखें लगभग बंद थीं. जैसे नींद में चल रहा हो. 'हमें भी ऐसे ही चलना चाहिए जैसे हमें उसके वहां होने का कुछ पता नहीं है.' रिरेत ने सोचा.

लेकिन तभी हेनरी ने बहुत हल्के से लुलु की बांह पकड़ ली. लुलु बुरी तरह डरकर कांप गयी और अपनी बांह छुड़ायी.

फुंह! हेनरी ने जोर से सांस छोड़ी.

रिरेत ठहर जाना चाहती थी. उसके कानों की लवें जलने लगी थीं. पर लुलु तो लगभग दौड़ रही थी. बिल्कुल ऐसे ही जैसे नींद में चली जा रही हो.

रिरेत को लगा कि यदि वह लुलु की बांह छोड़ दे तो ये दोनों अनंतकाल तक साथ-साथ चलते रहेंगे. अधखुली आंखें मौत से रंगीन और खामोश.

हेनरी ने खोखली अजीब-सी आवाज में कहा, "मेरे साथ चलो."

लुलु ने जवाब नहीं दिया. हेनरी फिर उसी सपाट आवाज में बोला, "तुम मेरी बीवी हो, मेरे साथ चलो."

"तुम अंधे हो क्या, देखते नहीं, वह तुम्हारे साथ नहीं जाना चाहती." रिरेत ने दांत पीसते हुए कहा, "उसे अकेला छोड़ दो."

हेनरी ने जैसे रिरेत को सुना ही नहीं, "मैं तुम्हारा पति हूं." उसने दोहराया, "मैं चाहता हूं तुम मेरे साथ चलो."

"उसे इस तरह परेशान करने से कोई फायदा नहीं होगा, उसे जाने दो." रिरेत तेजी से बोली.

हेनरी ने हैरानी से रिरेत को देखा, "यह मेरी बीवी है, इस पर मेरा अधिकार है, मैं इसे ले जाना चाहता हूं."

हेनरी ने लुलु की बांह पकड़ी और लुलु ने उसे झटका नहीं.

अचानक वह चिल्लाया.

"तुम मेरी हो!"

राह चलते लोगों ने मुड़कर देखा और हंस दिये. अचानक एक टैक्सी जाती दिखाई दी. रिरेत ने टैक्सी रोक ली. वे रुक गये. लुलु तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलते रहना चाहती थी. पर दोनों ने उसकी एक-एक बांह पकड़ रखी थी.

"तुम उसे इस तरह कभी नहीं पा सकते." रिरेत ने लुलु को अपनी ओर खींचा.

"उसे छोड़ दो, मेरी बीवी को छोड़ दो." हेनरी ने लुलु को अपनी ओर खींचा. लुलु की हालत भीगे कपड़ों के ढेर की-सी हो गयी थी.

"जाना है या नहीं?" टैक्सीवाला चिल्लाया. रिरेत ने लुलु की बांह छोड़ दी और हेनरी के हाथों पर मुक्के बरसाने लगी. हेनरी पर कोई असर नहीं हुआ. लेकिन उसने बांह छोड़ दी. रिरेत ने लुलु की कमर में हाथ लपेटा और टैक्सी में चढ़ा दिया. हेनरी ने टैक्सी में घुसने की कोशिश की पर रिरेत ने पूरी ताकत से उसे धकेल दिया.

"कहां?" टैक्सीवाले ने पूछा.

"चलाओ, चलाओ, हम पता बताते हैं." रिरेत ने कहा.

"पियरे के यहां जाओगी?" रिरेत ने कहा.

लुलु ने जवाब नहीं दिया.

"रूइ डी मैसीन." रिरेत ने टैक्सीवाले से कहा.

"मैं तुमसे नफरत करती हूं." लुलु ने चीखते हुए कहा, "पियरे से भी, हेनरी से भी. तुम सब मेरे खिलाफ क्यों हो? तुम मुझे सता रहे हो."

लुलु कांपने लगी.

"रो लो," रिरेत ने बड़प्पन से कहा, "रो लो, तुम ठीक हो जाओगी."

लुलु दोहरी हो गयी और रोने लगी. रिरेत ने उसे अपनी बांहों में ले लिया. थोड़ी देर बाद लुलु ने आंखें पोंछीं.

"मुझे माफ कर दो." लुलु ने सहज होकर कहा, "मैं हेनरी को ऐसी हालत में देख नहीं सकी."

"वह बिल्कुल औरांग-उटांग जैसा दिख रहा था," रिरेत ने कहा.

लुलु मुस्करा दी, "पियरे की मां घर पर है. उसने मुझे थियेटर होटल में ठहराया है. मैं वहीं जाऊंगी."

"रात को ज्यादा फिक्र मत करना," रिरेत ने कहा.

"मैं थककर चूर हो चुकी हूं," लुलु ने कहा, "शायद पियरे मुझे जल्दी सोने दे. पर वह इन चीजों को बिल्कुल नहीं समझता."

लुलु टैक्सी से उतर गयी.

फुह! लुलु को पतले कंबलों में ठंड लग रही थी. फुह! उसके मुंह से जोर से आवाज निकली और वह खुद ही उससे डर गयी.

वह पेरिस के खुले आसमान के नीचे उन्मुक्त घूम रहा होगा. वह दो घंटे ठहरा और पूरे वक्त चारपाई चरमराती रही. लुलु ने अपनी सांस रोक ली. मैं यह सब कैसे सहूंगी. जांघों में दर्द, जो शायद कल की रात को छोड़कर हमेशा हुआ करेगा. क्योंकि कल की रात हम गाड़ी में होंगे. गाड़ी में मैं जरूर ताजा महसूस करूंगी. और नीस पहुंचकर मैं पेंटिंग करूंगी. छोटी-छोटी सड़कें और धूप में सूखते रंगीन कपड़े. ओफ ओह! सब यही चाहते हैं. कोई उसे प्यार नहीं करता. हेनरी भी. वह उसके साथ-साथ चलता रहा और एक बार भी यह नहीं कहा कि मैं तुम्हें प्यार करता हूं. मैं हेनरी को इस तरह नहीं छोड़ सकती. उस समय मैं कुछ नहीं कह सकी क्योंकि रिरेत पर तो पागलपन सवार था. मैं अभी जाऊंगी हेनरी के पास. वह झटके से उठी और बाल भी ठीक नहीं किये. रात के आखिरी पहर में दरबान को जगाना ही पड़ेगा. वह एक पल को ठिठकी. वह धीरे-धीरे सीढ़ियां उतरी और कांच की खिड़की को खटखटाया, "मेरे लिए बाहर का दरवाजा खोलो." उसने ठंडे स्वर में कहा.

पंद्रह मिनट बाद उसने हेनरी के दरवाजे की घंटी बजा दी. हेनरी ने उठकर दरवाजा खोला. उसकी नाक लाल हो रही थी और वह पजामा पहने था.

"मैं ऐसे तुम्हें छोड़कर नहीं जाना चाहती, तुमसे बात करना चाहती हूं."

हेनरी ने कुछ नहीं कहा, वह उसे ठेलकर अंदर आ गयी.

वह वहीं बुत-सा खड़ा रहा.

"मैं एक दोस्त की तरह विदा चाहती हूं."

हेनरी ने बोलने के लिए मुंह खोला और फिर गुसलखाने की ओर भागा. लुलु लौटते ही उससे लिपट गयी. हेनरी को उल्टी हुई थी. लुलु भाव विह्वल हो उठी.

"मुझे ठंड लग रही है." हेनरी बोला.

"चलो, बिस्तर पर चलें." वह रोते हुए बोली, "मैं सुबह तक रुकूंगी. तुम बहुत अच्छे हो, बहुत अच्छे." उसने हेनरी का चेहरा हाथों में ले लिया.

"मैं बहुत दुखी हूं, बहुत दुखी," हेनरी ने कहा.

"मैं भी." लुलु बोली.

वे दोनों बहुत देर तक रोते रहे. काश वे हमेशा इसी तरह रह सकते. दो अनाथ बच्चों की तरह, शांत और शुद्ध. पर जिंदगी में ऐसा नहीं होगा. जिंदगी समुद्र के थपेड़ों की तरह थी जो लुलु को हेनरी की बांहों से तोड़ रही थी.

सात बजे वह उठी. रोने की वजह से उसकी आंखें सूज आयी थीं.

"मुझे वापस जाना पड़ेगा."

"वापिस? कहां?"

"होटल थियेटर में, गंदा होटल है."

"यहीं रहो, न."

"नहीं, हेनरी प्लीज, जिद न करो, मैं रुक नहीं सकती, यह असंभव है." उसने गर्म पानी से अपनी आंखों को धोया. ठंड से कांपते हुए अपना कोट पहना. यही भाग्य है उसने सोचा.

हेनरी लेटा हुआ था. उसने चादर उठाकर हेनरी का माथा चूमा.

"अच्छा चलूं," लुलु ने कहा.

"अच्छा".

कमरे से बाहर निकलकर वह थोड़ी देर रुकी रही. फिर एक झटके से दरवाजा बंद कर दिया. खटाक की आवाज के साथ ताला लगा तो उसे लगा वह बेहोश हो जायेगी. हेनरी ने यह अच्छा नहीं किया. कम से कम उसे दरवाजे तक तो आना चाहिए था.

"उसने काम कर दिया," रिरेत ने मिलते ही पियरे से कहा. शाम के छह बजे थे.

'मैं सुबह उसे मिली थी. वह कह रही थी पहली श्रेणी में सफर करना उसके लिए सपने जैसा है. मैं उसे चार साल से जानती हूं. हर स्थिति में मैंने उसे देखा है." रिरेत को बुरा लग रहा था. लुलु का पत्र पियरे के हाथ में था और वह उसे दे नहीं रहा था.

"कब मिला तुम्हें यह खत!" उसने आखिरी बार पूछा.

"लो, पढ़ लो." पियरे ने खत दे दिया.

मेरे प्यारे,

मेरे सास-ससुर यहां पहुंच गये. पता नहीं कैसे उन्हें होटल का पता मिला. मैं जा रही हूं क्योंकि हेनरी बेहद दुखी है. मैं आज भी तुम्हारी हूं, शरीर से और हृदय से. परंतु हेनरी आत्महत्या कर लेगा. यदि मैं उसके पास न गयी. हेनरी से मैं साफ-साफ कह दूंगी कि वह राबर्ट और मेरी मां के बारे में एक भी खराब शब्द न कहे. और मुझे पूरी स्वतंत्रता दे. कल शाम पांच बजे डोम रेस्तरां में तुमसे भेंट होगी.

—लुलु

"ओह पियरे!" रिरेत ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया.

"मां बहुत नाराज थी." पियरे ने कहा.

रिरेत ने पियरे का हाथ छोड़ दिया. एक शर्मिंदगी के एहसास से वह घिर गयी थी. □

● संक्षिप्त रूपांतर : मनमोहन चड्ढा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा

• भगवती चरण वर्मा

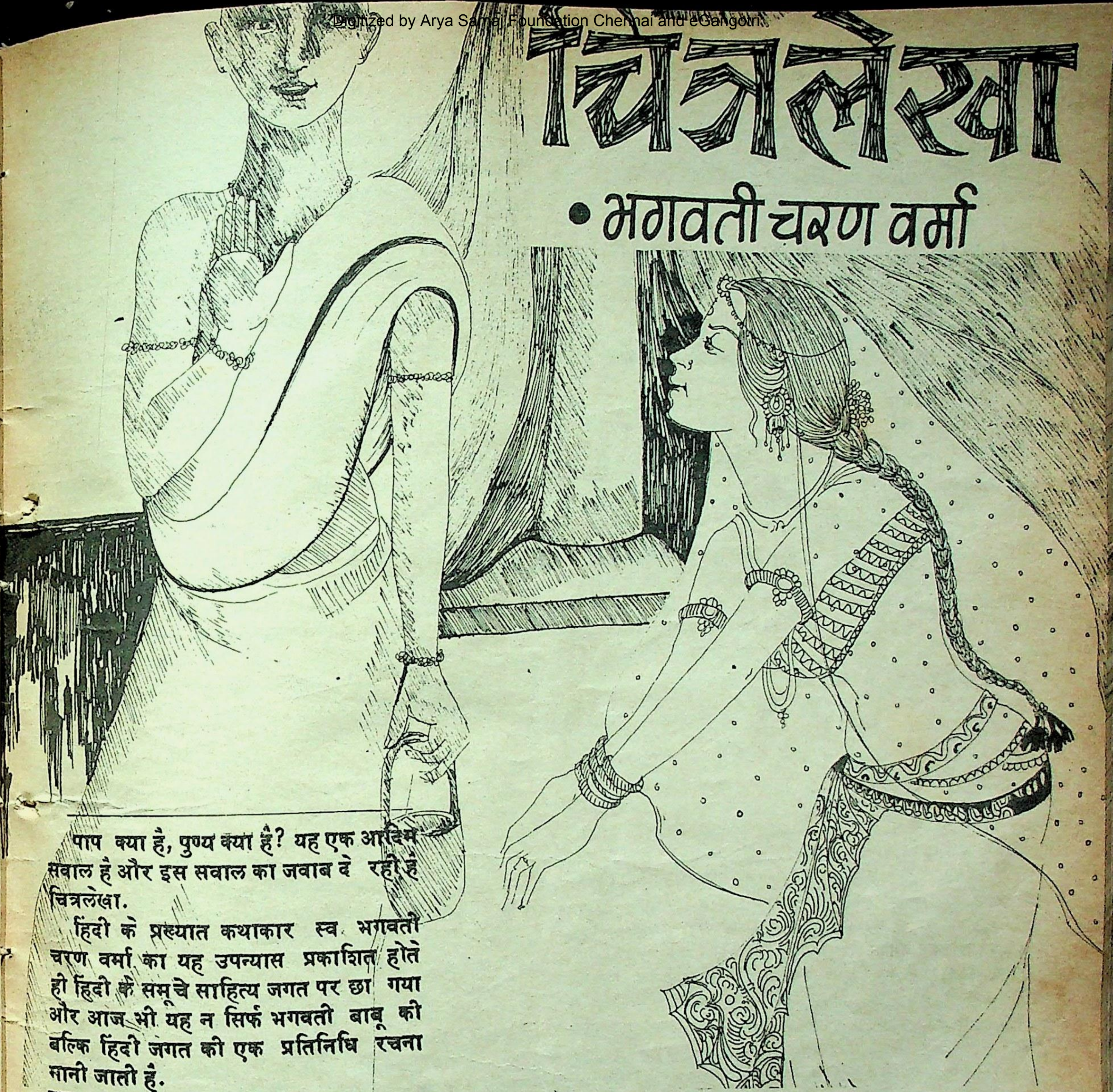

पाप क्या है, पुण्य क्या है? यह एक आदिम सवाल है और इस सवाल का जवाब दे रही है चित्रलेखा.

हिंदी के प्रख्यात कथाकार स्व. भगवती चरण वर्मा का यह उपन्यास प्रकाशित होते ही हिंदी के समूचे साहित्य जगत पर छा गया और आज भी यह न सिर्फ भगवती बाबू की बल्कि हिंदी जगत की एक प्रतिनिधि रचना मानी जाती है.

श्वेतांक ने पूछा, "और पाप!" महाप्रभु रत्नांबर मानो एक गहरी निद्रा से चौंक उठे, "पाप? बड़ा कठिन प्रश्न है वत्स! पर साथ ही बड़ा स्वाभाविक! . . . हां, पाप की परिभाषा करने की मैंने कई बार चेष्टा की है, पर सदा असफल रहा हूं. . . अविकल परिश्रम करने के बाद, अनुभव के सागर में उतरने के बाद भी जिस समस्या को नहीं हल कर सका हूं, उसे किस प्रकार तुमको समझा दूं? पर श्वेतांक, यदि तुम पाप जानना ही चाहते हो तो तुम्हें संसार ढूंढ़ना पड़ेगा. इसके लिए यदि तैयार हो, तो संभव है, पाप का पता लगा सको."

"मैं प्रस्तुत हूं!" श्वेतांक ने रत्नांबर के सामने मस्तक नमाकर कहा.

"और कदाचित तुम भी पाप को ढूंढना चाहोगे?" रत्नांबर ने विशालदेव की ओर देखा.

"महाप्रभु का अनुमान उचित है!" विशालदेव ने भी मस्तक नमाया.

दूसरे दिन गुरु साधना के शुष्क क्षेत्र में और शिष्य अथाह संसार में निकल पड़े थे.

छलकते हुए मदिरा पात्र को चित्रलेखा के मुख से लगाते हुए बीजगुप्त ने कहा, "चित्रलेखा, जानती हो जीवन का सुख क्या है?"

चित्रलेखा ने मदिरा का एक घूंट पिया इसके बाद वह मुस्करायी फिर धीरे से उत्तर दिया, "मस्ती!"

बीजगुप्त ने चित्रलेखा को आलिंगनपाश में लेकर कहा, "तुम मेरी मादकता हो!"

चित्रलेखा ने उत्तर दिया, "तुम मेरे उन्माद हो!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीजगुप्त ने हंसकर कहा, "मादकता और उन्माद—इन दोनों का सदा साथ रहा है और रहेगा. हम दोनों कितने सुखी हैं!"

चित्रलेखा हंस रही थी. तमी प्रहरी ने उच्च स्वर में कहा, "श्रीमान! द्वार पर अतिथि हैं."

बीजगुप्त ने आलिंगनपाश ढीला कर दिया. चित्रलेखा भी कुछ दूर हटकर बैठ गयी. बीजगुप्त ने परिचारिका से अतिथियों को बुला लाने को कहा.

रत्नांबर ने श्वेतांक के साथ बीजगुप्त के केलिगृह में प्रवेश किया, "बीजगुप्त, तुमसे सब बातें स्पष्ट रूप से कहूंगा. आज मेरे इस शिष्य ने मुझसे प्रश्न किया है कि पाप क्या है? तुम मेरी सहायता कर सकते हो. संसार के भोग-विलास में ही पाप का पता लग सकेगा. . . तुम्हारा भवन और तुम्हारा समाज. . .इन चीजों से श्वेतांक को भिन्न करना आवश्यक है. मैं चाहता हूं कि तुम इसे सेवक के रूप में स्वीकार करो."

"महाप्रभु की आज्ञा शिरोधार्य है!" बीजगुप्त ने मस्तक नमा दिया. रत्नांबर केलिभवन से चले गये. बीजगुप्त ने श्वेतांक का परिचय चित्रलेखा से करवाया, "इसका नाम चित्रलेखा है, और यह पाटलिपुत्र की सर्वसुंदरी नर्तकी होते हुए भी मेरी पत्नी के बराबर हैं. इसलिए यह तुम्हारी स्वामिनी भी हुई. . . यह मदिरा का पात्र अपनी स्वामिनी को दो!"

श्वेतांक ने मदिरा का पात्र चित्रलेखा की ओर बढ़ा दिया. इस उपक्रम में श्वेतांक के हाथ का स्पर्श चित्रलेखा का सारा गात कंपा गया.

शयन का समय हुआ तो श्वेतांक को बीजगुप्त ने चित्रलेखा को उसके भवन तक पहुंचाने का काम सौंपा और निद्रा देवी की शरण ली.

कुमारगिरि योगी था! मधुपाल योगी कुमारगिरि का शिष्य था. मधुपाल को अपने गुरु के अखंड ज्ञान पर गर्व था. उसने गुरु के चरणों में अपना मस्तक नमा दिया. इसी समय रत्नांबर ने विशालदेव के साथ कुमारगिरि की कुटी में प्रवेश किया. रत्नांबर को सम्मुख देख कुमारगिरि उठ खड़े हुए, "आचार्य ने किसलिए यह कष्ट उठाया?"

"अखंड तेज से विभूषित योगी कुमारगिरि से अपने शिष्य को दीक्षित कराने के लिए. . . विशालदेव को तुम्हारा शिष्य बनाना चाहता हूं."

कुमारगिरि ने विशालदेव की ओर देखा. विशाल देव ने कुमारगिरि का अभिवादन करने के बाद कहा, "देव में जानना चाहता हूं कि पाप क्या है?"

कुमारगिरि हंस पड़े. उनकी हंसी में माधुर्य था, ". . . यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि मैं तुम्हें पुण्य का रूप दिखा दूंगा और पुण्य को जानकर तुम पाप का पता लगा सकोगे."

रत्नांबर उठ खड़े हुए, "तो अब मैं तुम्हारी आज्ञा चाहता हूं, तुम्हें शायद आश्चर्य होगा, पर मैं स्वयं नहीं जानता हूं कि पाप क्या है! अब मैं थोड़ी-सी तपस्या भी करूंगा, देखूंगा कि जिस बात को मैं अध्ययन तथा अनुभव से नहीं जान सका, क्या मैं उसे आराधना और साधना से जान सकता हूं."

रत्नांबर के चले जाने के बाद कुमारगिरि ने विशालदेव से कुछ प्रश्नों के उत्तर मांगे. अंत में उन्होंने कहा, "मैं तुम्हें दीक्षा दूंगा. मुक्ति का मार्ग दिखलाकर पाप से परिचित करा दूंगा."

उस दिन बीजगुप्त कारणवश बाहर चला गया. बीजगुप्त को न देखकर चित्रलेखा ने श्वेतांक से कहा, "श्वेतांक! मुझे प्यास लगी है."

. . .और जब श्वेतांक ने पानी पिलाना चाहा तो चित्रलेखा ने उसे समझाया, "पिपासा तृप्त होने की चीज नहीं. . . मुझे जल की आवश्यकता नहीं, मुझे मदिरा चाहिए."

बातों-बातों में जब चित्रलेखा ने मदिरा-पात्र श्वेतांक के होठों से लगा दिया तो श्वेतांक ने चित्रलेखा का हाथ जोर से पकड़ लिया, "देवि, मेरे जीवन में तुम बवंडर बनकर क्यों आ पड़ी?"

एकाएक चित्रलेखा गंभीर हो गयी. उसने श्वेतांक को स्थिति-बोध करा दिया, "कभी इस बात की कल्पना तक मत करना कि मैं तुम्हारे जीवन में आ सकती हूं."

इस घटनाक्रम के बाद श्वेतांक बीजगुप्त से क्षमा मांगने लगा पर बीजगुप्त ने उसे समझाया, "इच्छाएं प्रबल रूप धारण करके तुम्हें सतायेंगी और तुम्हें उनका दमन करना पड़ेगा. यहीं पर तुम्हारी आत्मशक्ति की परीक्षा होगी." पर श्वेतांक अपराध का दंड मांग रहा था. हारकर बीजगुप्त ने कहा, "अपराध तो तुमने किया ही नहीं. अपराध कर्म में होता है विचार में नहीं. तुम दंड चाहते हो तो तुम्हें नित्य की भांति भविष्य में चित्रलेखा को उसके भवन तक पहुंचाना होगा."

उस दिन कुमारगिरि विशालदेव को उपासना का महत्व समझा रहे थे. सूर्यास्त हो चुका था. उसी समय एक स्त्री के साथ एक पुरुष ने प्रवेश किया. पुरुष—बीजगुप्त और स्त्री—चित्रलेखा. योगी की आंखें नर्तकी की आंखों से क्षण भर के लिए मिलीं. वासना तपस्या के सामने कांप उठी. दोनों ने एक दूसरे में आकर्षण देखा. योगी ने ज्ञान का और नर्तकी ने सौंदर्य का. बातचीत के बीच चुप बैठे बीजगुप्त ने क्या देखा, यह वह खुद ही न समझ सका. उसके हृदय में एक प्रकार की अशांति उत्पन्न हो गयी.

महायज्ञ के अभिमंत्रित धूम्र से सुवासित राज-प्रासाद के विशाल प्रांगण में सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य के अतिथि आसीन थे. महायज्ञ के बाद यह सभा दर्शन पर तर्क करने के लिए एकत्र हुई थी. सभा में योगी कुमारगिरि और चाणक्य में तर्क होता रहा. कुमारगिरि ने जब चाणक्य के प्रश्न के उत्तर में बताया कि धर्म को ईश्वर ने मनुष्य की अंतरात्मा द्वारा जन्म दिया है तो चाणक्य ने प्रतिप्रश्न किया, "और ईश्वर को?"

"ईश्वर अनादि है!" कुमारगिरि ने कहा, पर चाणक्य ने अपने अकाट्य तर्कों के आगे कुमारगिरि को शांत कर दिया. तभी चित्रलेखा के नृत्य की घोषणा हुई. नृत्य प्रारंभ हुआ भी, पर कुमारगिरि की इस घोषणा ने नृत्य में व्यवधान किया कि वे इसी समय सभा को ईश्वर के दर्शन करा सकते हैं. योग की शक्ति से उन्होंने ऐसा किया भी. . . पर चाणक्य और चित्रलेखा इस प्रभाव से मुक्त रहे. चित्रलेखा ने अपने तर्कों से सभी को शांत कर दिया. चाणक्य ने विजय-मुकुट चित्रलेखा को पहना दिया. साथ ही कुमारगिरि को दंडित करने का अधिकार भी उसे ही दिया. यह सुन कुमारगिरि क्रोध से लाल हो गये पर चित्रलेखा विचलित न हुई. उसने विजय मुकुट कुमारगिरि को पहनाकर दंडित कर ही दिया.

इसी समय सारंगी पर ईमन की गत बजी, बिजली की भांति चित्रलेखा सम पर चमक उठी. कुमारगिरि तेजी के साथ सभा मंडप के बाहर हो गया. 'जिसे सारी सभा विजयी समझती है. . . उसने मुझसे पराजय क्यों स्वीकारी?' कुमारगिरि सोच रहे हैं.

"विचित्र बात है योगी! पराजित प्रफुल्ल है और विजयी व्यग्र." अनायास सामने हो आयी चित्रलेखा ने योगी से कहा. कुमारगिरि ने जब उसके वहां पहुंचने का कारण पूछा तो चित्रलेखा ने बताया, "मैं अपने ऊपर विजय पाने वाले से दीक्षा लेने आयी हूं. कुमारगिरि सोचते रहे कि उसे दीक्षित करना कहां तक ठीक है! एक बार चित्रलेखा से चले जाने को कह उसे फिर पुकारा कुमारगिरि ने, "तुम्हें दीक्षा देने का अर्थ होगा स्वयं तुमसे दीक्षित होना. . ." योगी निस्तब्ध खड़ा था. चित्रलेखा कुमारगिरि के पैरों पर गिर पड़ी. योगी ने चित्रलेखा को उठाया. इसी क्रम में उसके हाथ चित्रलेखा के उरोजों से स्पर्श कर गये. चित्रलेखा आनंद से पुलकित हो उठी. कुमारगिरि की आंखें चित्रलेखा से जा मिलीं. चित्रलेखा ने अपना मुख थोड़ा-सा और बढ़ाया. कुमारगिरि ने अपना मुख हटाया नहीं. उसकी श्वास भी गरम हो गयी थी, इसी समय कुमारगिरि को सुनायी दिया, "गुरुदेव!" सामने ही विशालदेव खड़ा था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

एक बार फिर दीक्षा लेने की इच्छा व्यक्त करती हुई चित्रलेखा चल दी, "श्रीचरणों को दासी का प्रणाम,"

"तुम मूर्ख हो!" कुमारगिरि ने विशालदेव का हाथ जोर से पकड़ा.

"श्वेतांक!" उधर बीजगुप्त ने श्वेतांक को पुकारा.

"स्वामी!"

"आज तुम चित्रलेखा को बधाई देने जाओ और उसके मुखांकित भावों का अध्ययन करो."

श्वेतांक जब चित्रलेखा के भवन पहुंचा तो वह वहां न थी. देर रात गये लौटी तो उसने बताया कि वह कुमारगिरि से क्षमा मांगने गयी थी. चित्रलेखा ने श्वेतांक को सभी कुछ बताया पर प्रकारांतर से बीजगुप्त को न बताने की शपथ लिवा ली. उसने अपने और कुमारगिरि के संबंध को जन्म-जन्मांतर का संबंध बताया.

आधी रात के बाद लौटकर श्वेतांक ने बीजगुप्त को बताया कि चित्रलेखा की प्रतीक्षा में देरी हुई. पूछने पर श्वेतांक साफ झूठ बोल गया, "चित्रलेखा आचार्य चाणक्य के यहां आमंत्रित थी. . ."

बीजगुप्त ने बातचीत के बाद अपना अभिमत दिया, "चित्रलेखा परिस्थितियों के चक्र में पड़ गयी है. उसका कुमारगिरि के जीवन में आना घातक है और कुमारगिरि का उसके जीवन में आना."

बीजगुप्त उस दिन आर्यश्रेष्ठ मृत्युंजय के यहां आमंत्रित था, वह भी चित्रलेखा के साथ. यशोधरा को देखकर चित्रलेखा चकित हो गयी. आज तक उसे अपनी सुंदरता पर गर्व था. गायन, वादन एवं नृत्य के कार्यक्रम के बाद जब बीजगुप्त और यशोधरा का वार्तालाप हुआ तो यशोधरा जान सकी कि एक बहुत बड़े आचार्य द्वारा उस पुरुष को पाप का पता लगाने का उपयुक्त स्थान समझा गया है. . . जिस व्यक्ति से प्रणय-बंधन की कल्पना से उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठा था. सहसा उसका ध्यान श्वेतांक की ओर चला गया. समारोह में कुमारगिरि भी थे. उन्होंने मन ही मन चित्रलेखा और यशोधरा में तुलना करनी प्रारंभ कर दी. एक में मादकता प्रधान थी दूसरी में शांति. यशोधरा, बीजगुप्त और श्वेतांक में तुलना कर रही थी.

भोजन समाप्त हुआ और सब लोग अपने आवासों को लौट गये. शेष रह गये वही लोग जिन्हें आर्यश्रेष्ठ ने विशेष प्रयोजन से रोका था. बीजगुप्त और यशोधरा के विवाह की बात मृत्युंजय ने ही प्रारंभ की. बीजगुप्त का कहना था कि विधिवत न सही पर चित्रलेखा उसकी पत्नी जैसी है. अतः विवाह कर पाना उसके लिए संभव न होगा. किंतु थोड़े से तर्क के बाद जब मृत्युंजय, कुमारगिरि और चित्रलेखा ने बीजगुप्त को यह स्पष्ट कर दिया कि विधिवत विवाह बीजगुप्त के लिए जरूरी है, तो बीजगुप्त अपने आवास को चल दिया. जाते-जाते चित्रलेखा भी मृत्युंजय को आश्वस्त कर गयी कि वह यशोधरा और बीजगुप्त के विवाह की दिशा में बीजगुप्त को प्रेरित करेगी. कुमारगिरि ने भी मृत्युंजय से यही कहा कि चित्रलेखा और बीजगुप्त का संबंध समाप्त होना ही चाहिए!

पति की मृत्यु के बाद पति के प्रेम से वंचित चित्रलेखा को बीजगुप्त का प्रेम मिला. इस बार उसने प्रेम की मादकता को देखा. . . और अब वह कुमारगिरि का प्रेम चाहती थ्री.

जिस समय चित्रलेखा कुमागिरि के आश्रम पहुंची, वे समाधिस्थ श्रे. समाधि समाप्त होने पर कुमारगिरि ने चित्रलेखा को शांत और ओजमय रूप में देखा. केसरिया रंग की रेशमी साड़ी पहने चित्रलेखा दीक्षा लेने आयी थी.

"भगवान की इच्छा है कि मैं संसारस्थित वासनाओं से युद्ध करूं, तो फिर ऐसा ही हो!" कहकर कुमारगिरि ने विशाल देव को बुलाया.

योगी निस्तब्ध खड़ा था. चित्रलेखा कुमारगिरि के पैरों पर गिर पड़ी. योगी ने चित्रलेखा को उठाया. इसी क्रम में उसके हाथ चित्रलेखा के उरोजों से स्पर्श कर गये. . . . चित्रलेखा आनंद से पुलकित हो उठी. कुमारगिरि की आंखें चित्रलेखा से जा मिलीं. . . .

बीजगुप्त को अपराध-बोध हुआ तो उसने श्वेतांक के हाथों मृत्युंजय के पास क्षमा याचना करते हुए एक पत्र भिजवा दिया. पत्र लेकर श्वेतांक क्या गया बातचीत में एक नया परिचय ही निकल आया. मृत्युंजय श्वेतांक के पिता के गुरुभाई थे. मृत्युंजय के घर पर श्वेतांक कुछ समय यशोधरा के साथ भी बिता सका. उसी दिन जब मृत्युंजय ने भोजन पर बीजगुप्त और श्वेतांक को आमंत्रित किया तो वे पहुंचे. लंबी बातचीत और भोजन के दौरान एक क्षण ऐसा आया कि श्वेतांक और यशोधरा एक-दूसरे को देखते ही रह गये. बीजगुप्त ने कहा, "यही जीवन है!"

श्वेतांक ने घबराकर आंखें नीची कर लीं.

जो भय था, वही हुआ. अर्धरात्रि बीत चुकी थी. बीजगुप्त कुमारगिरि की कुटी की ओर चल दिया. वहां चित्रलेखा एक कोने में कुशासन पर पड़ी सो रही थी. सुबह उठकर चित्रलेखा ने बीजगुप्त को देखा तो उसके चेहरे पर भय उभर आया और कुमारगिरि के चेहरे पर आश्चर्य. जब बीजगुप्त को चित्रलेखा विदा कर आयी तो कुमारगिरि ने पूछा, "क्या यह संभव है कि दो व्यक्तियों से एक साथ प्रेम किया जाये!"

"पुरुष कर सकता है तो स्त्री क्यों नहीं कर सकती?" चित्रलेखा का तर्क था.

कुमारगिरि ने विस्तार से समझाया तो चित्रलेखा ममत्व तक छोड़ने को तैयार हो गयी.

उधर बीजगुप्त के लिए तो उसका जीवन ही भार हो गया. दोपहर भर वह विचार करता रहा. संध्या के समय उसने श्वेतांक के सामने काशी चलने का प्रस्ताव रखा. पर श्वेतांक अभी यशोधरा के कारण बाहर जाना नहीं चाहता था. बीजगुप्त की इच्छा देखकर जब जाना तय ही हो गया तो श्वेतांक मृत्युंजय के यहां विदा लेने जा पहुंचा. लौटा तो यशोधरा और मृत्युंजय के भी साथ चलने का समाचार लेकर. जिन कारणों से बीजगुप्त कहीं दूर जाना चाहते थे उनमें से एक उनके साथ ही जाने वाला बन गया.

बीजगुप्त, श्वेतांक और मृत्युंजय व यशोधरा साथ-साथ निकले यात्रा पर. बीजगुप्त का चेहरा उनके दुख की कथा कह रहा था. विश्राम के क्षणों में भी वे अकेले रहना चाहते थे. उधर श्वेतांक और यशोधरा को कतिपय निकट आने का अवसर मिल रहा था. यशोधरा की आंखों में श्वेतांक सहानुभूतिमिश्रित प्रेम की आभा देख रहे थे.

कुमारगिरि ने चित्रलेखा के पैरों की आहट सुनते ही नेत्र खोल दिये, "देवि, चित्रलेखा!"

"क्षमा करें गुरुदेव, आपके ध्यानावस्थित होने से पहले ही चली आयी."

"आज समाधि में मन नहीं लगता. . .अब साकार को अपनाने की इच्छा हो रही है. मैं एक प्रयोग करने जा रहा हूं. तुम्हें मेरी सहायता करनी पड़ेगी."

कुमारगिरि ने चित्रलेखा का हाथ पकड़ लिया. चित्रलेखा सिर से पैर तक सिहर उठी. चित्रलेखा को कुमारगिरि ने आलिंगन पाश में

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कसकर बांध लिया. उसके अधर चित्रलेखा के अधरों से मिल गये, "नर्तकी, मैं तुमसे प्रेम करता हूं."

"गुरुदेव, आप मार्गच्युत हो रहे हैं!" अब तक चित्रलेखा बल लगाकर अपना मुख हटा चुकी थी.

"मुझे क्षमा करना देवि!"

दूसरे दिन सुबह देर तक कुमारगिरि सोते रहे. चित्रलेखा ने विशालदेव से बीजगुप्त के भवन जाकर श्वेतांक को संदेश देने को कहा . . . पर विशालदेव उनकी तीर्थयात्रा का समाचार लेकर लौट आया. दोपहर में कुमारगिरि से फिर आमना-सामना हुआ.

"मैं गुरुदेव का आश्रम छोड़ना चाहती हूं. गुरुदेव के मार्ग में मैं बाधा बनकर खड़ी हो गयी हूं. यह पाप है."

"यह असंभव है नर्तकी. तुम आश्रम नहीं छोड़ सकती. तुम चली जाओगी तो मैं विजय किस पर पाऊंगा."

"नहीं, मैं तुम्हारे मार्ग पर नहीं चल सकती . . . पर अभी रुकूंगी. जब जाना चाहूंगी, तुम मुझे रोक नहीं सकोगे योगी!"

चित्रलेखा बीजगुप्त के जीवन से बिना उसकी इच्छा के चली गयी थी. यशोधरा उसके जीवन में बिना उसकी इच्छा के आ गयी थी. फिर श्वेतांक और यशोधरा की निकटता भी तो बढ़ रही थी . . . बीजगुप्त ने वापस पाटलिपुत्र लौटने का प्रस्ताव रखा. बीजगुप्त की मनःस्थिति देख सभी चलने को तैयार हो गये.

बीजगुप्त को अपने ऊपर आश्चर्य हुआ. वह बिना अपनी इच्छा के, बिना जाने हुए यशोधरा की ओर आकर्षित होता जा रहा था . . .

कुमार गिरि को चित्रलेखा के व्यवहार पर आश्चर्य हुआ. चित्रलेखा में यह परिवर्तन क्यों हुआ! उस दिन रात के समय कुमारगिरि ने चित्रलेखा को अपने पास बिठाया. बीजगुप्त और यशोधरा के प्रसंग ने चित्रलेखा को उद्विग्न कर दिया. कुमारगिरि ने साफ-साफ कहा था, "बीजगुप्त, तुम्हारा दास बनकर रहे, यह संभव नहीं है. अब वह यशोधरा के साथ वैवाहिक जीवन का आनंद उठा रहा है!"

फिर कुमारगिरि ने चित्रलेखा का हाथ पकड़ लिया था, "प्रेम ही मेरा धर्म हो गया है . . . आओ हम तुम एक हो जाएं!" कुमारगिरि का मुख झुका, चित्रलेखा का मुख कुछ ऊपर उठा. दोनों के अधर मिल गये. कुमारगिरि पागल की भांति बहकने लगे, "तुम मुझे डुबाने आयी हो. मैं भी डूबने के लिए तैयार हूं."

दूसरे दिन जब चित्रलेखा को विशालदेव के माध्यम से पता लगा कि बीजगुप्त का विवाह नहीं हुआ है और कुमारगिरि ने उसे झूठ कहकर बीजगुप्त से अलग करना चाहा है तो उसने कुमारगिरि को भला-बुरा कहकर आश्रम से बाहर चले जाने का निर्णय लिया. चित्रलेखा भी और कुमारगिरि भी, दोनों ही उस समय आवेश में कांप रहे थे.

श्वेतांक ने बीजगुप्त से अपने और यशोधरा के विवाह की बात की तो एकबारगी बीजगुप्त जड़ ही हो गये. उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि वे स्वयं यशोधरा से विवाह की इच्छा रखते हैं, पर मृत्युंजय के घर जाते-जाते उनकी विचारधारा ने पलटा खाया. और वे मृत्युंजय से श्वेतांक-यशोधरा के विवाह की बात कर आये. उसे अपनी संपत्ति तो दे ही दी, सामंत भी बनवा दिया.

उधर चित्रलेखा ने अपने ऐश्वर्य सदन में ही साधना का जीवन व्यतीत करना प्रारंभ किया. उसे अपने से ही घृणा हो गयी. बीजगुप्त के प्रति उसमें कितना गहरा प्रेम था, उसने इतने दिनों के वियोग के बाद अनुभव किया . . . पर अब वह भ्रष्ट हो चुकी थी. जितना अधिक वह रोती थी, उतनी ही उसे शांति मिलती थी.

श्वेतांक ने जब उसे आकर बताया कि आर्य बीजगुप्त ने कितना त्याग किया है. अपनी पदवी और समूची संपत्ति उसे दान में देकर यशोधरा से उसका विवाह निश्चित करा दिया है . . . तो चित्रलेखा का हृदय धड़कने लगा. उसकी आंखों में आंसू उमड़ आये.

आधी रात के बीत जाने के बाद बीजगुप्त चल पड़ा. अकेला. कुछ दूर जाने के बाद किसी की पगध्वनि सुनाई दी. यह अंधेरे में उभरती हुई आकृति चित्रलेखा की ही थी, "मेरे देवता! मुझे क्षमा कर दो!" वह बीजगुप्त के पैरों पर गिर पड़ी, "तुम मुझे शाप दो, दंडित करो! पर मुझसे घृणा न करो!"

बीजगुप्त का सारा शरीर कांप उठा, "चित्रलेखा! अब सब समाप्त हो चुका है."

. . . चित्रलेखा न मानी. हठपूर्वक एक रात्रि भर के लिए बीजगुप्त को लिवा ले गयी.

सुबह उठकर उसने बीजगुप्त का चरणामृत लिया, "मैं अपने को पवित्र कर रही हूं. मेरे स्वामी, मैं अपने मार्ग से विरत हो चुकी हूं. योगी कुमारगिरि की वासना का साधन बन चुकी हूं. आप समझ सकते हैं स्वामी, कि मैं आपके पास फिर क्यों नहीं आयी?"

"चित्रलेखा, प्रेम स्वयं में एक त्याग है, विस्मृति है, तन्मयता है! प्रेम के प्रांगण में कोई अपराध नहीं होता."

"नाथ, तो फिर तुम मुझे स्वीकार करो!"

"यह कैसे संभव है! मैंने वैभव त्याग दिया है. मैं भिखारी हूं . . ."

"मेरे पास अतुल धनराशि है. मैं तुम्हारी हूं तो . . ."

"वैभव मैंने अपनाने के लिए नहीं छोड़ा है . . . अब मैं तुम्हें एक भिखारिन के रूप में ही स्वीकार कर सकता हूं!"

"तो फिर ऐसा ही हो. संसार में हम दोनों भिखारी बनकर ही निकल पड़ें. मैं आज ही अपनी संपत्ति दान किये देती हूं."

एक वर्ष बाद !

महाप्रभु रत्नांबर ने श्वेतांक और विशालदेव के अनुभवजनित विचार सुने. फिर बोले, "तुम दोनों विभिन्न परिस्थितियों में रहे. तुम दोनों की पाप की धारणाएं भिन्न हो गई हैं. . .अब अपना अंतिम पाठ मुझसे सुने जाओ! . . . संसार में पाप कुछ भी नहीं है. वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है. . .जो कुछ मनुष्य करता है वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है और स्वभाव प्राकृतिक है, मनुष्य अपना स्वामी नहीं परिस्थितियों का दास है—विवश है. वह कर्ता नहीं केवल साधन है. फिर पुण्य और पाप कैसा? संसार में इसीलिए पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकी. . . यह मेरा मत है. . . □

● संक्षिप्त रूपांतर : अलका पांडे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरा सी बात

• इस्मत चुगताई

आत्मावलोकन

सारिका के रजत जयंती वर्ष के जनवरी प्रथम अंक से प्रारंभ इस स्तंभ में हम गत चौबीस वर्षों में सारिका में प्रकाशित २४ श्रेष्ठ कहानियों का पुनः प्रकाशन कर रहे हैं. इसके साथ ही हम कहानी पर एक वरिष्ठ रचनाकार की टिप्पणी भी आमंत्रित करते हैं. इस क्रम में प्रस्तुत है सारिका के नवंबर १९७० अंक में प्रकाशित यह कहानी और कवि-पत्रकार कन्हैयालाल नंदन की टिप्पणी.

"…यों, अच्छी तरह समझ गये न? एक जरा-सी बात है." वकील साहब ने आगे झुककर दुबले-पतले लड़के से पूछा. गोपालसिंह के किताबी चेहरे पर हल्दी निखरी हुई थी. नयी-नयी भूरी दाढ़ी सरसों की तरह फूट रही थी. कनपटियों से लंबी-लंबी डोरियां पसीने की बह रही थीं. जिन्हें वह बार-बार हथेलियों से पोंछ रहा था. उसने अपनी थकी हुई आंखें मनों बोझ की तरह ऊपर उठायीं.

उसकी आंखें देख वकील साहब लरजकर रह गये. सुनहरी पुतलियां गुस्से से कांप रही थी, जैसे दूध-भरी कटोरियों में कलाबत्तू के फूल तैर रहे हों, अल्लाह पाक ने ये अंखड़ियां कितनी रातें जाग-जागकर बनायी होंगी.

"नहीं, वकील साहब." गोपाल ने भरी हुई सिसकी ली. सिर और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचा हो गया. सूजे हुए पपोटों ने छलकती कटोरियों पर भारी परदे गिरा दिये.

"अमां यार, इतनी-सी बात समझ में नहीं आती? रक्खी से तुम्हारा नाजायज ताल्लुक था. तुम दोनों रात को. . ."

"नहीं," गोपालसिंह बेकरारी से सिर इधर-उधर पटकने लगा, जैसे वह किसी अनजाने फंदे से अपनी गरदन छुड़ाना चाहता हो. . . "ऐसा मत कहो, वकील साहब, मत कहो."

"सरदारजी. . ." वकील साहब ने जोर से मेज पर घूंसा मारा, "क्यों मेरा वक्त बरबाद करते हो. तुम्हारा बेटा मरना चाहता है तो साला कोई वकील उसकी जान नहीं बचा सकता."

गोपाल सिंह के बूढ़े बाप ने कराहकर पहलू बदला, "वकील साहब, मेरा इक्कोई पुत्तर ए. एहदी जान बचा लौ जी!"

"इसमें मेरा क्या दोष है सरदार जी कि आपका एक ही बेटा है. वह फांसी पर लटकने पर तुला हुआ है."

"जे एहनूं फांसी हो गयी, तां. . ." बूढ़ा सरदार बिलख उठा.

"जैसा मैं कहता हूं, यह वही बयान अदालत में दे दे तो फांसी नहीं होगी. इतनी-सी बात इसकी समझ में नहीं आती. इसके भेजे में गोबर भरा हुआ है. रक्खी से इसका ताल्लुक था. जोगिंदर ने रंगे हाथों पकड़ लिया. उसके सिर पर खून सवार हो गया, गंडासा लेकर पिल पड़ा, झपट में गंडासा जोगिंदर को लगा और वह वहीं ढेर हो गया. . ."

"यह झूठ है. गंडासा मेरे हाथ में था. मैं जोगिंदर को मारने के लिए. . ."

"फिर वही मुर्गे की एक टांग! सरदारजी, तुम्हारा लौंडा अव्वल नंबर का वो है. . ."

"गोपिया, मेरी तरफ देख पुत्तरा. . ." बूढ़े सरदार ने कहा. लड़का सहमकर और झुक गया. वह जानता था, बूढ़े बाप की आंखें गाढ़ी दलदली की तरह उसके जी को पकड़ लेंगी और फिर कभी नहीं छोड़ेंगी.

वकील साहब ने दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया. ऐसी बेबसी से उनका आज तक साबका नहीं पड़ा था. बड़े खुरदरे, बेमुरव्वत और कारोबारी किस्म के आदमी थे. पर जाने कितने डाकुओं, कातिलों और जहनी मरीजों को फांसी के तख्ते से उतार लाये थे. किसी मुकद्दमे में उन्होंने जज्बात को कभी शरीक नहीं किया. पर इस बूढ़े सरदार और दुबले-पतले लड़के को देखकर न जाने कहां ऐसी बेजगह घूंसा लगा था कि बेचारे बेबस-से हो गये थे. अल्लाह की कसम, क्या सूरत पायी थी बदनसीब ने, जैसे चंदन का पौदा सौंधी-सौंधी मिट्टी से तड़पकर निकल खड़ा हो.

"गोपाल सिंह, कभी फांसी देखी है?"

"नहीं."

"जानते हो बच्चा, फांसी कितनी भयानक होती है. आंखें उबलकर गालों पर लटक आती हैं. जबान बाहर निकल पड़ती है. गरदन खिंचकर हाथ भर लंबी हो जाती है." वकील साहब निहायत डरावनी और रहस्य-पूर्ण आवाज में गोपाल सिंह को डराने लगे कि खुद उनकी पीठ पर कानखजूरा रेंग गया. गोपालसिंह के ऊदे होंठ कांपे और वह दांतों में हथेली दबाकर रो पड़ा. दूध की कटोरियों में से तैरती कलाबत्तू की बोटियां उथल-पुथल हो गयीं.

"तुम रक्खी को बचपन से जानते हो?" वकील साहब ने बात घुमायी.

"हां जी."

"एन्ने-एन्ने कद्ठे खेल्लां करदे सी जी." बूढ़े सरदारजी ने जमीन से कोई फुटभर की बुलंदी नापी. गोपाल के चेहरे पर नर्म-नर्म बचपन बिखर गया. वकील साहब को फिर खुदा की कुदरत याद आ गयी. फरिश्तों ने न जाने कितने चेहरों की मासूमियत चुराकर इस छोकरे पर जाया की होगी.

"इसका मतलब है, तुम बचपन से एक-दूसरे को चाहते थे. . .घड़ी में मिलाप, तो घड़ी में झगड़ा. अभी गले में बांहें डाले हरी-हरी घास में बीर-बहूटियां ढूंढ़ रहे हो और जरा देर में एक-दूसरे के बाल खसोटने लगे. रक्खी तो पूरी मिर्च थी. किसी से उसकी दो घड़ी न बनती थी. बस एक गोपाल ही था जो उसको नादिरशाही झेल लेता था. दुत्कार देती, तो मुंह लटकाये मां के कूल्हों से लगकर बैठ जाता. फिर उसका मन चाहता और पुकारती, तो भागा-भागा उसके हुजूर में पहुंच जाता. थोड़ी बड़ी हुई तो दूसरी लड़कियों की टोली में सिर जोड़े न जाने क्या बातें किया करती. एकम गोपाल से फिरंट हो गयी."

"छोकरे बहुत खराब होते हैं. उनके मन में खोट होता है." रक्खी ने गोपाल को समझाया. और वह समझ गया.

"देख रे गोपी, अगर तूने कभी मुझसे परेम-वरेम किया तो अच्छा न होगा. चाची से कहकर इतने जूते लगवाऊंगी कि पगड़ी ढीली हो जायेगी."

"चल भूतनी, क्या बावले कुत्ते ने काटा है, जो मैं तुझसे परेम करूंगा." गोपाल चिढ़ जाता.

"क्यों रे पाजी, मुझमें क्या ऐब है? काली-कलूटी हूं, लंगड़ी हूं, कानी हूं, जो तू मुझसे परेम नहीं करेगा?" वह लड़ने लगती.

"बस मेरी मरजी होगी करूंगा, नहीं होगी नहीं करूंगा."

"आहा-हा-हा, बड़ा आया मरजी का सगा जी. जा चूल्हे में." वह उखड़ जाती और कई दिनों तक नाक उचकाये रहती. गोपाल की दुनिया अंधेरी हो जाती. वह पीला-पीला मुंह लिये इधर-उधर घूमता. फिर न जाने रक्खी की कौन-सी रग फड़कती, एक दम लुचई की तरह नर्म हो जाती.

"हाय गोपी, तेरे बिना कैसे जियूंगी! मैं तो संखिया खाके सो रहूंगी." गोपाल के मुंह पर रौनक आ जाती, आंखें सुलग उठतीं तो फिर वह एकदम पलटकर फन मारती, ". . .क्यों रे तूने क्या समझा है रे? खबरदार, जो मीठी-मीठी आंखों से देखा. कसम से, दीदे फोड़ दूंगी." वह बेबात भड़क उठती.

खुदा ने औरत-मर्द के दरम्यान क्या अजीब तूफान जोड़ दिया है. एक घूंट अमृत का है, तो एक घूंट जहर का. कभी गुस्से में प्यार, तो कभी प्यार में गुस्सा. दोनों में लज्जत. दोनों में दुख.

"गोपी रे, इधर मैं नहा रही हूं, तू दूसरी तरफ मुंह करके बैठना." मगर जब गोपाल ने ईमानदारी से मुंह ही न फेरा, बल्कि उठकर पत्थरों की ओट में चला गया, तो रक्खी बुरा मान गयी. और जब रक्खी की चीखों को सुनकर उसे बचाने पानी में कूदा, तो झाड़ का कांटा बन गयी. सारा मुंह खसोट डाला. खूब गालियां दीं. उसके बालों में झूल गयी. गरीब खुद डूबते-डूबते बचा.

"तेरी बला से, मुझे डूबने दिया होता सुअर. मैं तेरी कौन लगती हूं?" गोपाल के उज्र पर वह उल्टे ताने देने लगी. मगर जब वह खिसियाना सा वापस आने लगा, तो नर्म पड़ गयी, "चल जमनजले. अब तो तूने मुझे देख ही लिया, और तेरे कपड़े भी भीग गये हैं. उधर पत्थर पर सुखाने को डाल दे और तू भी नहा डाल. बड़ी सड़ांध आ रही है तुझमें से. मगर खबरदार, इधर न आना. पल्ली तरफ ही रहना, हां."

मगर कौन रहता है पल्ली तरफ. और फिर बाज दूरियां बड़ी खतरनाक होती हैं. शबराती पानी से बाहर, दूर था. उसने देख लिया, बड़ा दुंद मचाया. जाके रक्खी के बाबा से शिकायत ठोक दी. बड़ी ले-दे हुई. हालांकि गोपाल सिर्फ अपने जूड़े में अटकी हुई नथनी छुड़ाने में व्यस्त था. शबराती ने जो हाहाकार मचाया तो रक्खी का नथुना कटते-कटते बचा. सारे गांव में हुल्लड़ मच गया. रक्खी के शराबी बाप ने उसे तगड़ी मार लगायी, बाल पकड़ के सारे आंगन में घसीटा. फिर भूखा-प्यासा कोठरी में बंद कर दिया.

गोपालसिंह के औसान ऐसे खता हुए कि बुखार चढ़ आया. अगर टाइफ़ाइड में उसकी जान के लाले न पड़ गये होते, तो भानसिंह गंडासे से उसकी गरदन उड़ा देता. जिस दिन रक्खी की शादी जोगिंदर से हुई,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन को हमेशा अंकगणित की तरह नहीं जिया जा सकता।

—कन्हैयालाल नंदन

यह बात दुनियावी रूप से देखने में बिलकुल जरा-सी लगती है कि रक्खी का पति उसे बालों से पकड़े या गालों से, पुराने चीथड़े की तरह पटके या नये लिहाफ की तरह. चूंकि रक्खी से उसका सामाजिक रूप से स्वीकृत होने वाला कोई संबंध नहीं था, इसलिए रक्खी के लिए अपनी जिंदगी को दांव पर लगाने का उसे कोई वास्ता नहीं होना चाहिए था. अगर रक्खी के जिस्म पर उसकी मसकी हुई खाल के सिवा कुछ भी न रह कर गया था तो भी क्या! वह जोगिंदर सिंह की बाकायदा ब्याही हुई पत्नी थी. . . गोपाल की पूछो तो वह कुछ भी नहीं थी; कानून की नजर में संबंध नाजायज भी सिद्ध हो सके तो उसकी मनोवैज्ञानिक परिणति आदमी को फांसी के तख्ते से बचा लेती है. वकील बचाते ही हैं. तभी तो यह तरीका बताया कि रक्खी से गोपाल का नाजायज संबंध सिद्ध किये बिना उसकी फांसी नहीं टल सकती. लेकिन गोपाल उस संबंध को नाजायज मानने की बजाय फांसी के तख्ते पर झूल जाना मंजूर करता है. यहां तक कि जो पिता वकील से उसे किसी भी कीमत पर फांसी से बचा लेने की मिन्नतें

कर रहा था, वह भी गोपाल के इस गलत शर्त पर जिंदगी वापस लेने से इंकार करने में गर्व का अनुभव करने लगता है, छाती चौड़ी हो जाती है और वकील से कह देता है, "वकील साहब, मेरे पुत्तर ने जेहड़ा बयान दित्ताए ओहन बदलन दी जरूरत नहीं."

क्या यह कोरी भावुकता है, जिसे आज की चतुर-चालाक व्यावहारिक दुनिया के लिहाज से एक लिजलिजा मनोविकार समझकर, एक गयी गुजरी चीज मान लेना चाहिए? मेरा ख्याल है, भावुकता की पावनता चूंकि हमारी जिंदगी से खारिज होती गयी, शायद इसलिए हम आधुनिक भले बनते गये; आदमी कम से कमतर होते गये. जिंदगी की यही छोटी-छोटी भावुकताएं हैं, जो इंसान की जिंदगी को सही अर्थवत्ता देती रही हैं. भावना का यही ज्वार है, जो किसी कर्म का महन प्रेरक तत्व बनता है. जीवन को हमेशा अंकगणित की तरह जिया भी नहीं जा सकता . . . मुझे तो कई बार यह लगता है कि जिनकी जिंदगी से भावना के ज्वार खारिज हैं, वे अपने व्यावहारिक जीवन में सफल भले हो लें, जिंदगी जीने के असली सुख से वंचित रह जाते हैं.

इस्मत चुगताई की कलम की यह खूबी है कि वह गोपाल के जज्बे को पाठक के मन में इतना अनुकरणीय बना देती है कि पाठक भी गोपाल के पिता की तरह सोचने लगता है कि समाज में संबंधों की पावनता को गरिमा देने के लिए अगर फांसी भी चढ़ जाना पड़े तो क्या.

इतने वर्षों बाद 'सारिका' में छपी इस कहानी को फिर से पढ़कर मन में यह मांग फिर जागी कि अब की दुनिया के इन खूबसूरत भावुक पहलुओं को उभारनेवाली कहानियां और आनी चाहिए, जिनमें रोजमर्रा की जद्दोजहद और तल्खियों के बीच भी आदमी का अपना मन जी सकने का हौसला बना रहे. एक बार फिर इस कहानी के लिए इस्मत चुगताई को बधाई. □

वैद्यजी ने गोपाल की तरफ से जवाब दे दिया था.

"बीमारी से उठने के बाद तुमने रक्खी की शादी पर अफसोस किया होगा?" वकील साहब ने पूछा. गोपाल सोच में पड़ गया. बीमारी से उठकर बहुत दिन तो वह बस खाने को तरसता रहा. वैद्यजी कहते थे, बस पतली दाल दो. और गोपाल का जी चाहता था, वह सारी दुनिया को हड़प कर जाये.

हां, जब वह जरा तगड़ा हो गया और काम पर जाने लगा, रक्खी बनी-ठनी इतराती हुई सहेलियों के साथ ठिठोले करती, गहने चमकाती फिरती थी तो वह चिढ़-सा गया था. औरत की जात कितनी कमीनी होती है, यह सोचकर उसका कलेजा ठंडा हो गया था, इन्हें जेवर-कपड़ा दे दो और लौंडी बना लो.

"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई. . ." क्या लहक-लहककर गाया करती थी—हाय, गोपिये, तेरे बिना कैसे जियूंगी? और नामुराद जन्म-जली खूब जी रही थी.

"चल-चल तू कहां से गिरधर बन बैठा. मूरख तू तो निरा गोपाल है. . .और भई, तू मेरा तो कोई भी नहीं." वह एक दिन सूप मांगने को आयी तो गोपाल को चिढ़ाने लगी, न जाने क्यों उसकी आंखें छलक उठीं. वह ठट्ठा मारकर हंसने लगी, "अरे, कहीं मर्द भी रोया करते हैं. मर्द तो रुलाते हैं."

"जोगिंदर तुझे जी भर के रुलायेगा." उसने कोसा.

"रुलायेगा तो रोऊंगी, मेरा स्वामी जो हुआ."

तब गोपाल से बरदाश्त न हो सका और उसका जी चाहा, रक्खी के मुंह पर इतने जोर का थप्पड़ मारे कि उसके मुन्ने-मुन्ने सफेद दांत चावलों की तरह बिखर जायें, मगर उसने औरत पर हाथ छोड़ना नहीं सीखा था. वह उठकर जाने लगा तो रक्खी सहम गयी.

". . .अरे गोपाल जी, नाराज हो गये? ना जी, बिगड़ो नहीं." वह उसके पैरों में उलझ गयी, "हाय, जो तुम सच्ची रूठे तो मेरे पिरान निकल जावेंगे. अरे मेरी चोटी ऐंठ दो, थप्पड़ मार लो, पर नाराज न हो गोपिये. तू तो मेरा सब कुछ है." उसने बोझिल आवाज में कहा, "ब्याह तो अलग की बात है मितवा, मेरा-तेरा तो जनम-जनम का साथ है. तू मेरा गिरधर गोपाल नहीं तो और कौन है? कभी कोई संकट आन पड़ा तो तुझे ही पुकारूंगी. तब मेरी रक्षा के लिए तू अपना चक्र घुमाते आना, आयेगा ना? बचन दे!"

गोपाल उसे झिड़ककर ऊपर कोठरी में जाकर पड़ गया. उसने रक्खी को कोई बचन नहीं दिया, पर बचन देना-न-देना अपने बस की बात है?

वह जब भी आती. अपने पति के गुण गाने लगती, "हाय राम, मुझे कितना प्यार करता है कि बस. . ." वह आंखों में परियां नचाकर कहती और जब गोपाल की नाक तमतमा उठती तो वह चिढ़ाती, ". . .अरे गोपिया, तू मेरे मदर से जलता है!"

". . .और जूते जो मारता है, तब?"

"हां मारता है, तो दुलार भी तो कैसे करता है!" वह फाहिशा औरतों की तरह आंखें मटकाती, "सभी पति अपनी पत्नियों को मारते हैं. तेरे संग ब्याह होता तो तू क्या छोड़ देता? तू भी मारता."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं नहीं मारता."

"सच्ची? कभी प्यार से भी नहीं मारता?"

मगर रक्खी की यह हंसी थोड़े ही दिनों की थी. साल भी न बीता कि जोगिंदर कई-कई दिन घर से गायब रहने लगा. नशे में धुत्त आता, तो ऐसी बुरी तरह मारता कि सारे मोहल्ले में जगार हो जाती, चारों तरफ गालियां पड़तीं और खामोशी हो जाती.

तीसरे-चौथे दिन फिर वही. और फिर तो रोजाना का यह मामूल हो गया. इधर आधी रात बीती. उधर रक्खी की चीखें गूंजी. मोहल्ले वाले भी कुछ आदी से हो गये. बहुत ही आफत मचती, तब ही जरा चौंकते.

मगर गोपाल के कानों में रक्खी की चीखें गर्म सलाखों की तरह उतर जातीं.

रक्खी के गहने आहिस्ता-आहिस्ता उसके जिस्म से गायब होने लगे. जोगिंदर हफ्तों के लिए गायब होने लगा. वह नौकरियां भी कई बदल चुका था. रक्खी खूब बीमार पड़ी. गर्भ गिर जाने से कुछ और परेशानियां खड़ी हो गयी थीं. अब उसने घर से निकलना भी कम कर दिया.

जब कोई मर्द अपनी पत्नी को मारे-पीटे या उपेक्षा बरते, तो लोग बीवी ही को कुसूरवार समझते हैं. रक्खी के सारे ऐब उभर आये. लोग मुंह पर सुना देते.

फिर एक दिन वह तालाब से पानी भरकर लौट रही थी तो गोपाल से मुठभेड़ हो गयी. उसके कपड़े मैले और फटे हुए थे. बाल खुश्क और चेहरा जर्द. वह बाल्टियां उठाकर चली तो पैर ठीक से नहीं पड़ रहे थे. गोपाल का खून खौल उठा. वह सामने खड़ा हो गया, "गोपी!" बड़े गरूर से उसने कहा, "मेरे रास्ते से हट जा!" उसकी सांस फूल रही थी. मगर उसने बाल्टियां नहीं छोड़ीं.

"कल रात तेरे पति के प्यार की बड़ी जोरदार आवाजें आ रही थीं." गोपाल ने ताना मारा.

"तेरी बला से. . .तू कौन?"

"मैं तेरा कोई नहीं रक्खी?"

"नहीं." रक्खी ने उबलते आंसुओं के डर से गरदन फेर ली.

"न गिरधर, न गोपाल?"

"मुझे जाने दे, गोपिया."

"मुझसे छिपाती है?"

"बताने से फायदा? कोई क्या कर सकता है उसका?"

"मैं उस हरामी का गला दबा सकता हूं."

"हाय मेरी मां! तू मूझे विधवा कर देगा रे?"

"हां, अब तेरी चीख मुझसे नहीं सुनी जाती."

"तू अपने कान में रूई ठूंस ले."

"मैं उसके हलक में किरपान उतार दूंगा," गोपाल कांपने लगा.

"हाय राम. अच्छा., मैं अब न चीखूंगी, मुंह में ताला लगा लूंगी."

"मैं तब भी तेरी चीख सुन लूंगा."

"मैं पुकारूं न पुकारूं, गोपाल को चक्र लेकर आना ही होगा." वह पत्थर पर बैठकर हंसने लगी. फिर उदास हो गयी. . ."वह नामुराद क्या करे? वह रंडी बड़ी निर्दयी है. नाराज हो जाती है तो निकाल के कुंडी चढ़ा लेती है. मर्द अपना गुस्सा और किस पर उतारे. . !"

"अगर अबके उसने तुझे मारा, तो मैं उसकी छुट्टी कर दूंगा." वह गुस्से से उठकर जाने लगा तो रक्खी ने उसके पैरों को हाथ लगाया. उसके शरीर की सारी शक्ति घुलकर पानी हो गयी.

"गोपी!" वह धीमी आवाज में बोली. गोपाल का जी डूबने लगा.

"क्या है?" वह चिढ़कर बोला.

"तेरी सूरत देखे जी नहीं भरता. वह भूखी नजरें उसके चेहरे पर गड़ाकर बोली.

"मुझे जाने दे रक्खी." गोपाल ने बिनती की.

"अरे, अब तू भागकर कहां जायेगा. गोपिये?" उसने पैर छोड़कर हाथ सूनी गोद में रख लिये. जो कुछ ही दिन हुए अंगारों से भर गयी थी,

"मेरा-तेरा नाता हाथ-पैर का नहीं, जो टूट सके. अपने मन से चला जा, पर मेरे मन से कैसे छूटेगा!"

गोपाल सिंह आगे झुककर सिर इधर-उधर झटकने लगा, जैसे वह किसी तंग सुराख में फंसकर रह गया हो.

"मुंशी जी, अगर कान कुरेदने से फुरसत हो तो पिछली पेशी की फाइल सरका दीजिए," वकील साहब ने ठंडी सांस ली, "सरदार जी, लड़का आनाकानी पर तुला हुआ है. इसमें कोई शक नहीं कि रक्खी ने इसे फांस रखा था."

"नहीं. . .वकील साहब, नहीं." गोपाल थक चुका था.

"अरे भई, कितने मर्द शराब पीते हैं और बीवियों को भी मारते हैं, मगर किसी की नींद उचाट नहीं होती."

"मगर उसकी चीखें मुझे पागल किये दे रही थीं, वकील साहब. तभी तो मैंने कसम खायी कि जोगिंदर को खत्म कर दूंगा, मगर मैं बड़ा कायर निकला. . ." गोपाल सिंह ने अपना सिर दोनों हाथों में थाम लिया.

. . .चीखें काली-कलूटी रात की धज्जियां उड़ा रही थीं. लोग दिन भर की मेहनत के थका देनेवाले नशे में चूर मदहोश थे. मगर एक बदनसीब जाग रहा था. उसने दरवाजे की कुंडी खटखटायी थी. दरवाजा खुला था और रक्खी को जोगिंदर सिंह चारपाई के चारों तरफ दौड़ा रहा था. उसके जिस्म पर एक तार भी बाकी न बचा था. उसका चंदन शरीर नीला हो रहा था, जैसे सांपों ने फन मारे हों. गोपाल को देखकर जोगिंदर आंख मिचमिचाने लगा.

"कौन हो तुम भाई?" उसने बड़े प्यार से पूछा.

"इसे मत मारो." गोपाल ने विनती की.

"क्यों?" वह बुरा मान गया, "तू कौन है रे, इसका यार?"

"नहीं."

"अरे. तू इसका यार नहीं? क्यों? भाई तू इसका यार क्यों नहीं. मैं भी इसका यार नहीं. इसमें से बदबू आती है. जरा भी खुशबू नहीं. सूंघ. जरा इसे सूंघ. अरे, मैं कहता हूं, संघ!"

"तुम नशे में हो, जोगिंदर."

"अच्छा इसका प्यार ले, बिल्कुल गंदे कूड़े जैसी बास आती है. अरे, तू मेरा भाई, तू इसका प्यार ले. . .मैं जो कहता हूं."

"बकवास बंद करो." गोपाल का खून खौल गया. उसने लपक के जोगिंदर का गरेबान पकड़ लिया और झटके देने लगा. मगर वह एक इंच भी न हिला, चट्टान की तरह हंसता रहा और गोपाल मक्खी की तरह भिनभिनाता रहा, फिर उसने हौले से मक्खी को दूर झाड़ दिया. और दरवाजा बंद कर लिया. और फिर चीखें उठीं. और गोपाल के दिमाग पर घन की तरह बरसती रहीं.

तब ही गोपाल के लिए इंदौर से एक रिश्ता आया और वह अपने पिताजी के संग अपनी दुल्हन को देखने चला गया. वहां निर्मल की मुस्कराहट थी. और रक्खी की चीखें नहीं थीं. मंगनी के बाद जब लौटे तो सब बधाई देने को आये. रक्खी तो उन दिनों नाचती फिरी. उसे खुश देखकर गोपाल भी खुश था.

"कैसा लगा?" जब सब इधर-उधर हो गये तो रक्खी ने गोपाल से पूछा.

"अच्छा लगा."

"निर्मल रानी की बता. मोटी तो नहीं?"

"नहीं ठीक है."

"लंबी है कि नाटी?"

"मेरी ठोड़ी तक आती है."

"एे. . .हाथ-पैर गोरे-गोरे, छोटे-छोटे?"

"बहुत गोरे तो नहीं, हां छोटे तो हैं."

"और कमर? कमर तो पतली होगी."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजन्मे की मौत

हेनरी जोपात

क्रिश्चियन से ऐसे प्रस्ताव की आशा एलिजाबेथ को बिल्कुल नहीं थी. ऐसे स्वार्थी आदमी का बच्चा उसके पेट में पल रहा है. बुद्ध का बच्चा! दूसरा क्रिश्चियन!

"और धन की पर्वाह न करना. मैं सब इंतजाम कर लूंगा... और हां, मैं अभी एक सप्ताह तक पेरिस में और हूं. तब तक तो हम रोज मिल सकते हैं—यहां. उसके बाद हम दोनों कार्यक्रम तय करके साथ-साथ जेनवा जायेंगे."

एलिजाबेथ ने क्रिश्चियन की बातों का कोई जवाब नहीं दिया. वह सोच रही थी, बच्चा जीवित रहना चाहिए... वह उसे कहीं नौकरी-चौकरी करके स्वयं पाल लेगी. मगर, इसके लिए उसे गरीबी.. अभावों... और संघर्षों का जीवन जीना होगा. पर यह कैसे होगा?

"कुछ पियोगी?"

"क्या है?"

"जिन."

जब वह जिन पी रही थी, तब क्रिश्चियन ने उसे सांत्वना देने का अभिनय करते हुए कहा, "सब ठीक हो जायेगा, एलिजाबेथ. मौत को छोड़कर आदमी अपनी सब समस्याओं को हल कर सकता है. तुम्हारी समस्या ऐसी गंभीर समस्या नहीं है."

"मौत? मगर खुद तुम अपने बच्चे की मौत का कारण बनते जा रहे हो!" क्रुद्ध स्वर में एलिजाबेथ ने कहा. "मैं उसे जन्म देना और पालना चाहती थी."

"किसकी मौत? एक ऐसे बच्चे की, जो अभी जन्मा भी नहीं है. यदि गर्भपात बंद हो जाये, तो दुनिया में आदमी खड़ा भी नहीं रह पायेगा. बेकार अपना दिमाग इन फिजूल की बातों में मत खपाओ. तुम अभी सुंदर हो, मोहक हो, जवान हो. सुख दो, सुख लो, और यह भी न भूलो कि सच्चे आशिक बड़ी मुश्किल से मिलते हैं. और तुम्हारा सबसे सच्चा आशिक मैं हूं—मैं." कहकर क्रिश्चियन ने उसके अंगों से खेलना शुरू कर दिया.

"प्रियतमे, मैं तुम्हें प्यार करता हूं."

उसका गुस्सा कम नहीं हुआ था, बढ़ता ही जा रहा था, और अब उसमें शामिल हो गयी थी उत्तेजना. उसने क्रिश्चियन के गले में दोनों हाथ डालकर उसे उग्रता से अपनी ओर खींचा, ताकि वह भोग के नशे में अपना आपा खो बैठे और सब कुछ भूल जाये.

क्रिश्चियन कुछ कहने को हुआ तो उसने उसके मुंह पर हाथ रखकर उसकी जबान बंद कर दी. कामावेश से उसका सारा शरीर कांप रहा था और वह क्रिश्चियन के साथ ऐसे पेश आ रही थी, मानो खुद उसके साथ बलात्कार कर रही हो. □

प्रस्तुति : हरि

"अब मुझे क्या मालूम...कोई मैंने नापी थी!"

"अरे भोलानाथ, कमर ही का तो सारा खेल है. अब के जाना तो सारा अंग बित्तियों से नापना, हां!"

"तूने अपने पति को नापा था?"

"उसका इस समय क्या जिक्र है?" वह बिगड़ गयी, "तू अपनी बता. प्यार लिया तूने?"

गोपाल सिर हिलाकर मुस्करा दिया.

"हां, मजा आ गया होगा. मेरा पति भी जब प्यार करता था तो समूची जान होंठों पर आ जाती थी."

"अब प्यार नहीं करता?" गोपाल ने कुरेदा.

"जाने दो, मैं तो जनम-जली हूं रे!" उसने ठंडी सांस भरी.

"गोपाल सिंह, रक्खी कोर्ट में यह बयान देने को तैयार है कि उसका तुमसे नाजायज ताल्लुक था." वकील साहब फिर बोले.

"कमीनी...सुअर की बच्ची..." गोपाल भड़क उठा, "झूठी.. हरामजादी!" वह रक्खी को गालियां देने लगा जो उसकी रक्खी को इतना बड़ा पाप लगा रही थी.

...और वे चीखें पहले से भी ज्यादा भयानक होती गयीं. रात के सन्नाटे को चीरती भूतनियों की तरह उभरतीं, फिर सिसकियों में डूब जातीं और फिर उभरतीं. गोपाल को सोते हुए भी डर लगता कि उसने आंख मुंदी, तो चीखें जाग पड़ेंगी. फिर नींद टूट जायेगी. कभी सुबह तक वह चीख के इंतजार में जागता रहता. न चीख आती. न नींद, तब उसने बड़े इत्मीनान से गंडासा मचान से उतारा. उसे पुलिया के पत्थर पर घिस-घिसकर तेज करने लगा.

आधी रात से ज्यादा बीत गयी. मगर चीख न आयी. शायद जोगिंदर सिंह की रंडी मेहरबान थी. गोपालसिंह को झपकियां आने लगीं और वह घर आकर सो रहा.

जब पहली चीख उसके कानों से टकरायी तो वह समझा, यह उसका वहम है. किसी पुरानी, बीती हुई चीख की प्रतिध्वनि है. मगर निरंतर आधे घंटे तक रक्खी की चीखें गोपाल के भेजे को आरे की तरह चीरती रहीं...

फिर क्या हुआ? कुछ याद नहीं...सिर्फ इतना याद है कि जोगिंदर रक्खी को बालों से पकड़े पुराने चीथड़े की तरह झटक रहा था. रक्खी के जिस्म पर उसकी मसकी हुई खाल के सिवा कुछ न था. नकसीर फूटकर गाढ़ा-गाढ़ा खून छाती की उठान-गिरान पर बहता हुआ घुटनों तक टपक रहा था. जहां कभी उसका सोंधा-सोंधा मुंह हुआ करता था, वहां सिर्फ एक गोश्त का लाल लोथड़ा था. जोगिंदर उसका सिर पाये पर पटक रहा था.

रक्खी के दायें हाथ की हड्डी टूटकर बाहर निकल पड़ी थी. जब सहारे के लिए वह जमीन को पकड़ने लगती तो उसका झूलता हुआ हाथ पीछे को हट जाता और हड्डी कच्ची मिट्टी के फर्श में धंस जाती.

वह कच्ची मिट्टी का फर्श गोपाल की धड़कती हुई छाती थी. यह आखिरी तसवीर उसकी पुतलियों ने समेट ली. फांसी के बाद चिता भी उस परछाई को भस्म न कर पायेगी.

उसके हाथों की दसों उंगलियां अनगिनत गंडासे बन गयीं. जोगिंदर का सिर उसकी गैंडे जैसी गरदन पर से सड़े हुए अमरूद की तरह टपककर चारपाई के नीचे लुढ़क गया. ठोकर से गोपाल ने सिर बाहर निकाला और खील-खील कर दिया.

गोपाल की सांस उसके फेफड़ों में उलझ रही थी. दूध की छलकती हुई कटोरियों में काला-काला विष पेचोताब खा रहा था. सुनहरी कलाबत्तू के फुंदने जंग खा गये थे.

"मैंने जोगिंदर को मारा है जी. और जनम-जनम मारता रहूंगा."

वकील साहब की आंखें लड़खड़ाकर झुक गयीं. बूढ़े सरदारजी की उम्र से बीस साल सूखे पत्तों की तरह झड़ गये, छाती चौड़ी हो गयी.

"वकील साहब!" उनकी आवाज में यकीन गूंज रहा था... "मेरे पुत्तर ने जेहड़ा बयान दित्ता ए, ओहन बदलन दी जरूरत नहीं." □

अनुवाद : लक्ष्मीचंद्र गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनरुत्थान

लेव ताल्सतोय

'वार एंड पीस' तथा 'अन्ना केरेनिना' जैसे महान उपन्यासों के रचयिता लेव ताल्स्तोय का अंतिम उपन्यास था 'रिसरेक्शन' अथवा 'पुनरुत्थान'. एक जमींदार नेख्लूदोव और कभी उसके घर में नौकरानी के रूप में रह रही कात्यूशा की यह कथा तत्कालीन रूसी सामंतवर्ग के दोहरे मूल्यों की कलई खोलती है.

कैदी मास्लोवा की जीवन कहानी बड़ी साधारण-सी है. उसकी मां एक जागीर में नौकरानी थी और उसी जागीर की गौशाला में ग्वालिन का काम करनेवाली स्त्री की बेटी थी. शादी-ब्याह हुआ नहीं था. यह जमींदारी दो बुढ़िया बहनों की मिलकियत थी. इन बुढ़िया बहनों ने भी उम्र भर शादी नहीं की थी. मास्लोवा की मां के पांच बच्चे बपतिस्मा होने से पूर्व ही मर चुके थे. मास्लोवा का भी वही होता, मगर ऐन वक्त पर बुढ़िया मालकिन गोशाला में आ पहुंची. बच्ची पर नजर पड़ते ही उसे रहम आ गया और उसी वक्त बच्ची को अपनी सरपरस्ती में लेने को तैयार हो गयी.

जब बच्ची तीन बरस की हुई तो एक दिन उसकी मां मर गयी. लड़की बला की खूबसूरत थी. आंखें काली-काली और स्वभाव चंचल एवं हंसमुख. दोनों बहनों को मनबहलाव का एक साधन मिल गया.

दिन बीतते गये और कात्यूशा सोलह बरस की हो गयी. एक दिन दोनों बहनों का जवान भतीजा कुछ दिन उनके पास ठहरने के लिए आया. वह बेहद अमीर था और विश्वविद्यालय में पढ़ता था. कात्यूशा, मन में ना ना करती हुई भी, उससे प्रेम करने लगी. दो साल बाद यही भतीजा अपनी रेजीमेंट में दाखिल होने जा रहा था. रास्ते में चार दिन के लिए अपनी फूफियों से मिलने के लिए रुक गया. रवाना होने से एक रात पहले उसने कात्यूशा की अस्मत लूटी, उसे सौ रूबल का नोट दिया और चलता बना. बाद में कात्यूशा को गर्भ ठहर गया था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों बहनों ने उसे काम से हटा दिया. इसके बाद उसे किसी पुलिस अफसर के घर में नौकरानी की जगह मिल गयी. यहां वह केवल तीन महीने टिक पायी. पचास साल का बूढ़ा पुलिस अफसर कात्यूशा से छेड़-छाड़ करने लगा था.

अब कहीं नौकरी ढूंढ़ना फिजूल था, क्योंकि प्रसव का समय निकट आ रहा था. और वह गांव की एक दायी के घर जा पहुंची. यह दायी लुक-छिपकर कच्ची शराब बेचा करती थी. कात्यूशा के बेटा हुआ, लेकिन कात्यूशा को दायी से छूत की बीमारी लग गयी, इसलिए उसे अपने बेटे को अनाथालाय में भेजना पड़ा. बच्चे ने वहां पहुंचते ही दम तोड़ दिया.

जब जेब में पैसे न रहे तो कात्यूशा को फिर नौकरी ढूंढ़नी पड़ी. इस बार उसे जंगलात के एक अफसर के घर जगह मिली. यह अफसर शादी-शुदा आदमी था पर वह पहले दिन से ही कात्यूशा के पीछे पड़ गया. आखिर वह उसे भ्रष्ट करने में सफल हो गया, पर उसकी पत्नी को पता चल गया. कात्यूशा वहां से अपनी मौसी के पास पहुंची. मौसी का लांड्री का काम था. यह काम कात्यूशा के वश का न था. उसने एक महिला के घर नौकरी कर ली. महिला के दो बच्चे थे, जो स्कूल में पढ़ते थे. बड़े बच्चे ने किताबें ताक पर रखीं और दिन-रात कात्यूशा के ईंदगिर्द चक्कर लगाने लगा. मां ने देखा तो दोष कात्यूशा के सिर मढ़ा और नौकरी से बरखास्त कर दिया.

ऐन इसी समय जब कात्यूशा की स्थिति संकटमय हो रही थी और कहीं भी कोई अभिभावक' नजर नहीं आ रहा था, एक कुटनी की नजर उस पर पड़ गयी. कुटनी ने कात्यूशा को ढेरों लालच दिये. कात्यूशा का मन ललक उठा और उसी दिन कुटनी ने एक गाड़ी पर उसे मदाम कितायेवा के बदनाम वेश्याघर में पहुंचा दिया.

उस दिन से कात्यूशा मास्लोवा का जीवन सभी मानवीय तथा दैवी नियमों के विरुद्ध घोर पाप का जीवन बन गया. इसी तरह के जीवन के सात साल बीत गये. इस बीच उसने दो बार अपना स्थान बदला, एक बार अस्पताल भी गयी. चकले में रिहाइश के सातवें साल, जब उसकी उम्र छब्बीस बरस की थी, वह घटना घटी, जिसके लिए उसे गिरफ्तार कर लिया गया. आज छह महीने तक चारों ओर हत्यारों के बीच रखे जाने के बाद उसे कचहरी में पेश होने के लिए ले जाया जा रहा था.

जब कात्यूशा मास्लोवा दोनों सिपाहियों की निगरानी में कचहरी के सामने पहुंची तो वह चल-चलकर थक चुकी थी. ऐन उसी वक्त प्रिंस द्मीत्री इवानोविच नेख्लूदोव अपने ऊंचे पलंग पर लेटा हुआ था. यह वही शख्स था, जिसने मास्लोवा की अस्मत लूटी थी.

लिखने की बड़ी मेज पर, एक ट्रे में कचहरी का सम्मन पड़ा था. ऊपर 'अविलंब' का लेबल लगा था. ग्यारह बजे कचहरी पहुंचना था. प्रिंस नेख्लूदोव जूरी का सदस्य था. सात वर्ष पहले वह नौकरी छोड़ चुका था. विस्तृत जमींदारी थी. कचहरी जाते समय रास्ते भर वह यही सोचता रहा कि उसे प्रिंसेस कोर्चागिन, जिसके साथ आजकल वह घूम-फिर रहा था, के साथ शादी करनी चाहिए या उस प्रधान की पत्नी के साथ, जिसके साथ बने संबंध तोड़ पाना उसके बस के बाहर की बात है. प्रधान जज ने कुछेक कागजों को उलट-कर देखा, पेशकार और सेक्रेटरी से कुछेक सवाल पूछे, जिनका उत्तर उन्होंने हां में दिया. इसके बाद उसने कैदियों को पेश करने का हुक्म दिया.

फौरन कटघरे का दरवाजा खुला और सशस्त्र पुलिस के दो सिपाही टोपियां लगाये और हाथों में नंगी तलवारें पकड़े दाखिल हुए. उनके पीछे तीन कैदी, एक आदमी और दो औरतें अंदर आयीं.

तीसरी कैदी मास्लोवा थी.

प्रधान जज तीसरी कैदी की ओर मुखातिब हुआ.

"तुम्हारा नाम!"

"ल्यूबोव." उसने जल्दी से कहा.

जिस समय कैदियों से सवाल पूछे जाने लगे थे तो नेख्लूदोव ने अपनी कमानीदार ऐनक नाक पर चढ़ा ली थी 'नहीं, यह नहीं हो सकता, नामुमकिन है!' उसकी आंखें कैदी के चेहरे पर से हटाये न हटती थीं. उसने कैदी का जवाब सुना और मन ही मन कहा—"ल्यूबोव! यह कैसे हो सकता है!'

प्रधान जज ने सिर हिलाया और फिर कैदी की ओर मुखातिब हुआ, "क्या बात है, यहां पर ल्यूबोव नहीं, तुम्हारा नाम कुछ और है."

कैदी चुप रही.

"तुम्हारा असली नाम क्या है? बपतिस्मे के वक्त तुम्हें कौन-सा नाम दिया गया?" जज ने गुस्से से लाल-पीला होते हुए पूछा.

"पहले मुझे येगातेदीना के नाम से बुलाते थे."

नेख्लूदोव ने फिर मन ही मन कहा, 'नहीं, यह नहीं हो सकता' पर अब उसे यकीन हो गया था कि यह वही लड़की है जो उस घर में आधी नौकरानी और आधी कुलीन बाला की तरह रहती थी. वही है, जिसे वह सचमुच कभी प्रेम करता था. और एक दिन मदांध होकर जिसकी उसने अस्मत लूटी थी. और अस्मत लूटने के बाद ऐसा त्यागा था कि फिर कभी याद तक न किया था.

मास्लोवा मूर्तिवत बैठी थी और नालिश करने वाले की ओर देखे जा रही थी. केवल कभी-कभी वह चौंक-सी उठती.

नेख्लूदोव अगली कतार में एक सिरे से दूसरी कुर्सी पर बैठा था और अपनी कमानीदार ऐनक हाथ में पकड़े एकटक मास्लोवा की ओर देखे जा रहा था. उस समय उसके अंदर एक संघर्ष चल रहा था जो, जटिल भी था और दुखपूर्ण भी. . . .और वकील यह सिद्ध करने में जुटे हुए थे कि कात्यूशा ने 17 जनवरी, 1880 के दिन एक व्यापारी को जहर देकर मौत के घाट उतारा

प्रधान जज विचार-कक्ष से बाहर निकला. उसके हाथ में एक कागज था, जिसे उसने पढ़ना शुरू कर दिया, "तिथि 18 अप्रैल, 1880 महाराजाधिराज के आदेशानुसार अदालत शचांका येगातेरीना मास्लोवा, उम्र 27 साल को सब प्रकार के संपत्ति अधिकारों से वंचित करके चार साल के लिए कड़ी मशक्कत की सजा देकर साइबेरिया भेजती है. . ."

जो बुरे विचार नेख्लूदोव के मन में उठे थे, वे सब गायब हो गये. 'इस मामले को यहीं पर छोड़ा नहीं जा सकता, नामुमकिन है.' उसने मन ही मन कहा और बरामदे में तेज-तेज चलता हुआ प्रधान जज के पास जा पहुंचा, "जनाब, इजाजत हो तो मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूं. यह इस मुकद्दमे के बारे में है, जिसका अभी-अभी फैसला हुआ है. मैं जूरी का एक सदस्य हूं."

"जरूर, जरूर. . .मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हूं?"

"मास्लोवा के बारे में जो जवाब दिया गया, उसमें एक भूल हो गयी. उस पर जहर देने का जुर्म नहीं है. फिर भी उसे बामशक्कत की कड़ी सजा दी गयी है."

"आपके जवाबों की ही बिना पर अदालत ने सजा दी है."

"लेकिन क्या अब इस गलती को ठीक नहीं किया जा सकता!"

"अपील करनी हो तो हमेशा कोई न कोई वजह तो मिल ही सकती है. आपको किसी वकील से सलाह लेनी होगी." प्रधान जज ने चलते-चलते कहा और सिर पर तिरछे से अंदाज से टोप पहना. उसे स्विटजरलैंड से आयी उस लड़की से होटल में मिलने की जल्दी थी, जो पहले उसके बच्चों की गवर्नेस रह चुकी थी और उन्हीं दिनों इनका रोमांस शुरू हुआ था. . .

मास्लोवा ने घूमकर देखा, फिर सिर झटककर और छाती फुलाकर जाली के पास आ गयी. उसके चेहरे पर वही तत्परता का भाव था जिससे नेख्लूदोव भली-भांति परिचित था. दो कैदियों के बीच जगह बनाते हुए वह खड़ी हो गयी और विस्मित प्रश्नसूचक नेत्रों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेख्लूदोव की ओर एकटक देखने लगी. नेख्लूदोव के कपड़े देखकर उसने समझ लिया कि यह कोई अमीर आदमी है और मुस्कराने लगी.

"आप मुझसे मिलना चाहते हैं?" उसने मुस्कराते हुए पूछा और अपना चेहरा जाली की ओर नजदीक ले आयी.

"मैं. . . मैं. . . मिलना चाहता था. . . मैं आपसे मिलना. . ."

मास्लोवा को नेख्लूदोव की आवाज सुनाई नहीं दी, पर जब वह बोल रहा था तो उसके चेहरे के भाव को देखकर उसे उसकी याद हो आयी. किंतु वह अपनी आंखों पर विश्वास नहीं कर पा रही थी. फिर भी उसके चेहरे पर से मुस्कराहट गायब हो गयी और माथे पर गहरी यंत्रणा की रेखाएं खिंच गयीं.

'ठीक है, मैं अपना कर्त्तव्य निभा रहा हूं—अपना अपराध स्वीकार कर रहा हूं.' नेख्लूदोव ने सोचा और यह सोचते ही उसकी आंखों में आंसू आ गये और गला भर आया, "मैं तुमसे माफी मांगने आया हूं. . . मैं जानता हूं कि तुम्हारे लिए क्षमा करना आसान नहीं है. . . मैं अपने पिछले किये को मिटा तो नहीं सकता, लेकिन अब मैं यथाशक्ति जो भी कर सकता हूं, करूंगा. मुझे बताओ. . ."

"प्रायश्चित करने की कौन-सी बात है. जो होना था, हो गया. अब वह बीते दिनों की बात है." मास्लोवा ने कहा.

"मुझे मालूम था, मुझे पक्का विश्वास था कि तुमने कोई जुर्म नहीं किया." नेख्लूदोव ने कहा.

"हां, सो तो है ही. मैं भला कोई चोर हूं या डाकू. बात सारी वकीलों की है. सब कहती हैं कि दरखास्त देनी चाहिए."

"जरूर करनी चाहिए," नेख्लूदोव ने कहा, "मैंने एक वकील से बात कर ली है."

गत रात उसकी दुरात्मा उसे तरह-तरह के मशविरे देती रही थी. अब फिर उसकी आवाज आने लगी. दुरात्मा उसका मन कर्त्तव्य पर से हटाकर उसके परिणामों की ओर ले जाने की चेष्टा करने लगी. उसे समझाने लगी, 'अब इस स्त्री का तुम कुछ नहीं बना सकते. तुम केवल पांवों में बेड़ियां डाल लोगे, जो तुम्हें ले डूबेंगी और तुम दूसरों के लिए कुछ नहीं कर पाओगे. . . क्या यह बेहतर नहीं कि तुम्हारे बटुए में इस वक्त जितने रुपये हैं, इसके हवाले करो, इसे खैर-बाद कहो और इससे सदा के लिए पल्ला छुड़ाओ?' लेकिन उसे महसूस हुआ जैसे एन उसी वक्त उसकी आत्मा में एक महत्वपूर्ण घटना घटने लगी है. उसका आंतारिक जीवन डगमगाने लगा है. तनिक-सी भी कुचेष्टा उसे डुबो देगी और सुचेष्टा उसे उबार लेगी. उसने भगवान से सहायता मांगी, उस भगवान से जिसकी उपस्थिति उसने दो दिन पहले अपनी आत्मा में महसूस की थी. भगवान ने उसकी प्रार्थना सुनी और नेख्लूदोव ने फौरन मास्लोवा से सब कुछ कहने का निश्चय किया.

"कात्यूशा, मैं तो तुमसे क्षमा मांगने आया हूं और तुमने मुझे कोई उत्तर नहीं दिया. क्या तुम मुझे कभी माफ कर पाओगी. . .?"

"कैसी अजीब बातें कर रहे हैं आप." मास्लोवा ने मुस्कराकर कहा.

नेख्लूदोव को लगा जैसे उसकी मुस्कान में तिरस्कार की भावना छिपी हुई है. पर यह अजीब बात है कि इससे उसके दिल में घृणा नहीं उठी. बल्कि कोई नयी विचित्र शक्ति उसे मास्लोवा के और भी निकट ले जाने लगी. वह जानता था कि उसे मास्लोवा की आत्मा को जगाना है. यह काम मुश्किल होगा.

"मैं फिर आऊंगा." नेख्लूदोव ने कहा

"अच्छी बात है, तो जाओ." उसने जवाब में कहा और उसी तरह मुस्करायी जिस तरह वह उन आदमियों के सामने मुस्कराया करती थी, जिन्हें वह खुश करना चाहती थी.

"तुम मुझे मेरी बहन से भी ज्यादा अजीज हो." नेख्लूदोव ने कहा.

"अजीब बात है." उसने फिर कहा और सिर झटककर जाली के पीछे चली गयी.

इस भेंट से पहले नेख्लूदोव का खयाल था कि जब कात्यूशा को पता चलेगा कि उसके मन में कितना अनुताप है, जब वह यह जान जायेगी कि वह उसकी सेवा करना चाहता है तो वह बेहद खुश होगी, उसका हृदय द्रवित हो उठेगा और वह फिर पहले-सी कात्यूशा हो जायेगी, पर जब उसने देखा कि कात्यूशा का तो वहां लेशमात्र भी नहीं रहा है कि उसके स्थान पर अब मास्लोवा है तो बेहद हैरान और भयभीत हो उठा.

जो वार्डर मास्लोवा को साथ लेकर आया था, वह कुछ दूर हटकर खिड़की के दासे पर जा बैठा. नेख्लूदोव के लिए निर्णायक क्षण आ पहुंचा था. वह सारा वक्त मन ही मन अपने को धिक्कारता रहा था कि उसने पहली बार मास्लोवा से मिलने पर मुख्य बात नहीं कही. अब वह निश्चय करके आया था कि उससे साफ कह देगा कि मैं तुमसे शादी करूंगा.

"मैं अपने पाप का प्रायश्चित करना चाहता हूं. बातों से नहीं, बल्कि कार्य से. मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं तुमसे शादी करूंगा"

सहसा मास्लोवा के चेहरे पर भय छा गया. उसकी ऐंचीतानी आंखें नेख्लूदोव के चेहरे पर गड़ गयीं, मगर फिर भी ऐसा लग रहा था जैसे उसे देख नहीं रही हैं.

"यह किसलिए?" गुस्से से भौहें सिकोड़कर उसने कहा.

"भगवान के सामने मैं अपना कर्त्तव्य निभाना चाहता हूं."

"अब कौन-सा भगवान तुम्हें मिल गया है? क्या ऊल-जलूल बोल रहे हो? भगवान? कौन-सा भगवान? तुम्हें उस वक्त भगवान को याद करना था. . ." मास्लोवा ने कहा और उसका मुंह खुला का खुला रह गया.

अब जाकर नेख्लूदोव को पता चला कि मास्लोवा की सांस में से शराब की गंध आ रही है. वह मास्लोवा की उत्तेजना का कारण समझ गया.

"अब मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊंगा. मैंने निश्चय कर लिया है और मैं अपनी बात पूरी करके ही रहूंगा."

"और मैं कहती हूं कि तू कभी पूरी नहीं करेगा." मास्लोवा बोली और जोर-जोर से हंसने लगी.

"कात्यूशा!" उसके हाथ को छूते हुए नेख्लूदोव कहने लगा.

"चला जा यहां से. तू ठहरा प्रिंस, मैं मुजरिम. तेरा यहां क्या काम?" उसने हाथ छुड़ाते हुए चीखकर कहा. गुस्से से उसका चेहरा विकल हो रहा था. "तू मेरे जरिए अपने आपको बचाना चाहता है? इस लोक में तूने मुझे भोगा और अब मुझसे ही अपना परलोक सुधारना चाहता है! मुझे तुझसे नफरत है. तेरी इन ऐनकों से, तेरी इस मोटी गंदी सूरत से मुझे नफरत है! चला जा यहां से! चला जा!" उसने चिल्लाकर कहा और उठ खड़ी हुई.

"तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है?" वह बोला.

"किस बात का, कि तुम मेरे साथ ब्याह करना चाहते हो! वह कभी नहीं होगा, मैं मर जाऊंगी लेकिन तुम्हारे साथ ब्याह नहीं करूंगी. . . ."

"कोई बात नहीं, पर मैं फिर भी तुम्हारी सेवा करता रहूंगा."

"हूं. तो यह बात है," जेलखाने से बाहर निकलते हुए नेख्लूदोव सोच रहा था. अब जाकर वह अपने अपराध की गंभीरता को पूरी तरह से समझ पा रहा था. यदि उसने प्रायश्चित करने की कोशिश नहीं की होती तो उसे मालूम ही नहीं हो पाता कि उसने कितना बड़ा अपराध किया है. इतना ही नहीं, स्वयं मास्लोवा भी नहीं समझ पाती कि उसके साथ कैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ुल्म हुआ है. अब नेख्लूदोव को अपने पाप की भयंकरता स्पष्टतया नजर आने लगी थी. अब वह देख रहा था कि उसने इस स्त्री की आत्मा को किस तरह रौंद डाला है. और अब मास्लोवा को भी नजर आने लगा था. वह समझने लगी थी कि उसके साथ कितना बुरा व्यवहार हुआ है. आज तक तो नेख्लूदोव के मन में आत्मश्लाघा की भावना उठती रही थी और वह इसी भावना से जैसे खेलता रहा था.

दूसरे दिन सुबह नेख्लूदोव जल्दी जाग गया. पिछले दिनों की बातों को याद करते ही उसे भय ने जकड़ लिया, लेकिन इस भय के बावजूद वह पहले से भी अधिक दृढ़ता से उस काम को जारी रखना चाहता था, जो उसने शुरू किया था.

कात्यूशा के मुकद्दमे तथा उससे पहली बार मिलने के बाद नेख्लूदोव को ऐसा भास हुआ था जैसे वह फिर से जी उठा है और उसका हृदय विजय और उल्लास से भर उठा था, लेकिन यह भावना अब बिल्कुल खत्म हो चुकी है. आखिरी बार जब वह उससे मिलकर आया तो खुशी का स्थान भय और घृणा ने ले लिया था. वह अब भी इस निश्चय पर दृढ़ था कि वह उसे छोड़ेगा नहीं, और अगर वह मान गयी तो उससे अवश्य विवाह करेगा, अपने इस फैसले को बदलेगा नहीं.

दूसरे दिन वह फिर उसे मिलने जेलखाने गया.

"मुझे क्षमा करना."

"मैं क्या क्षमा कर सकता हूं. मैं तो. . ."नेख्लूदोव ने कहा. "कात्यूशा, मैंने जो कुछ तुम्हें कहा था, अब फिर कहूंगा. . .मुझसे शादी कर लो. अगर तुम नहीं चाहती हो तो मैं उस वक्त तक तुम्हारा साथ नहीं छोड़ूंगा. जहां जाओगी, वहीं तुम्हारे पीछे-पीछे जाऊंगा जब तक कि तुम अपना इरादा बदल नहीं लेती हो."

"यह तुम्हारा काम है. मैं और कुछ नहीं कहूंगी." मास्लोवा ने जवाब दिया और उसके होंठ फिर कांपने लगे.

"अब मैं देहात में जाऊंगा. और उसके बाद पीटर्सबर्ग. मैं पूरी-पूरी कोशिश करूंगा कि तुम्हारे मुकद्दमे पर. . . मेरा मतलब है हमारे मुकद्दमे पर फिर विचार हो और भगवान ने चाहा तो सज़ा मंसूख हो जायेगी."

"अगर मंसूख नहीं हुई तो तुम चिंता नहीं करना. मुझे अपने किये का फल मिल रहा है. . ."मास्लोवा ने कहा.

लगभग दो हफ्ते के बाद मास्लोवा का मुकद्दमा सेनेट के सामने पेश होगा, ऐसी संभावना थी. नेख्लूदोव को उस समय पीटर्सबर्ग में मौजूद होना था.

सबसे पहले नेख्लूदोव अपनी पास ही वाली मिट्टीवाली जागीर कुंज्मिंस्कोये गया. अपनी आमदनी का अधिकांश भाग उसे इसी जागीर से मिलता था.

कुंज्मिंस्कोये की जागीर के मालिकाना हक किसानों के हित में करके नेख्लूदोव उस जागीर में गया, जो उसे फूफियों से विरासत में मिली थी. उसका इरादा यह था कि कुंज्मिंस्कोये की तरह यहां पर भी जमीन का वैसा ही प्रबंध कर दिया जाये.

मास्को लौटकर नेख्लूदोव सीधा जेल के अस्पताल की ओर चल दिया. वह मास्लोवा को यह बुरी खबर सुना देना चाहता था कि सेनेट ने न्यायालय के निर्णय का समर्थन किया है और अब उसे साइबेरिया जाने के लिए तैयार रहना चाहिए. लेकिन वह वहां न थी.

संभव है, मास्लोवा को कैदियों की पहली टोली के साथ ही साइबेरिया भेज दिया जाये, यह सोचकर नेख्लूदोव ने अपनी रवानगी की तैयारी शुरू कर दी.

नेख्लूदोव को लगा जैसे कोई नया, अनजाना और खूबसूरत संसार उसकी आंखों के सामने खुल गया हो और उसका मन खुशी से भर उठा. जिन लोगों के प्रभाव से मास्लोवा ने कबूल किया था, उनमें से एक मारीया पाव्लोवना का था. इसका कारण यह था कि मास्लोवा मारीया पाव्लोवना से प्रेम करती थी. दूसरा प्रभाव सिमनसन का था और इसका कारण यह था कि सिमनसन मास्लोवा से प्रेम करता था.

उसके प्रेम का मास्लोवा पर निश्चित तौर पर प्रभाव पड़ा. नारी सुलभ अंतःप्रेरणा से मास्लोवा को शीघ्र ही पता चल गया कि वह उससे प्रेम करता है. यह सोचकर कि वह उस जैसे आदमी के हृदय में अपने प्रति प्रेम जागृत कर पायी है, मास्लोवा अपनी नजरों में उठने लगी. यद्यपि नेख्लूदोव ने उसके सामने शादी का प्रस्ताव रखा था तो इसलिए कि यह उदार हृदय व्यक्ति है और पीछे जो हुआ, उसे धो देना चाहता है. लेकिन सिमनसन तो उस मास्लोवा से प्रेम करता था, जो आज है.

'मैं जीना चाहता हूं. मैं चाहता हूं, मेरे परिवार हो, बच्चे हों, मैं इंसानों की तरह जीना चाहता हूं.' सहसा यह विचार नेख्लूदोव के मन में कौंध गया. जब आंखें नीची किये, तेज-तेज डग भरती हुई कात्यूशा कमरे में दाखिल हुई.

"तुम्हें मालूम है कि तुम्हारी सजा कम कर दी गयी है?"

"हां, मुझे वार्डर ने बताया था."

"ज्यों ही हुक्मनामे की असली कापी पहुंचेगी, तुम बाहर आ सकती हो और जहां भी रहना चाहो, उसका फैसला कर सकती हो. हम इस पर विचार कर लेंगे. . ."

सहसा कात्यूशा बीच में ही बोल उठी, "मुझे क्या विचारना है? जहां व्लादीमिर सिमनसन जायेंगे, उनके पीछे-पीछे मैं जाऊंगी."

'दो में से एक ही बात है—या तो यह सिमनसन से प्रेम करने लगी है और मेरी कुर्बानी बिल्कुल चाहती ही नहीं थी, यह कुर्बानी जिसकी मैं कल्पना करता रहा हूं कि इसके लिए कर रहा हूं या फिर यह है कि यह अब भी मुझसे प्रेम करती है और मेरी ही खातिर मुझे छोड़े जा रही है और अब सिमसन के साथ शादी करके अपना सर्वस्व एक ही दांव पर लगा देना चाहती है.' नेख्लूदोव ने सोचा. उसे अपने आप पर शर्म आने लगी.

"मुझे माफ कर दो जो मैं तुम्हारी इच्छा का पालन नहीं कर रही हूं. . . जाहिर है ऐसा ही होना चाहिए. तुम्हें भी जीना चाहिए."

"मुझे इसकी आशा नहीं थी." उसने कहा.

"तुम क्यों यहां रहो और यातना भोगो, तुम पहले ही काफी यातना भोग चुके हो."

"मैं तुमसे अभी विदा नहीं हो जाऊंगा. मैं तुमसे फिर मिलूंगा."

"मुझे माफ कर देना." कात्यूशा ने कहा. उसकी आवाज इतनी धीमी थी कि नेख्लूदोव बड़ी मुश्किल से सुन पाया. उनकी आंखें मिलीं. उन्हें देख नेख्लूदोव समझ गया कि उसके निर्णय के पीछे जिन दो कारणों को मैं सोच रहा था, उनमें से दूसरा ही सच है.

नेख्लूदोव सोया नहीं. बड़ी देर तक कमरे में चक्कर लगाता रहा. कात्यूशा के साथ अब उसे कोई काम न रहा था, लेकिन उसका दूसरा काम अभी खत्म नहीं हुआ था. न केवल खत्म नहीं हुआ था, बल्कि उसे पहले से कहीं अधिक बेचैन किये हुए था. और नेख्लूदोव से यह मांग कर रहा था कि वह सक्रिय रूप से कोई काम करे.

उसकी आंखों के सामने उस सैकड़ों-हजारों इंसानों का चित्र घूम गया, जो दुर्गंध भरे जेलखानों में बंद हैं. और जो लोग उन्हें बंद करते हैं—जरनल, सरकारी वकील तथा इंस्पेक्टर, उन्हें इन इंसानों की तनिक भी परवाह नहीं है. जो भंडाफोड़ करनेवाले को या तो पागल करार देते हैं या उसका नामोनिशान मिटा देते हैं.

उस रात नेख्लूदोव के लिए एक बिल्कुल ही नया जीवन आरंभ हुआ, इसलिए नहीं कि उसके लिए जीवन की परिस्थितियां बदल गयी थीं, बल्कि इसलिए कि उस रात के बाद जो कुछ भी वह करता, उसका उसके लिए नया और सर्वथा भिन्न अर्थ होता था. □

संक्षिप्त रूपांतर : कांता चौधरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंसी काका

• बलराज वर्मा

"जिंदगी के उलझे, टेढ़े-मेढ़े और अंधेरे रास्तों में आंखवाले ही भटकते हैं—होमर, मिल्टन, सूरदास नहीं!"—यह कथन हमारे जीवन का निष्कर्ष है या एक ऐसी बात जिसकी कि संभावना हो सकती है?—इस कथन और संभावना के मध्य पनपते भावावेग को उजागर करती उर्दू-कहानी कि वे कौन-से मंजर होते हैं जो व्यक्ति को एय्याश भी बना डालते हैं और फिर एक सूफी-संत भी . . .

"तुम बड़े निर्मोहीहो बंसी काका. हमेशा इसी तरह चुपचाप दिन भर एक इसी जगह बने बैठे रहते हो जबकि इतने सारे लोगों से तुम्हारा मेलजोल है. कभी-कभी हमारे गरीबखाने को भी पवित्र कर दिया करो. इस एकाकीपन से तुम्हें कोफ्त नहीं होती?"

"अंधा भीड़ में भी अकेला होता है भाई?"

तिबिया कालेज करौल बाग की एक चेंबरों में हम चार दोस्त घी-शक्कर की तरह मिलकर रहते थे. सबको कसरत का, दही की लस्सी का और घी-शक्कर का शौक था. मुहल्लेवाले हमसे बहुत खुश थे, क्योंकि हममें से कोई भी इधर-उधर ताकने-झांकने का आदी न था. शामू हलवाई, जो खालिस दूध-दही के अलावा शुद्ध घी की मठरियां और खालिस खोये के पेड़े भी बेचता था, हमारा बड़ा प्रशंसक था और अपनी दूकान की हर चीज पर हमें दस प्रतिशत की छूट दिया करता था. हम जब भी दूध या लस्सी पीने जाते, बंसी काका शामू की दूकान पर बैठे गाते-वजाते मिल जाते. बड़ी दर्द भरी आवाज थी बंसी की, जो दूर-दूर से ग्राहकों को खींच-खींचकर लाती. शामू उन्हें दो वक्त के खाने के अलावा कभी-कभी दूध, लस्सी और चाय वगैरह भी पिला दिया करता था.

लोग कहते—'बंसी काका की आवाज तो कन्हैया की बांसुरी है!'

बंसी काका अंधे थे, मगर जाहिर था कि वह जन्म के अंधे न थे, पूरी तरह जवान होने से पहले ही उनकी आंखों की रोशनी जाती रही थी, क्यों और कैसे, यह किसी को मालूम न था.

वक्त-बेवक्त बड़ी मस्ती में लहरा-लहराकर वह मीरा, कबीर और सूर के पद गाते और जो सुनता, वहीं का हो रहता. कई-एक भजन तो बंसी काका ने खुद भी घड़ रखे थे जो पूरे संतों की वाणी की तरह जब भी बंसी काका के गले से उभरते, सुननेवालों के दिलों को मोह लेते.

बंसी काका हमेशा प्रसन्नचित रहते, लिहाजा दूसरों को भी उनके अंधेपन की विपदा कभी न खलती थी. बिना कारण मुर्दे उखाड़ने से फायदा? फायदा तो जाहिर था कि कोई न था. मगर मुझे न जाने क्यों, यह सब जान लेने की बड़ी जिज्ञासा थी.

एक दिन मैंने पूछा, "आपका देश कौन-सा है काका?"

काका मुस्कराये और मुंह को ऊपर आसमान में उठाकर बोले, "बहुत दूर है भैया, बहुत दूर."

मैं उनका इशारा समझ गया, मगर अधिक कुरेदने के लिए फिर पूछा, "वहां ऊपर तो हम सबको ही एक न एक दिन जाना है काका, मेरा मतलब था, तुम रहनेवाले कहां के हो? तुम्हारा जन्म, तुम्हारा पालन-पोषण, तुम्हारी शिक्षा वगैरह कहां हुई?"

"देश वही होता है भैया, जहां से आदमी आता है, जिसकी याद से मन और आत्मा को शांति मिलती है. यह धरती तो बस शरीर की पालिका है—शरीर जो आत्मा की कब्र है. यह कब्र फटे तो रूह आजाद होकर अपने धाम जाये!"

वह हर बार हर किसी को इसी तरह टाल देते. कभी-कभी वह एक बुत की तरह हो जाते. ऐसा लगता मानो उन्होंने अपने वजूद के सारे किवाड़ बंद कर लिये हैं.

बंसी काका बहुत कम खाते थे. शामू कभी-कभी उनके लिए बड़ी-बड़ी स्वादिष्ट मिठाइयां बनाता, मगर वह तो जैसे जीभ के स्वाद की खातिर खाने को गुनाह समझते थे. बस, उतना ही खाते जितना जिंदा रहने के लिए जरूरी होता.

"खाने के लिए जिंदा रहना यानी सिर्फ खाने ही को जीवन का लक्ष्य बना लेना आदमी के लिए उचित नहीं. ज्यादा खाने से ज्यादा नींद आती है और आदमी का बदन सुस्त और काहिल बन जाता है और बुद्धि मंद पड़ जाती है."

"तुम्हें इससे क्या फर्क पड़ता है." एक बार मैंने यों ही चुटकी ली, "तुम्हारे कौन-से काम बंद हैं जिनके लिए चुस्ती-फुर्ती की जरूरत पड़े?"

अपनी नासमझी में न जाने मैं क्या-क्या बक जाता मगर वह कभी खफा न होते, हमेशा मुस्कराते रहते. बाद में मुझे पश्चाताप होता.

मुझे याद है कि वह सोते भी कभी-कभार ही थे. बस, अकेले पड़े रहते, उनकी ज्योतिविहीन आंखें बदस्तूर खुली रहतीं. वे क्या देखती हैं, क्या देखने की इच्छुक हैं कि कभी बंद ही नहीं होतीं. हैरत होती थी कि ऐसी खूबसूरत और मनमोहक आंखें जो पिघले हुए मोतियों की तरह स्वच्छ और चमकदार थीं, ज्योतिविहीन थीं. क्या वह वाकई अंधे थे?

कहते हैं एक बार दो चोर एक साथ शामू हलवाई की दूकान पर रात को चोरी करने आये. बंसी काका दूकान पर चारपाई पर लेटे हुए थे. चोरों ने दूकान का ताला तोड़ा ही था कि वह उठकर बैठ गये और चोरों को संबोधित कर बोले, "जो चीज तुम्हारी नहीं, उसे लेने की इच्छा करना भी पाप है भाई. वहीं रुक जाओ?"

कहते हैं, चोर जहां थे वहीं रुक गये और रात भर वैसे ही खड़े रहे. सुबह शामू आया तो उन्हें भी होश आया.

शामू ऐसे कितने ही किस्से सुनाता था अपने जाननेवालों को, वह कहता, "इनकी आंखों से मैंने कभी-कभी किरणें-सी निकलती देखी हैं. . . ठंडी सुहावनी किरणें. जब-जब ऐसा होता है तो इनके बदन से भी अजीबो-गरीब खुशबुएं निकलती हैं."

'रब का शुक्र है, लाख-लाख शुक्र है!' यह वाक्य वह अपनी बातचीत में अक्सर दोहराया करते.

एक बार मैं बीमार पड़ गया. बीमारी के कई कारण थे. दफ्तरी और घरेलू परेशानी और रानी की शादी—रानी, जिसने मेरे साथ जीने और मरने की कसमें खायी थीं, किसी और की हो गयी थी. कमरे में लेटा-लेटा मैं अपने हालात पर और गौर करने में चिंतामग्न था कि अचानक बंसी काका चले आये.

"सुना है, तुम बहुत बीमार हो भाई? बुजुर्गों ने चिंता को चिता समान माना है. मामूली खारिश को नजर-अंदाज करने की बजाय खुजलाना शुरू कर दोगे तो वह फोड़ा बन जायेगी. खारिश केवल चिंता होती है मगर फोड़ा तो बीमारी हो जाता है!!"

"आपको कैसे मालूम हुआ काका. . . कि मेरी बीमारी की वजह कोई परेशानी है?"

"मालूम कैसे नहीं होता भाई. तुम्हारा सारा चेहरा कह रहा है कि तुम किसी वजह से बेहद परेशान हो."

मैं कहना चाहता था कि आप तो अंधे हैं, आपको मेरे चेहरे के हाव-भाव कैसे दिखायी दे रहे हैं, मगर मैंने कुछ नहीं कहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंसी काका जैसे मेरी अनकही बात को ताड़ गये हों, बोले, "मुसीबत, परेशानी और बीमारी आदमी के बेहतर इंसान बनने में मददगार होती हैं. मुसीबत की आंख से आंख मिलाकर वह मुस्कराता है जो निडर हो, जिसमें हिम्मत और धीरज हो. वह लड़की जिसके लिए तुम इतने परेशान हो, तुम्हारी नहीं थी, जिसकी थी, जहां की थी, वहीं चली गयी. सच्चे इश्क की आग को जलाये रखने के लिए जिस ईंधन की जरूरत होती है, वह न तुममें था न उसमें. अब जबकि वह चली ही गयी है, किसी और की हो गयी है तो यह गम और गुस्सा कैसा? दुनिया को चलाने का जिम्मा तुम्हारा नहीं!"

उन्हें कैसे मालूम हुआ कि. . . वह रानी के बारे में क्या जानते हैं? . . . मन में आया कि पूछूं मगर मैंने कोई सवाल नहीं किया. वह जब तक बातें करते रहे, मेरे जहन में घंटियां-सी बजती रहीं, किसी मंदिर की घंटियां. मैं कब सो गया और वह कब लौट गये, मुझे मालूम नहीं.

वह छुट्टी का दिन था. मेरे साथी लड़के, जो दिल्ली के आसपास के गांवों के रहनेवाले थे, अपने-अपने घरों को चले गये थे. मैं अपने कमरे में बैठा अकेला बंसी काका के बारे में सोच रहा था. अच्छी-भली सेहत, शिक्षा और नौकरी के बावजूद मैं बिना कारण परेशान रहता हूं और एक वह हैं . . मस्त-मलंग, कलंदर. . जिनका घर है न घाट. . . तप और त्याग. . . .

रानी कैसे चली गयी मेरी जिंदगी से. . .

क्या बंसी काका के तप और त्याग के पीछे भी कोई रानी थी. . .

कौन नहीं जानता कि हिंसा बुरी चीज है. . .

झूठ बुरी चीज है. . .

चोरी बुरी चीज है. . . .

दूसरे की औरत . . .

रानी अब किसी दूसरे की औरत है. . .

रानी एक इंसान है, कोई बेजान चीज नहीं. . वह मेरी है . . .

मुझे रानी से ही मिलना चाहिए. उसके इस तरह चुपचाप मेरी जिंदगी से चले जाने की वजह पूछनी चाहिए. . .

मैं रुक गया. . .

रानी, तुम मुझे तोड़-फोड़ गयी हो. . .

सामने बंसी काका खड़े मुस्करा रहे थे.

"आओ, बाहर चलें. बाहर पार्क में बैठकर बातें करेंगे. इस अंधेरी घुटन में तुझे उलझनों के अलावा क्या मिलेगा?"

"मन उदास हो काका, तो खुला माहौल भी अच्छा नहीं लगता."

"भई, तुम चलो तो. मन से हार जाना सबसे बड़ी हार होती है. चलो, आओ तुम्हें आज अपनी हार की कहानी सुनाता हूं."

रास्ते में बंसी काका अपना एक अतिप्रिय गीत गुनगुनाते रहे. हम दोनों अजमल खां पार्क में जाकर बैठ गये.

"तुम समझते हो, मैं बड़ा पाक दामन और आत्मसंयम वाला इंसान हूं. लो, मैं आज तुम्हें अपने पतन की कहानी सुनाता हूं :

—जिला सयालकोट में डस्का नाम के एक गांव में हमारा घर था. इतना बड़ा-घर, आगे-पीछे के बीस तीस गांव में शायद एक भी न था. घर—दो मंजिला था. बारह कमरे नीचे थे और बारह ही ऊपर. मेरे दादा और उनके बड़े भाई, दोनों के तीन-तीन लड़के थे. सब के सब सिरकढ़, घड़ल्लेदार, तंदुरुस्त और हट्टे-कट्टे. सब के सब ब्याहे हुए थे. घर का नीचे का हिस्सा मेरे दादा के बड़े भाई, जिन्हें मैं बड़े दादा कहकर पुकारता था, और उनके बेटों को पास था और ऊपर का मेरे दादा-दादी और उनके बेटों के पास. . .

घर में दो ही चूल्हे जलते थे, एक नीचे और एक ऊपर. नीचेवाले चूल्हे पर बड़ी दादी और ऊपरवाले पर मेरी दादी की हुकूमत थी. सारी बहुएं मिलकर काम करती थीं. . .

बेशुमार जमीन थी हमारी. किसानों की जायदाद, जमीन और काम करनेवाले आदमियों से नापी जाती है. उस गांव में हमारा घर 'राजा का घर' कहकर बुलाया जाता था. मगर इस मान-प्रतिष्ठा का अभिमान हमारे बड़े दादा में था, न छोटे दादा में. घर की बड़ी साख थी. हर तरफ चैन की बंसी बजती थी. सुबह-शाम आरती होती थी जिसमें हम सब मिलकर शामिल होते थे. कृष्ण कन्हैया की बांसुरी के स्वर जो अब मुझे ध्यानमग्न होने पर सुनायी देते हैं, तब रात-दिन कानों में पड़ते थे. सुख-शांति, आराम-चैन का ऐसा माहौल बहुत कम घरों में देखने को मिलता है. गांव के पंडित लोग हमारे घर की मिसाल दिया करते.

जाटों का घराना होते हुए भी हमारा परिवार खत्रियों और राजपूत ठाकुरों की बराबरी में खड़ा होता था. घर की इज्जत और उसके सदस्यों के चरित्र और नेक तथा पवित्र चाल-चलन की चारों तरफ धाक थी. . .

जिंदगी बड़े मजे से कट रही थी कि दूसरे महायुद्ध ने घर की सारी व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया. घर के छह के छह नौजवान यानी मेरे पिता और उनके अपने चचेरे भाई, सब के सब फौज में भर्ती हो गये. हमारे पास जो जमीन-जायदाद थी उसका बहुत बड़ा हिस्सा मेरे दादा और उनके बड़े भाई को पहले महायुद्ध की सेवाओं के बदले में अंग्रेजी सरकार से ईनाम के तौर पर मिला था. जायदाद को और अधिक बढ़ाने का यह एक ही तरीका था एक फौजी घराने की नजर में. लिहाजा किसी ने कोई आपत्ति नहीं उठायी. घर के सारे नौजवान एक के बाद एक लगभग साल भर में ही लाम पर चले गये. . .

अब घर में दो बूढ़े थे, आठ औरतें और छह बच्चे थे. मैं सबसे बड़ा था और बी.ए. के आखिरी साल का विद्यार्थी. बड़े दादा के बड़े लड़के के अलावा बाकी दोनों भाई बे-औलाद थे. इधर हमारे यहां छोटे चाचा को छोड़कर बाकी दोनों भाइयों के एक-एक बच्चा था यानी मेरे समेत मेरे छोटे दादा के दो ही पोते थे. चार बच्चे बड़े ताऊ यानी बड़े दादा के बड़े बेटे के थे. . . .

मेरी सबसे छोटी चाची घर में सबसे हसीन और कम उम्र औरत थी. बड़े दादा की दोनों छोटी बहुएं थीं. रूप-रंग में खासी सुंदर थीं. . .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न जाने कितनी मेहनत और मशक्कत से हमारा घराना ऊपर उठा था, लेकिन खुदा की करनी क्या हुई कि चंद ही महीनों में हमारी दोनों दादियां और मेरी मां देखते-देखते स्वर्ग सिधार गयीं. अब घर में दो बूढ़े थे, पांच जवान औरतें थीं और हम छह बच्चे. बच्चों में एक मैं ही अठारह साल से कुछ ऊपर का था. बाकी के बच्चे छह, आठ और दस साल की उम्र तक के ही थे. . .

आगे कहते हुए मुझे शर्म आती है. मगर अब कहने ही बैठा हूं तो कह दूं. तुम सज्जन आदमी हो. मुझे यकीन है कि सब सुनकर मेरी खिल्ली नहीं उड़ाओगे. . . .

देखते-ही देखते न जाने दोनों बूढ़ों को क्या हो गया! . . जैसे आदमी किसी ऊंचे पहाड़ से फिसलकर लुढ़कता-लुढ़कता नीचे किसी गहरी और अंधकार भरी खाई में जा गिरता है, बिल्कुल वैसे ही वे भी अपनी डगर में डगमगाकर पाताल के अंधरों की तरफ सरकने लगे. . .

पहले पूजा और आरती का सिलसिला खत्म हुआ, फिर घर में मांस और मछली पकने लगी. फिर शराब आयी और फिर सिर के सफेद बाल खिजाब से रंगकर बूढ़े बिगड़े जवानों की तरह मचलने लगे. देखते ही देखते न जाने किन तरकीबों से उन्होंने बड़े दादा की दो छोटी बहुओं को पटा लिया. बाकी के बच्चे तो बहुत छोटे थे मगर मैं सब कुछ देख और समझ रहा था. जाहिर था कि बाकी की औरतें भी यह सब देख रही थीं. मगर अनपढ़, बेसहारा गंवार औरतें करती भी क्या. धीरे-धीरे उन दुष्टात्मा बूढ़ों ने मेरे अपने दादा की दूसरी बेसहारा बहू को भी फांस लिया. दोनों बूढ़े अब नीचे रहने लगे थे. वह घर जो कभी मंदिर था, भगवान का निवास स्थान था, जहां दिन-रात राम का नाम लिया जाता था और भगवान कृष्ण की लीलाओं के चर्चे होते थे, अब शराब, मांस, झूठ-फरेब, लोभ-लालच और भोगविलास का लीलाभवन बन गया था. अब वहां किसी का निवास था तो शैतान का. जाहिर है कि भगवान ऐसी गंदी, अंधेरी और नापाक कोठरी में नहीं रह सकते.

मां की मौत के बाद मैं अपनी सबसे बड़ी चार बच्चों वाली ताई के पास रहता और खाता-पीता था. ताई का अपना बड़ा बेटा मुश्किल से दस-ग्यारह साल का था. यह लड़का और बड़ी ताई की बाकी औलाद भी मुझे अपना बड़ा भाई समझती थी. औलादोंवाली इस ताई के अलावा बाकी सब की सब बूढ़ों की हविस का शिकार होने लगीं. खेती उन्होंने आधे पर उठा रखी थी. वहां से और लड़कों की कमाई का जो रुपया आता, बढ़े मजे से उड़ा जाते. मैं इस दुष्कर्म को रोकना चाहता था मगर मजबूर था. अकेला कर भी क्या सकता था. कालेज जाने के लिए मुझे बूढ़ों ने मोटर साइकिल खरीद दी थी और इस तरह मेरा मुंह बंद कर दिया था. . .

पाप और बदी, कहते हैं, बड़े रसूखवाले होते हैं, जहां पर फैलते हैं, वहीं छा जाते हैं और दूर तथा निकट की हर चीज उन्हीं के साये में आ जाती है. जहां काम का निवास होता है, वासना पनपती है, वहां नाम नहीं रहता. घर की इस रूहानी दरिद्रता का एहसास मुझे खाये जाता था, मगर मैंने कुछ न किया. उल्टा खुद भी उस धारा में बहने लगा.

एक ठंडभरी रात की बात है. सब लोग अपने-अपने कमरों में सो रहे थे और मैं ऊपर अपनी स्वर्गीय दादी जी के कमरे में पढ़ रहा था कि मेरी एक नीचेवाली चाची मेरे कमरे में चली आयी. यह मेरे दादा की सबसे छोटी बहू थी. बगैर कुछ कहे-सुने और जबान पर उंगली रखकर मुझे भी चुप रहने का संकेत करते हुए उसने इशारे से मुझे अपने साथ नीचे चलने को कहा. मैं बिना किसी हीलो-हुज्जत उसके साथ हो लिया. नीचे ले जाकर उसने मुझे वह दिखाया जो मैंने जाना-समझा तो पहले ही से था, लेकिन इस तरह अपनी आंखों से देखा न था. . .

दोनों बूढ़े मेरी दोनों चाचियों को आलफनंगा करके अपने साथ चिमटाये सो रहे थे. यह दृश्य मैं कोई दस मिनट तक देखता रहा, कभी एक कमरे में झांकता, कभी-कभी दूसरे में. मेरा जवान बदन गुस्से की बजाय खुद कामोत्तेजना की अग्नि में जलने लगा. यही संभवतः मेरी इस चाची का उद्देश्य था. वह मुझे चुपके-से अपने कमरे में ले आयी और बिना किसी पूर्व भूमिका के, यानी कुछ कहे-बोले बगैर कपड़े उतारकर मेरे सामने खड़ी हो गयी. . .

कहां गयीं मेरी पारिवारिक परंपराएं.

कहां गयीं वह तर्क बुद्धि की शक्तियां जिन पर मुझे गर्व था!

जब भी मन में हलचल मची हो तो बुद्धि के मापदंड भी बदल जाते हैं. अब जो औरत मेरे साथ लेटी हुई थी मेरी चाची, मेरी आदरणीया बुजुर्ग न थी, एक जवान औरत थी और मैं उसका बेटा-भतीजा न था, एक भरपूर मर्द था. . .उन लुटे-कुटे बूढ़ों की तुलना में अधिक उपयोगी वस्तु! . . .

गुनाह में कितनी लज्जत होती हैं, मैंने पहले कभी न जाना था. अब जो देखा-परखा और बाकायदा महसूस किया तो उस लज्जत ही का हो गया. . .

आज मैं उसे एक ऐसा गुनाह मानता हूं जिसे खुदा भले ही माफ कर दे, क्योंकि वह रहमतों का भंडार है, मगर मैं खुद कभी माफ नहीं कर सकता. कभी नहीं. . . आज. . .

आज मेरी वह चाची जिंदा होती तो क्या सोचती. तब उसके मन में क्या था. अक्ल दुनियावी मामलों में हमारी निगहबानी करती है मगर उसकी कार्रवाई का दायरा बहुत ही सीमित होता है. जब उस पर कामना सवार हो तो वह मदहोश होकर सो जाती है, मर जाती है. . .

दूसरी रात दूसरी चाची ने यह किस्सा दोहराया, और तीसरी रात तीसरी ने. अब यह हालत थी कि इन तीनों में से जो भी खाली होती, मैं खुद-ब-खुद उसके पास चला जाता. मेरे लिए वे सब परायी औरतें थीं जो मेरे काम आती थीं और मैं उनके काम आता था. मेरी जेबें अब रुपये-पैसे से भरी रहती थीं. एक मर्दाना वेश्या की तरह मैं सबसे मेहनताना लेता था—किसी से दस, किसी से बीस, कभी-कभी सौ-दो सौ भी. मुझे इस्तेमाल करनेवाली घर की हर औरत मेरी सेहत का खयाल रखती थी. मक्खन, दूध और दही की कमी तो हमारे घर में भगवान की दया से कभी न थी. इसके अलावा अंडे, मुर्गे और मछली भी हर दूसरे-तीसरे दिन खाने को मिलते. कभी-कभी ये औरतें शराब और सिगरेट से मेरी खातिर तवाजो किया करती थीं.

यह सिलसिला कोई साल भर चला. बूढ़े अब मुझ पर खास तौर से मेहरबान रहने लगे थे. मैं उनके गुनाह में बराबर का शरीक था. खा-खाकर भैंसा होता जा रहा था.

एक रात मैं नीचे से ऊपर आ रहा था कि अपनी छोटी चाची को, जो अभी तक गुनाह में शरीक न थी, एक अंधेरे कोने में चुपचाप दुबककर खड़े देखा. मैं उसे पहचान तो गया मगर बोला कुछ नहीं, चुपके-से अपने कमरे में आकर सो गया. अगली रात भी इसी तरह अपने उस बचे-टके काम से फारिग होकर जब मैं ऊपर अपने कमरे में आया तो देखा कि मेरे बिस्तर में कोई पहले ही से लेटा हुआ है.

यह मेरी छोटी चाची थी. हमारे घर की सबसे हसीन औरत. मेरी ही उम्र की इस औरत और नीचेवाली चाचियों में जमीन-आसमान का अंतर था. मैं तो जैसे नशे में बदमस्त हो गया. अपने और अपनी उस जवान तथा हसीन चाची के संबंधों को अपने तक गुप्त रखने के उद्देश्य से न चाहते हुए भी मुझे नीचे जाना पड़ता था. मगर इस तरह की बातें कब तक छिपी रह सकती हैं. अंततः बूढ़ों को भी हमारे इस नये ताल्लुक का इल्म हो गया. बजाय बुरा मानने के उन्होंने मेरी पीठ ठोंकी और चंद ही हफ्तों बाद यह चाची भी बाकायदा बूढ़ों की हवस का शिकार होने लगी.

अब इस घर में किसी को किसी का गिला न था. एक बच्चोंवाली ताई ही बची हुई थी, मगर घर में उसकी कोई पूछ न थी. छोटी चाची के नाज-नखरे हर किसी को उठाने पड़ते थे. मगर मेरे नाज-नखरे वह भी उसी तरह उठाती थी, जिस तरह मेरी दूसरी गुनहगार साथिनें. मन को बेलगाम छोड़ दो, तो वह मनमानी पर उतर आता है. और रोके से भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रुकता. नीचे ही नीचे सरकता जाता है. मैं भी उसी के साथ डूबता जा रहा था, गर्क होता जा रहा था. . .

हम बातें कर ही रहे थे कि एकाएक आसमान पर छोटे-छोटे काले बादलों के टुकड़े मंडराने लगे और हवा में भी किसी कदर खुनकी आने लगी.

"ये काली आंधी, झक्कड़ या तूफान के आसार हैं. . ." बंसी काका ने बात जारी रखते हुए फिर कहना शुरू किया. . .

"वह भी ऐसा ही बरसात का मौसम था. लगातार तीन दिन से पानी बरसे जा रहा था. वह रात तो बहुत ही काली और भयानक थी. छोटी चाची मेरे साथ ऊपर सो रही थी और दो चाचियां बूढ़ों के साथ नीचे.

दरवाजा जाहिर था कि नीचेवाली चाची ने खोला था जो उस रात संयोगवश अकेली थी. आनेवाला फौजी था—प्रताप चाचा, मेरी छोटी चाची का पति. उसकी आवाज सुनते ही छोटी चाची अपने कमरे में भाग गयी.

कुछ देर रुककर जब मैं नीचे आया तो देखा कि तीनों चाचियां और बूढ़े मुल्जिमों की तरह सिर झुकाये खड़े थे.

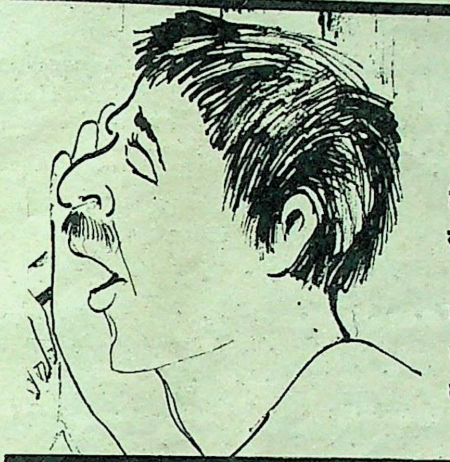

"मेरे पास वक्त नहीं है. जहर मैंने इस गिलास में घोल दिया है. एक-एक घूंट ही तुम लोगों के लिए काफी होगा. बिना हीलो-हुज्जत चुपके-से पी जाओ, वरना, मेरे पास खुखरी भी है और भरा हुआ पिस्तौल भी! . . . मैं तुम लोगों को दो मिनट देता हूं. अपने बनानेवाले को याद करो और अपने पापों के प्रायश्चित के लिए यह जहर पी लो!" . . .

प्रताप चाचा बड़े धीरज से, धीरे-धीरे बड़े नपे-तुले अंदाज में कह रहा था :

'भाभी का खत मुझे महीना भर पहले ही मिल गया था. मगर छुट्टी न मिलने की वजह से पहले न आ सका. आज अस्पताल से उठकर आ रहा हूं. सुबह मुझे अस्पताल खुलने से पहले वापस पहुंचना है. मेरे पास वक्त नहीं है. जहर मैंने इस गिलास में घोल दिया है. एक-एक घूंट ही तुम लोगों के लिए काफी होगा. बिना हीलो-हुज्जत चुपके से पी जाओ. वर्ना मेरे पास खुखरी भी है और भरा हुआ पिस्तौल भी. खामखाह हंगामा खड़ा करने का कोई फायदा नहीं. इस घर की मान-मर्यादा तो लुट ही चुकी, बाहरी रख-रखाव जो और जितना बचा हो वही गनीमत है. मैं तुम लोगों को एक मिनट देता हूं. अपने बनानेवाले को याद करो और अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए यह जहर पी लो.'

बड़े दादा ने गिलास चुपके से मुंह में लगा लिया. एक ही घूंट पीकर वह लुढ़क गया. इसी तरह दूसरे दादा और तीनों गुनहगार चाचियां भी चित्त हो गयीं.

मैं यह सब देख ही रहा था कि छोटी चाची भी चुपके से नीचे उतर आयी और बगैर कुछ कहे या पति की तरफ एक नजर देखे उसने भी एक घूंट निगल लिया.

छह लाशें सहन में पड़ी थीं. मेरी आत्मा मुझे धिक्कार रही थी. जैसे ही मैं जहर पीने के लिए आगे बढ़ा, बड़ी ताई चीख पड़ी, 'यह बच्चा है, इसका क्या दोष है!'

प्रताप चाचा ने एक जोर का झन्नाटेदार तमाचा मेरी कनपटी पर रसीद किया और अत्यधिक नफरत से गिलास का बाकी जहर मेरे मुंह पर दे मारा.

मैं मरा तो नहीं मगर जीवन भर के लिए अंधा हो गया."

बंसी काका एकाएक चुप हो गये. कहानी कहते-कहते उनका गला रुंध गया था.

"इसके बाद?" मैंने पूछा था.

"कहानी खत्म हो गयी. यही मेरी कहानी है."

"प्रताप का क्या बना? आपके दूसरे लोग. . . "

"वह सब जानना भी जरूरी है क्या? तुम तो इतना ही जानना चाहते थे ना कि मैं जो जन्म से अंधा नहीं हूं, अंधा कैसे हो गया. सो, आज मैंने तुम्हें बता दिया. यह मेरी शाम की कहानी है, मेरे पतन का किस्सा है."

बातों-बातों में हम मौसम का चलन कतई भूल गये थे. बंसी काका के आखिरी वाक्य का खत्म होना था कि न जाने कहां से तूफानभरी काली-आंधी ने एकाएक पार्क के सारे माहौल को अंधा कर दिया. आंधी के शोर के अलावा कुछ सुनायी न देता था.

हां, कहीं से औरतों और बच्चों की डरी-डरी चीख उभरती-मिटती जरूर सुनायी दे रही थी. देखते ही देखते चारों तरफ घुप्प अंधेरा छा गया.

संभव था कि हम भी एक-दूसरे से बिछुड़ जाते कि बंसी काका ने मेरा दाहिना हाथ मजबूती से पकड़ लिया.

उस रोज पहली बार मुझे महसूस हुआ कि बंसी काका की गिरफ्त में बेपनाह ताकत है.

"तुम तो अंधे थे ही, आज मैं भी अंधा हो गया बंसी काका."

बंसी काका ने कोई जवाब न दिया.

मुझे आंख बंद कर लेने की हिदायत देकर और मेरा हाथ पकड़-कर वह मुझे ले चले.

गिरते-पड़ते किसी तरह झक्कड़ का मुकाबला करते हम धीरे-धीरे बढ़ते रहे. कोई आधे घंटे के बाद जब आखिर उन्होंने मेरा हाथ छोड़ा तो यह कहकर कि—"तुम्हारा घर आ गया है, तुम दरवाजे पर खड़े हो. मैं चलता हूं." वह चले आये.

ये उनके आखिरी शब्द थे.

जैसे ही मैंने दरवाजे पर दस्तक दी, मेरे साथी राज ने दरवाजा खोलकर मुझे अंदर ले लिया. बंसी काका मुझे वाकई घर तक पहुंचा गये थे.

इसके बाद बंसी काका मुझे या हम में से किसी को कभी दिखायी न दिये. मगर मैं जानता हूं कि वह अपने 'इष्टदेव' की तलाश में हैं. उनकी मंजिल दूर है—बहुत दूर. मगर उनमें उसे पा लेने का दम भी है और धीरज भी.

जब चलने की शक्ति न रहेगी, टांगें सूखकर लकड़ियां बन जायेंगी तब भी वह चलते रहेंगे, सिर को टांगें बनाकर चलते रहेंगे.

उन्होंने मन को जीत लिया है.

वह अपने इष्ट को भी अंततः जीत ही लेंगे.

जिंदगी के उलझे टेढ़े-मेढ़े और अंधेरे रास्तों में आंखोंवाले ही भटकते, हैं—होमर, मिल्टन, सूरदास नहीं! □

रूपांतर : महावीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हन्यते

• मैत्रेयी देवी

1972 ई. के एक सितंबर के सवेरे की बात है. एक दिन पहले मेरे बचपन के मित्र गोपाल ने मुझे फोन किया और कहा, "अमृता, तुम्हें यूक्लिड की याद है?"

"हां, है तो कुछ-कुछ. पर क्यों?"

"उसके देश से एक सज्जन आये हुए हैं, उसके परिचित हैं ये."

रात के दो बजे बाहर आकर खड़ी हुई हूं... अब सवेरा होने को आया. तारे इस ओर से दूसरी ओर चले गये हैं. इस घर में तो छत पर नहीं चढ़ा जा सकता, यही एक मुश्किल है, अच्छी तरह आकाश नहीं देख पाती. मैं सदा आकाश के नीचे लेटी रहना पसंद करती हूं. मिर्चा भी तो छत पर टहलना खूब पसंद करता था.

चलूं, जाकर लेट जाऊं. कल कितना काम है... शाम को मीटिंग है. बयालीस वर्ष पहले की बातों को याद करने से क्या फायदा!

मुझे याद नहीं आता कि वह कौन-सा महीना था, जिस दिन मिर्चा यूक्लिड पहली बार हमारे घर आया अर्थात मैंने पहली बार उसे देखा था. जिस दिन की बात याद है, वह थी एक शाम. पिताजी ने मुझे बुला भेजा, "यह रही मेरी बेटी अमृता, यह रहा मेरा छात्र मिर्चा युक्लिड."

पिताजी बोले, "युक्लिड जहां रहता है वहां उसे बहुत असुविधा हो रही है, इसीलिए मैं उसे यहां रहने के लिए कह रहा हूं, उसके लिए एक कमरे की व्यवस्था कर दो."

हमारे घर मिर्चा के आने के कितने दिनों बाद की यह घटना है, मुझे ठीक याद नहीं, पर उसने पहली बार एक बार कांड किया. खाने की मेज के एक सिरे पर पिताजी बैठे हुए हैं, दूसरे सिरे पर मां हैं, बीच में मुंह-दर-मुंह वह और मैं. उसने धीरे-धीरे अपना पैर बढ़ाया और मेरे पैर पर रखा. मैंने पैर हटा लिया, मैंने सोचना चाहा कि संयोग से लग गया है... यद्यपि मेरा शरीर और मन चौंक उठे किंतु विचित्र आश्चर्य है, उसी क्षण उसकी ओर देखकर मुझे सहसा लगा—मिर्चा चला गया तो मैं जीऊंगी कैसे?

एक दिन मैंने लाइब्रेरी में उससे कहा, "मिर्चा, तुम मेरा हाथ थाम सकते हो." यह कहकर मैंने अपना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया. उसने अपने दोनों हाथों को बढ़ाकर मेरा हाथ पकड़ा. तमाम हाथ व हथेलियों पर मैं हर क्षण उसके अधरों का स्पर्श पाने लगी—क्रमशः मेरा हाथ मेरे शरीर से विच्छिन्न हो गया. अथवा मैं समूची की समूची हाथ ही बन गयी. मेरी समस्त अनुभूतियां वहीं एकत्र हो गयी हैं... मेरी एकाग्र सत्ता वहीं स्पंदित है, कितनी देर, पता नहीं, कितनी देर उसने मेरी हथेली को अपनी छाती पर रखा है. हाथ के भीतर के अणु-परमाणु शिथिल हो गये— वे घूम रहे हैं, नाच रहे हैं—ग्रह, नक्षत्र की भांति घूम रहे हैं वे. मेरी आंखों से आंसू लुढ़क रहे हैं... "मिर्चा....यह क्या है, यह क्या है, यह क्या है!"

आंसुओं से मेरा तकिया भीग गया है... मैं तो भवानीपुर की लाइब्रेरी में नहीं हूं... मैं तो बालीगंज के घर में अपनी खाट पर लेटी हुई हूं, किंतु कैसा आश्चर्य है, मेरा हाथ तो अभी तक 'मैं' बना हुआ है. मेरा शरीर सुन्न है. मैं करवट बदलने की कोशिश कर रही हूं कि देखती हूं, मेरे पति कोहनियां के बल तनिक उचककर मेरी ओर नजरें टिकाये हुए हैं, "तुम्हें क्या हुआ है, मुझे नहीं बताओगी?"

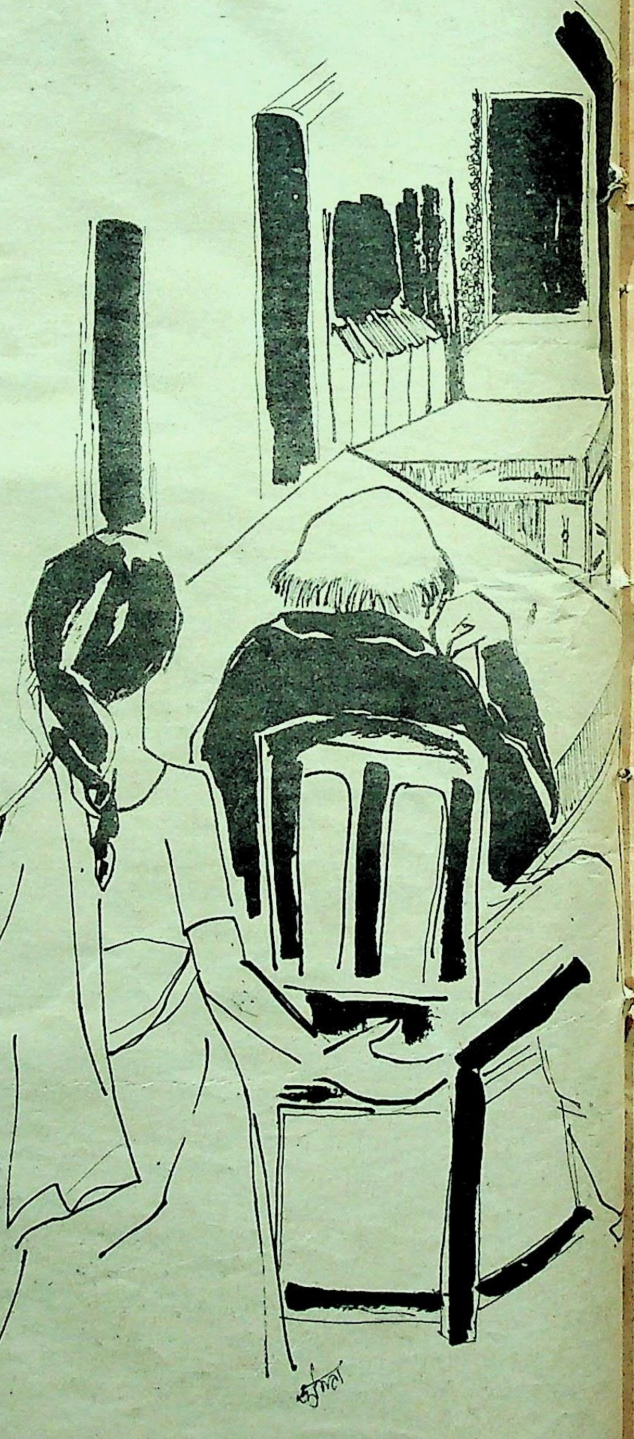

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मन बावरा होता है—मगर कितना?. . . .सपने झूठे होते हैं—मगर कितने ?.. प्रेम करने के लिए एक उम्र काफी नहीं होती—फिर कितनी उम्र काफी होती है? —प्रस्तुत है, बंगला उपन्यास का संक्षिप्त रूपांतर कि अचानक बिछुड़ गये युवा प्रेमी-प्रेमिका जब उम्र का एक अरसा बिताकर चालीस साल बाद परस्पर मिलते हैं तो भावावेग के वे क्षण उन पर कितने और किस कदर कहर ढा जाते हैं! . . . . . .

एक दिन अचानक आंधी आयी, फिर वर्षा, मैं दोपहर में नीचे उतरकर आ रही थी— सोच रही थी, आंगन में खड़ी होकर भीगूं. तभी वह बोला, "अमृता, इधर तो आओ."

"मुझे डर लगता है."

"डर लगता है या ईर्ष्या होती है?"

"ईर्ष्या भला किससे होगी?"

"क्या तुम अपने आपसे ईर्ष्या करती हो? क्या तुम अपने शरीर से ईर्ष्या करती हो? तुम्हें क्या लगता है कि मैं तुमसे अधिक तुम्हारे शरीर को प्यार कर रहा हूं? ऐसी बात नहीं है अमृता, ऐसी बात नहीं, मैं तो तुम्हें ही ढूंढ रहा हूं, तुम्हारी आत्मा को ढूंढ रहा हूं. तुम तो अपने शरीर में ही हो, तुम्हारे जिस अस्तित्व को न आंखों से देखा जा सकता है, न हाथों से छुआ जा सकता है, तुम्हारी देह के परे के तुम्हारे उस अस्तित्व को मैं तुम्हें स्पर्श करके पा रहा हूं."

मां कह रही है, "बताओ रू, बताओ न, सचमुच तुम उससे ब्याह करना चाहती हो कि नहीं? अगर तुम चाहती हो तो फिर उसी के साथ निश्चय तुम्हें ब्याह दूंगी."

मैं मां के पैरों पर माथा रखे ही बोली, "हां मां, मैं उससे ब्याह करना चाहती हूं,"

दूसरे दिन मां का चेहरा देखा तो मेरा कलेजा कांप उठा. मां की आंखें सूजी हुई थीं और स्वर भी गंभीर. तो क्या मां रात-भर सोयी नहीं है!

"रू, तुम आज नीचे मत उतरना, अपने कमरे में ही रहना. किसी से बात मत करना."

मैं स्तंभित होकर खड़ी रही—यह क्या हुआ?

"देखो रू, मैंने तुमसे जो कुछ कहा था, वह कर नहीं सकी. तुम्हारे पिताजी हरगिज राजी नहीं हुए."

मैं कांप रही हूं. मां ने मेरे बदन पर हाथ रखा, "शांत हो जाओ."

पता नहीं, मेरे घंटे मिनट किस रूप में और कैसे कटे. दोपहर में मां आयीं, "रू. उठ, चल देख, मिर्चा चला जा रहा है. उसने कहा है, जाने के पहले वह तुझे एक बार देखना चाहता है."

मैं उठ नहीं पा रही हूं, मेरे शरीर की तमाम हड्डियां जैसे चूर-चूर हो गयी हों—मैं उठूं कैसे?

उसके बाद क्या हुआ, मुझे कुछ स्पष्ट याद नहीं आता है—मेरी धारणा है कि मां ने मुझे लिटा दिया था. पर बाद में मैंने सुना कि मैं गिर गयी थी. यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है. मेरी हड्डी-पसलियां ही तो ढीली हो गयी थीं. जब मुझे होश आया तो देखती हूं, मैं अपने कमरे के बगलवाले उस तंग बरामदे में, जो मिर्चा के कमरे के सामने वाले संकरे-से गलियारे के ऊपर है, लेटी हुई हूं.— मां मेरे माथे पर पानी डाल रही हैं और उनकी आंखों से आंसू बह रहे हैं.

मां मेरे लिए एक वर ढूंढ खोजने की जी तोड़ कोशिश कर रही है. बाकायदा उन्होंने एक कापी बना डाली है, और उसमें योग्य वरों के नाम, गुणावली, उनके अभिभावकों का अता-पता सब कुछ लिख रखा है.

आखिरकार एक वर मिला. ठीक पांच दिन के भीतर ही ब्याह की सारी व्यवस्था हुई. वह विद्वान व्यक्ति हैं. पिताजी कह रहे हैं, "पांच बरस में डॉक्टरेट की है, यह कोई मामूली बात नहीं है."

साबी गयी वर के घर उसे देखने. लौटकर आयी तो मेरे गले से लिपटकर रोना शुरू किया है, "ओ दीदी, तुम वहां ब्याह मत करो, वह मुझे जरा भी पसंद नहीं आया." मैं बहुत हंस रही हूं. मन-ही-मन कह रही हूं, मैं जिसे पसंद करती हूं, उसे तो तुम भगा देती हो. पर मुंह से कुछ नहीं कह रही हूं.

1972 ईस्वी के अगस्त में सेरगेई कलकत्ता आया था, इस कहानी के आरंभ में जिसके बारे में कह चुकी हूं. पहली सितंबर की सुबह जब उससे भेंट करने जा रही थी तो मन में एक कुतूहल मात्र था, देखूं, उसके बारे में क्या कहता है—बस, इतना-सा ही कुतूहल था, लेकिन उससे बात करके तो मैं अचंभे में पड़ गयी थी.

सेरगेई कह रहा है, "तुम्हें तो पता नहीं कि उसने कितनी तकलीफ पायी है. अगर तुम उसकी रचनाएं पढ़ती तो समझ सकती उसकी यंत्रणा को. कल्पना में उस यंत्रणा से उसने मुक्ति खोजी है. उस किताब को छूने से भी लहू चूने लगता है."

सेरगेई के साथ बातें कर रही हूं और मेरा सूक्ष्म शरीर मेरी स्थूल देह से बाहर निकल गया है— मैं अब यहां नहीं हूं—अर्थात मैं अपने-आपको साफ-साफ दो टुकड़ों में विभक्त देख पा रही हूं. मैं प्रतिपल वर्तमान से अतीत में प्रवेश कर रही हूं. एक-एक दिन को फिर बिता रही हूं, हर घटना जैसे फिर से घट रही हो.

किसी-किसी दिन तो ऐसी हालत में होती हूं कि सबके सामने बड़ी परेशानी में पड़ जाती हूं. कभी-कभी ऐसा होता है कि बेटे ने आकर कुछ पूछा और मैं हूं कि सुन ही नहीं पायी.

मैं अपनी सहेलियों के साथ विचार-विमर्श कर रही हूं—'इन्हें' बताये बिना अब कोई चारा नहीं है.

महीनों मैं जलती रही, सब-कुछ जल रहा है मेरा, यहां तक कि उम्र भी. मैं तो जैसे उन्नीस सौ तीस ईस्वी में वापस पहुंच गयी हूं. वैसी ही प्रत्यक्ष वैसी ही सच्ची हो उठी है मेरी अनुभूति. प्रेम का प्रकाश मेरे अंतर की गहराई में प्रविष्ट हो रहा है. उसके हर कोने में, हर अंधियारे गली-गलियारे में प्रकाश जल उठा है, और भय, गर्व और संस्कार रूप छिन्न-भिन्न होता जा रहा है. मेरा दंभ, बड़प्पन और अहंकार—सब विलीन होते जा रहे हैं. घिसते जा रहे हैं और मैं सत्य की विराट मूर्ति को देख पा रही हूं. मेरा जीवन एक नये अर्थ से अर्थवान हो रहा है. मुझे उसकी याद आ रही है. उसका कुछ-कुछ विस्मृत चेहरा, उसकी बातें, उसका बहुत-सा दुर्बोध्य व्यवहार उसका गुस्सा, उसकी ईर्ष्या और सर्वोपरि उसका प्रेम-सब-कुछ मुझे याद आ रहा है. मैं अपने-आपको एक दरवाजे के बीचो-बीच चित्र की तरह उसकी छाती से सटी देख पा रही हूं, वह कह रहा है, 'तुम्हारे शरीर को नहीं अमृता, बल्कि तुम्हारे शरीर के भीतर जो तुम्हारी आत्मा है, उसी को मैंने पाना चाहा है.'

नजर उठाकर देखती हूं, मेरे पति बिस्तर पर बैठे मेरी ओर निहार रहे हैं. उनकी आंखें नम हैं—"तुम्हें क्या हुआ है, मुझे नहीं बताओगी?"

इनसे कहना होगा, बहुत दिनों से मेरी सहेलियां कह रही हैं, उनसे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह दो. मैं ही हिचकिचा रही हूं. मैं सोच रही हूं, सब-कुछ बताकर तो इन्हें तकलीफ ही दूंगी. मुझे क्या अधिकार है इन्हें तकलीफ देने का? सुनकर क्या इन्हें तकलीफ न होगी? ऐसी बातें सुनकर तकलीफ न हो, कहीं ऐसा हो सकता है?

"मैं आपको बताना चाहती हूं, लेकिन सुनकर आपको तकलीफ होगी."

"मगर तुम्हें तकलीफ पाते देखकर तो मुझे और भी तकलीफ हो रही है."

तब मैंने अपने पति को सब-कुछ बता दिया. सब कुछ सुनकर वे स्तंभित हो गये, "अड़तीस वर्षों तक हम दोनों एक-दूसरे के इतने नजदीक रहे, तो भी मैं तो कुछ भी नहीं जान सका. तुमने मुझे बताया क्यों नहीं था अमृता, क्यों नहीं बताया था? इतनी तकलीफ पाने की तो कोई जरूरत नहीं थी."

"विश्वास कीजिए, मैंने इतने दिन कोई तकलीफ नहीं पायी है. तकलीफ पाती तो क्या आपको पता नहीं चलता? जैसे कि अभी पता चला."

"ठीक कह रही हो, मगर अब आधी शताब्दी के बाद तुम्हें तकलीफ हो रही है उसके लिए? क्या अजीब बात कह रही हो, अमृता?"

"हां, यही बात है, पर मैं भी कुछ कम विस्मित नहीं हुई हूं. कभी-कभी मुझे लगता है, कहीं मेरा दिमाग तो खराब नहीं हो गया है, नहीं तो, कहीं ऐसा भी होता है? मैं अन्याय कर रही हूं न? कहिए, कहिए न!" मैं रो रही हूं.

वे मेरे माथे पर हाथ फेरकर मुझे सुला दे रहे हैं, "मुझे कोई तकलीफ नहीं है. सिर्फ यही एक तकलीफ है कि तुम्हें शांति देने का अब कोई उपाय मेरे हाथ में नहीं है. लेकिन फिर भी जितना मुझसे हो सकता है, मैं करूंगा. तुम जरूर जाओगी और एक बार जाकर उन्हें देख सकोगी."

मैं अचंभे में पड़कर सोच रही हूं, उन्नीस सौ तीस ईस्वी ने जैसे यह षड्यंत्र रचा था कि हमारा मिलन नहीं हो पाये उसी तरह इस उन्नीस सौ तिहत्तर ईस्वी ने यह षड्यंत्र रचा कि हमारी भेंट हो जाये.

हवाई-अड्डे पर पहुंचकर मेरी इच्छा हुई अपने पति को प्रणाम करने की. उनके प्यार की स्निग्ध हवा मुझे घेरे हुए है और मेरे तन-मन को शीतल किये दे रही है. किंतु मैं यहां प्रणाम नहीं कर सकूंगी. वे परेशान होंगे.

गाड़ी चली जा रही है. नये देश, नये शहर और अपरिचित चेहरों को पीछे छोड़ती हुई मेरे चिर-परिचित किसी लक्ष्य की ओर. मेरा मन आच्छन्न है. मैं जैसे नींद की खुमारी में हूं.

जॉन बोला : "हम लोग अब वुडलैंड में आ गये."

शार्ली बोली : "लो, पहुंच गयी." सहसा मानो महाशून्य से, जादू की छड़ी की छुअन से, एक साइनबोर्ड बगीचे के ऊपर उभर आया.

उस मकान के बड़े दरवाजे के पास तक मैं हवा में तिरती हुई-सी चली जा रही हूं, शार्ली ने दरवाजा खोला. बगल में एक बड़े से बोर्ड पर बहुतों के नाम लिखे हुए हैं. उसने मुझसे पूछा, "तुम किससे मिलना चाहती हो?"

मेरा निःश्वास बंद होने को आया है, कुछ बोलना असंभव हो गया है. इसीलिए मैंने उंगली के इशारे से दिखा दिया.

"ओ वे, वे तो एक महान आदमी हैं, विख्यात व्यक्ति हैं..."

लिफ्ट तीसरे तल्ले पर रुकी. हम लोग एक लाइब्रेरी में पहुंची है. मैंने जैसे नींद से जागकर देखा—ओ, यह तो एक लाइब्रेरी है.

मैं भीतर घुसी, घुसने के साथ ही साथ, बिलकुल उसी क्षण उस वृद्ध व्यक्ति ने एक शब्द किया, "ओह." उसके बाद उठकर खड़ा हो गया, फिर बैठ गया. और फिर उठ खड़ा हुआ और इसके बाद मेरी ओर पीठ कर दी. यह कैसा कांड है. तो क्या मुझे पहचान सका है? आखिर कैसे पहचान सका? मेरी ओर तो उसने देखा तक नहीं है! तो इतने दिन बाद भी क्या मेरी पदचाप पहचान सकता है? नहीं, यह तो असंभव है. जो हो मगर यह तमाशा शार्ली के सामने होना उचित नहीं. मैं दरवाजे के पास लौट आयी, तो देखती हूं, शार्ली चित्र-लिखित-सी खड़ी है. उसकी आंखें विस्फारित हैं. दो बूढ़े-बूढ़ियों की कालांतर में नयी भेंट की वह एकमात्र दर्शक है. मैं बोली, "शार्ली, तुम चली जाओ. तनिक बाद ही मैं तुम्हारे पास आ रही हूं."

मेरा मन अब शांत है, स्थिर है. कोई उत्तेजना नहीं है मन में. जो कुछ करने को था, मैंने किया है.

मैं उसे देख रही हूं. उसके सिर में बिल्कुल बाल नहीं हैं, सिर्फ गर्दन के पास कुछ सफेद बाल हैं.... वैसा ही पतला चेहरा-मोहरा है उसका, और वैसा ही चंचल है वह, एक बार मेज पर से कागज उठा ले रहा है और फिर उसे रख दे रहा है. उसका पतला-सा शरीर जैसे हवा में कांप रहा है.

"मिर्चा, तुम मुंह फेरकर क्यों खड़े हो?"

"तुम्हें मैं नहीं देखूंगा. मैं एक दूसरे आदमी का इंतजार कर रहा हूं."

"बेवकूफी मत करो मिर्चा, जानते हो मैं कौन हूं?" उसके जवाब का इंतजार किये बिना ही मैं कहती जा रही हूं, "पहचान सके हो मुझे? जानते हो कौन हूं मैं, कौन हूं मैं?"

"जरूर-जरूर...." वह माथा हिला रहा है. यह तो वही मिर्चा है, बिल्कुल वही तेईस साल का लड़का है, उसके इस तिरसठवें में वही तेईस साल का लड़का बैठा हुआ है. वह मुझे कहा करता था, "तुम 'भीषण' शब्द का बहुत इस्तेमाल किया करती हो, तुम्हारा सब कुछ ही 'भीषण' होता है." इस बारे में मुझसे और भी बहुतों ने कहा है. मैं शायद आज भी वैसा ही कहा करती हूं, जिस तरह वह 'सर्टनली, सर्टनली' कहकर माथा हिला रहा है. क्या महारहस्य है. क्या अपार विस्मय है. कितनी आसानी से अपने समस्त अस्तित्व रहस्य के द्वारा मैं उसे पहचान पायी. यह वही है, वही है, दूसरा कोई नहीं. और मैं? मैं कौन हूं? मैं भी वही हूं, अक्षय है उसका सत्रहवें साल का मन, कर सकते हो आज भी उसका अन्वेषण?... "तो बताओ, बताओ मैं कौन हूं, तो बताओ फिर."

"तुम अमृता हो. जिस क्षण तुमने इस देश की धरती पर कदम रखा था उसी क्षण मुझे पता चल गया था."

"मेरी ओर देखो, मेरी ओर देखो, प्रिय मिर्चा, मैं कितनी दूर से आयी हूं तुम्हें देखने... तुम नहीं मुड़ोगे, देखोगे नहीं?"

"तो सुनो, अमृता!" वह अपने अस्थिर हाथ से किताबों की अलमारी पकड़े हुए है—मानो उसे पकड़े बिना वह गिर जायेगा, "तो फिर सुनो अमृता, इन तमाम बातों को मैंने कुछ और ढंग से देखा है. मैं यह नहीं कहता कि मैंने जो सोचा-समझा है, वही ठीक है. हो सकता है, तुमने जो सोचा-समझा है, वही ठीक हो. हो सकता है."

"मैं यह सब कुछ सुनना नहीं चाहती. तुम मुड़ो मिर्चा, मेरी ओर मुड़ो. मैं तुम्हें देखूंगी आज."

"कैसे तुम्हें देखूं मैं? दांते ने क्या कभी यह सोचा था कि वह अपनी बिएट्रिस को अपनी इन्हीं हाड़-मांस की आंखों से देख सकेगा?"

वह मेरी ओर पीठ किये ही खड़ा है. मैंने उसकी तरफ अपना एक हाथ बढ़ा दिया है—मेरा अंतर निष्कंप है, स्थिर है—उसके इस रहस्य की खुमारी को मैं दूर करूंगी. इस वास्तविक दुनिया की धरती पर हम लोग परस्पर को देखेंगे.

"प्रियतम है, जागो, जागो, जागो."

मिर्चा मुड़ा नहीं, उसका माथा नीचा है...वह हरगिज नहीं मुड़ रहा है.

"तुम क्या चाहती हो अमृता?"

"शांति, तुमसे शांति चाहती हूं मैं."

"हा, हा, हा," वह पागलों की तरह हंस रहा है, "तुम्हें मैं कैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शांति दूं जबकि स्वयं मुझे शांति नहीं मिली है. जो शांति मुझमें नहीं, उसे मैं तुम्हें क्योंकर दे सकता हूं. . . ?"

"मिर्चा, मैं तुम्हारे कमरे में आ खड़ी हुई हूं. मैं हाड़-मांस की बनी मानव हूं, मैं न कोई प्रतीक हूं, न माया. मैं तो एक सुख-दुख कातर मानव हूं, जिसका जीवन अपार संभावनाओं से भरा हुआ है. बिएट्रिस मृत होकर स्वर्ग गयी थी और वहां दांते से मिली थी. लेकिन मैं इसी जीवन में बिलकुल जीते-जी तुम्हारे पास आयी, इसका क्या तुम्हारे लिए कोई महत्व नहीं?"

वह मेरी ओर पीठ किये ही बोल रहा है, जरा हांफ रहा है: "आश्चर्य है, कैसा परम आश्चर्य है. सचमुच ही यह तो एक आश्चर्यजनक घटना है. इसीलिए तो मैं निराशावादियों से कहा करता हूं कि जीवन कितनी संभावनाओं से भरा हुआ है, कौन जानता है? कौन जाने कब क्या हो सकता है. मैंने तो किसी दिन सोचा तक नहीं था कि मैं तुम्हें देख पाऊंगा."

"तो फिर मुड़ो मेरी ओर. जानते हो, लोग मुझसे पूछा करते हैं कि कितने दिन तुम हमारे घर में थे? मुझे तो कुछ याद नहीं आता है, कितने दिन थे तुम वहां, बताओ न?"

"हजारों वर्ष."

"तो फिर तुम भी क्या यह नहीं जानते हो कि तुम कौन हो, हम लोग कौन हैं? मैं तो यहां उसी 'तुम' को देखने आयी हूं, जिसे कोई अस्त्र बींध नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती."

उसने संस्कृत में कहा, "न हन्यते हन्यमाने शरीरे."

"तो फिर? मैं तो उसी 'तुम' को; जिसका न आदि है न अंत—नांतम् न मध्यम् न पुनस्त वादिम्—देखना चाह रही हूं—तो मेरी ओर एक बार नजर उठाकर देखो. विश्वास करो, मैं पलभर में तुम्हें चालीस वर्ष पीछे ले जाऊंगी और तब तक तुम देखोगे कि हम लोग वहीं खड़े हैं जहां पहली बार हम लोग मिले थे. मेरी ओर ताकने से ही तुम अमर होगे मिर्चा, अमर होगे."

मिर्चा ने मुंह उठाया. . . . . मैंने देखा, उसकी आंखों की दृष्टि स्थिर है. कैसी मुसीबत है, जिस बात का डर था वही हुआ है— उसकी दोनों आंखें पथरा गयी हैं. वह अब किसी भी दिन मुझे नहीं देख सकेगा. क्या होगा. क्या होगा अब. हा ईश्वर, अब क्या उपाय है. उन आंखों में मैं तो अब प्रकाश नहीं जला सकूंगी. मेरे हाथ में तो प्रदीप नहीं है—इतना लंबा रास्ता तय करके पता नहीं कब उसका तेल खत्म हो गया है और बत्ती जलकर बुझ गयी है. डरकर मैं अब अमृता नहीं रही—एक मृतप्राय: मानव हो गयी. मैं उसकी तरह सोचने लगी. . . . हाय, चालीस वर्ष, बड़ी देर हो गयी. कलेजे से एक टीस दीर्घ नि:श्वास बनकर निकली और कमरे में चक्कर पर चक्कर खाने लगी. अबकी बार मैं पीछे मुड़ी. मुझे उस दरवाजे के पास पहुंचना होगा. उस पीतल की मूठ को घुमाना होगा. . . . तब कहीं जाकर दरवाजा खुलेगा.

"जरा ठहरो अमृता, इतने वर्ष जब तुम इतनी साहसी और वीर बनी रही तो अब क्यों कातर हो रही हो? अब तुम हिम्मत क्यों हार बैठी? मैं कह रहा हूं, मैं आऊंगा तुम्हारे पास, पर यहां नहीं, वहां. वहां गंगा के तीर पर मैं अपना सच्चा स्वरूप तुम्हें दिखाऊंगा."

मैं निराशावादी नहीं हूं, इसीलिए इतनी देर तक मेरे टूटे कलेजे के अंदर आशा का छोटा-सा परकटा पंछी मौत के मुंह में पड़ा आखिरी सांस ले रहा है. मिर्चा की बात कानों में पहुंचने के साथ ही साथ एक घटना घटी. वह छोटा-सा पंछी हठात अमर पंछी-फीनिक्स हो गया—उस पंछी को किसी ने देखा है? वह ठीक एल्बेट्रॉस—सफेद और बड़े-बड़े पंखों को फड़फड़ाता हुआ मुझे लेकर ऊपर की ओर उड़ चला, और तब उसके पढ़ने-लिखने के कमरे की छत उस पौराणिक बक्से की तरह खुल गयी जिसमें से सभी वरदान बिखर गये और विपत्तियां दुनिया भर में फैल गयीं—एक आशा मात्र को छोड़कर दीवारों की बाधा दूर हो गयी और किताबों के पन्ने जल की लहरें हो गये, और मुझे जलरव सुनायी पड़ने लगा.

आशा की माया से गढ़े हुए उस बड़े से पंछी ने पर मारते हुए निशिगन के ताल को पार किया और अज्ञात महादेश की ओर जाते-जाते मुझसे कहा; "कोई डर नहीं अमृता, तुम्हीं उसकी आंखों में प्रकाश जलाओगी."

मैंने व्याकुल होकर पूछा, "कब?. . .मगर कब?"

उसने कहा, "जिस दिन छाया-पथ में तुम लोगों की भेंट होगी, और उस दिन के आने में अब कोई ज्यादा देरी नहीं है." □

(संपूर्ण उपन्यास राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित)

संक्षिप्त रूपांतर : ललिता अस्थाना

यही सच है

—पृथ्वीराव अरोड़ा

"सर!" ड्राईवर ने दरवाजे का थोड़ा-सा हिस्सा खोलकर आवाज दी.

हाथ का जाम एक ओर रखकर साहब खुश होकर बोले, "तुम आ गये गुरमीत . . . आओ, आओ." फिर उचककर देखा और प्रश्न उछाला, "एंड कमसिन!"

"सर! उसका आज इंतजाम नहीं हो सका. मैंने कोशिश . . ."

साहब की नसें तन गयीं. कुछ सोचकर अपने भावों को छुपाते हुए बोले, "चलो छोड़ो, आओ सिट हियर," उन्होंने कुर्सी की ओर इशारा किया.

गुरमीत झिझकता हुआ साथवाली कुर्सी पर बैठ गया. साहब ने एक जाम बनाकर उसकी ओर बढ़ा दिया, "लो पीओ." वह साहब की ओर देखता ही रह गया. उसे उनका आज का व्यवहार अजीब-सा लगा. उसने जाम को पकड़ा नहीं.

साहब प्यार से बोले, "अरे लो न यार!"

अब उससे इंनकार करते न बना और जाम लेकर पी गया. चौथा जाम बनाते हुए साहब ने कहा, "गुरमीत, सचमुच मैं तुमसे बहुत खुश हूं. जल्दी ही तुम्हारी तनखा बढ़ाने की सोच रहा हूं." क्योंकि हमारे लिए हर रोज नयी कमसिन ढूंढने में तुम्हें दिक्कत तो बहुत होती होगी . . .हैं?"

शराब गुरमीत पर असर करने लगी थी, "होती तो है सर, पर अपने साहब को खुश करने के लिए मैं सब कुछ कर सकता हूं."

"गुड. शाबाश!" कहते हुए साहब ने उसे गले लगा लिया. फिर गंभीर होकर बोले, "आज मैं बहुत उदास हूं गुरमीत. वैरी डिस्टर्बड!"

"सर मैंने बहुत कोशिश की. मुझे अफसोस है साहब कि . . ."

"परंतु आज की रात मुझे नींद नहीं आयेगी. डू समथिंग. कुछ तो करो!"

"मैं क्या करूं? . . . क्या कर सकता हूं?"

"तुम एक काम करो."

'बोलो साहब, बंदा हाजिर है."

"आज की रात तुम अपनी बीवी को भेज दो."

गुरमीत के सामने असख्य बिजलियां कौंधने लगीं. वह बद-हवास-सा साहब की ओर लपक और उसके गाल पर एक भरपूर चांटा रसीद कर दिया. फिर गालियां बकता हुआ. . . कमरे से बाहर हो गया! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्न की तरह

• आशीष सिन्हा

फिल्म की दुनिया एक ग्लैमर की दुनिया है, पर यहां भी जीते-जागते, हाड़-मांस के पुतले ही तो रहते हैं. उनके भी अपने-अपने स्वप्न होते हैं और उनके टूटने पर भावावेग में वे भी ऐसी हरकतें कर बैठते हैं, जो स्वप्न की तरह अविश्वनीय लगती हैं. प्रस्तुत है ग्लैमर की दुनिया के ऐसे ही कुछ लोगों की दास्तान हिंदी के एक सशक्त युवा कथाकार की कलम से—

'साइलेंस. . . स्टार्ट कैमरा. . . एक्शन!" निर्देशक प्रभात ओझा की आवाज गूंजी थी. किर्र किर्र की आवाज से कैमरा चल पड़ा. लांग-शाट में नायक और खलनायक के डुप्लीकेट ढिशुंग-ढिशुंग करने में लगे थे. डाकू का भेष धरे, दस एक्सट्रा से, नायक का डुप्लीकेट अकेले जूझ रहा था. फाइट कंपोजर ने आग, धुआं, जलती हुई मशाल और उबलता पानी वगैरह इधर-उधर बिखेर रखा था. ध्वनिविहीन यह दृश्य लोकेशन पर, एक पुराने खंडहर में फिलमाया जा रहा था. रुक-रुककर असंख्य 'कट' लिये जा रहे थे. इन्हीं दृश्यों में नायक और खलनायक के 'क्लोजअप' लेकर जोड़ दिये जायेंगे. संपादन की चतुराई, पार्श्व संगीत और ध्वनि के असर से वांछित परिवेश पैदा हो जायेगा और लगेगा, फिल्म में नायक अकेले दस डाकुओं से और मुख्य खलनायक से लड़ रहा है.

"कट. . . ." निर्देशक की चीख सुनाई पड़ी. ढिशुंग-ढिशुंग करनेवाले रुक गये. लोकेशन पर सारे तामझाम के साथ प्रोडक्शन कंट्रोलर महीपत शाह शूटिंग का मुआयना कर रहे थे. शूटिंग के लिए जगदीशपुर के जंगल का इलाका चुना गया था. उस विशाल परित्यक्त खंडहर और उसके आसपास के इलाकों में गांव का सेट लगाया गया था. घने पेड़-पौधों और एक गहरे तालाब के इर्द-गिर्द कला निर्देशक ने झोपड़ी, तुलसी का पेड़, चौबारा, पंचायत, पान-बीड़ी की दूकानें बनवा ली थीं और वे सैट में, एक गंवई असर पैदा करने में लगभग कामयाब हो गये थे.

"महीपत दादा, आज के शिड्यूल में और कितने सीन रखे हैं?" मेकअप लेकर फिल्म की नायिका नूपुर सेन आयी और महीपत शाह की बगल में बैठ गयी.

"तीन सीन रखे हैं, बेबी," प्रौढ़ महीपत ने फिल्म की नायिका से कहा, "एक गाना फिल्माना है. एक डांस भी फिल्मायेगा बेबी, जिसमें डांस का आखिर में नायक का बचपन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिछुड़ा भाई, जो अब विलेन है. . ."

"बस. . . बस. . . बस." हाथों में थमी स्क्रिप्ट महीपत भाई को लौटाती हुई नूपुर बोली, "दादा, आप लोग एक ही फिल्म को बार-बार क्यों बनाते हैं? क्या कुछ नया नहीं बना सकते?"

महीपत शाह बच्चों की तरह खिलखिलाये. बोले, "साब, बेबी बोलता, आर्ट फिल्म बनाओ. अब हम आर्ट फिल्म बनायेगा? बोलो प्रोड्यूसर कपूर साहब को."

"दादा, कपूर को बोलेगा तो वह बोलेगा. . ." कमल हंसा, "हम आर्ट-वार्ट कुछ नहीं जानता. डिस्ट्रीब्यूटर चार हजार फीट ढिशुंग-ढिशुंग मांगता, दो हजार फीट नाच-गाना मांगता, दो हजार फीट कामेडी मांगता, तीन हजार फीट स्टंट और एक्शन. . ."

". . . चार हजार फीट रोमांस," नूपुर बीच में खिलखिला उठी, "एक हजार फीट रेप और दो हजार फीट ट्रेजेडी."

सभी हंस पड़े.

"मैडम, आपका कस्टयूम. . ." थर्ड असिस्टेंट सूरी ने नूपुर की ओर पैकेट बढ़ाते हुए कहा, "आप जरा ट्रायल दे दीजिए. . ." नूपुर कस्टयूम उठाकर, पास बनी कॉटेज में चली गयी.

कस्टयूम पहनकर, एक अल्हड़, देहाती रूपमयी नवयौवना का मेकअप लेकर, जब नूपुर लोकेशन पर लौटी तो आसमान पर जैसे बादलों का सैलाब था. खंडहर, जहां शूटिंग होनी थी, उसके आसपास जेनरेटर, रिफ्लैक्टर, मेज, कैमरा, ट्रॉली, कुर्सियां, लिफ्ट और पटरियां पड़े थे. पचासों एक्सट्रा इधर-उधर बैठे थे. निर्माता पवनकुमार कपूर और निर्देशक ओझा थोड़े फासले पर, इजी चेयर पर सिर थामें मातमी सूरत बना कर बैठे थे.

उनके पास नायक कमल कुमार भी तैयार बैठे थे, एक गंवार का मेक-अप लिये.

"देखिए हीरो साहब," चुपके-चुपके कमल के ठीक पीछे आकर, नूपुर बोली, "देखिए, खंडहर के ठीक उस पार, तालाब का पानी, हवा के झोंको से कैसे तिरतिर बह रहा है."

"यार कपूर," नायक कमल कुमार ने चुटकी ली, "यार, अपन अगली फिल्म में नूपुर को ही क्यों न डायलॉग राइटर रख लें."

हंसी का छोटा-सा स्रोत फूटकर धीमा पड़ा तो नुपुर फिर बोली, "महानगर में पले, बड़े हुए हो. शूटिंग के वक्त गांव आते हो. गांव का सौंदर्य तुम क्या जानो!"

"ओय-होय-होय!" कमल ने फिर चिढ़ाया, "तुम जैसे गांवों में रहकर ही शूटिंग करती हो."

"मारूंगी कमल, फिर चिढ़ा रहे हो," नकली गुस्से में नूपुर बोली, "रहूं शहर में तो क्या, बचपन तो गांवों में बीता है."

"कमल साहब," निर्माता कपूर बोले, "दोनों तरफ से मेरा नुकसान मत करवाइए. . .एक तो शूटिंग न हो पाने की वजह से लाखों का घाटा. अब हीरोइन का मूड बिगाड़कर, कल की शूटिंग चौपट करने पर क्यों आमादा हैं आप?"

"तो. . . तो. . ." नूपुर खुशी से जैसे झूम उठी, "तो आज पैकअप? . . . नो शूटिंग??"

प्रोडक्शन कंट्रोलर महीपत को पुकारकर, पैक-अप का निर्देश देकर, निर्माता कपूर ने कहा.

"इसके सिवा चारा ही क्या है?"

"हुर्रा! !" कमल कुमार बोला, "चलो नूपुर, आज सैर को चलें."

"कहां?"

"दूर, उस पहाड़ी पर," धान के खेतों के उस पार, धूसर पहाड़ों की कतार की ओर इशारा करता हुआ कमल बोला, "तुम्हें 'नेचर' अच्छा लगता है न! चलो आज—भागें, प्रकृति की गोद में."

नूपुर ने कोई जवाब नहीं दिया.

कॉटेज से निकलने से पहले कमल कुमार ने एक बार फिर कीमती, विदेशी ब्रीफकेस खोलकर देख लिया था. उसकी जरूरत की सारी चीजें इसमें रहती हैं, हमेशा, आज भी हैं. ब्रीफकेस के एक ओर सुस्वादु स्कॉच की एक खूबसूरत बोतल सोयी है. बंद करने से पहले कपड़े वगैरह सरकाकर ब्रीफकेस टटोल लिया था कमल ने. अचानक उंगलियां एक ठंडी नली से टकरायी थीं. कपड़े—कागजात—रुपये हटाकर कमल कुमार ने देखा था. ब्रीफकेस में एक दमकती पिस्तौल रखी है—लोडेड, पर लॉक्ड.

नूपुर का साथ और लोडेड पिस्तौल. दोनों बातें जंची नहीं. आज नहीं तो कल, नूपुर फिल्में छोड़कर उसका घर बसाने को राजी हो ही जायेगी. पूरी की पूरी यूनिट को फिल्मी दुनिया को तथा फिल्मी पत्रिकाओं में गॉसिप और स्कैंडल लिखनेवालों तक का यही अनुमान है. आज अप्रत्याशित रूप से चौबीस घंटों के लिए जो छुट्टी मिली है, उन दिलकश लमहों में पिस्तौल की कोई भूमिका नहीं. कमल कुमार पिस्तौल अलग रखने ही जा रहा था कि उसे याद आया, नुपूर उसके प्रेम को स्वीकार तो करती है, पर उससे विवाह के प्रस्ताव को हमेशा ठुकरा देती है.

एक पल के लिए कमल अनमना-सा हो जाता है. कनपटी के पास की शिराएं दपदपाती हैं. ब्रीफकेस का डाला नीचे आता है और लॉक होता है, गर्भ में स्कॉच की बोतल और एक लोडेड पिस्तौल लिये.

नूपुर को लगा, यहां शाम होती नहीं, यहां शाम आती है. हौले-हौल, खरामा-खरामा, अनेक सर्पिल पहाड़ी रास्ते तय करके, अनेक शंखिनी नदियां पार करके, सोनायली पौशाक पहने, यहां शाम आती है.

पहाड़ी पर बनी डाक बंगले की रैलिंग से टिककर नूपुर नीचे देखती है. घने पेड़ों की फुनगियों तक रक्तिम सुनहरी आभा लिये हुए हैं. डाक बंगले के पीछे झाड़ियों में तीतर अड्डा है. घर लौटते तीतरों की किचिर-किचिर सुनायी पड़ती है. झगड़ालू तीतरों का स्वर सबसे पहले सुनायी देता है. फिर तोते, बुलबुल, टुनटुनी, और न जाने कितने चिड़ियों के कलरव उस शांत वन-प्रांतर में प्रतिबिंबित होते रहते हैं.

उन्हीं आनंदित प्राण तरंगों में, चारों ओर बिखरती—टूटती शब्द लहरियों में खोयी-सी नुपुर, पास खड़े कमल से कहती है, ". . . कमल कुमार, न जाने क्यों मन डूब-सा जाता है. . प्रकृति से इतना प्रेम है मुझे, पर इस आश्चर्य सुंदर निधि के सामने जब मैं खड़ी होती हूं, मेरी आंखें भर आना चाहती हैं. . ."

"तुम्हें देखकर क्या लगता है, बताऊं?" कमल हंसा.

"क्या?"

"वे जमाने गये, जब अनपढ़ औरतें फिल्मों में आया करती थीं." कमल कुमार ने एक आंख दबायी, "अब तो अच्छी-खासी इंटलेक्चुअल महिलाएं फिल्मों में आ रही हैं."

"बस?" आंखों के पोर पर अकारण बह आयी नमी को पोंछती हुई, नुपूर पक्षियों की ही तरह चहक उठी, "मुझे देखकर, और कुछ नहीं लगता?"

बहुत मूक, बहुत अप्रत्यक्ष आमंत्रण था.

नूपुर की विस्मय विमुग्ध आंखें, गुलाब की पंखुड़ियों की तरह नाजुक-नर्म होंठ और यौवनोदीप्त देहयष्टि को पलभर निहार लेने के बाद नूपुर के कंधे पर हाथ रखकर कमल कुमार ने कहा, "हां, और भी कुछ लगता है. लगता है, इस वन की तरह ही तुम धन्य हो. तुम्हें पाकर एक दारुण आकर्षक जैविक वनज गंध की प्राप्ति से मैं भर जाता हूं नूपुर."

नूपुर चुप रही. कमल कुमार का वह स्पर्श धीरे-धीरे प्रगाढ़ आलिंगन में बदला. नूपुर जानती थी, ऐसा ही होगा. फिल्मी पटकथाओं में और जीवन की पटकथाओं में बहुत ज्यादा फर्क नहीं होता है. फिर कमल कुमार के दिल की धड़कनों से, धड़कनों के एक-एक मनसूबों से नुपुर वाकिफ थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दीर्घ चुंबन के बाद, स्याह पड़ते उस पहाड़ी अंधकार में, अस्पष्ट होती हुई उस मायावी रोशनी में नूपुर का अपरूप-असीम सौंदर्य निहारते हुए कमल ने पूछा, "नूपुर, हम शादी कब करेंगे?"

"थोड़ी-सी सर्दी है न यहां!" कीमती शॉल से स्वयं को ढकती हुई दिगंत पर शेष होती क्षीण रोशनी की ओर देखती हुई नूपुर बोली, "तुम स्वेटर पहन लो!"

"यह मेरे सवाल का जवाब नहीं है." रेलिंग के पास रखी बेंत की कुर्सी खींचकर, नूपुर के पास बैठते हुए कमल कुमार ने कहा, "मेरे सवाल का ठीक-ठीक जवाब दो नूपुर."

". . .गोया तुम्हारा सवाल, सवाल न हो," झरनों की तरह रिमझिम-सी आवाज में नूपुर बोली, "फिल्मों के संवाद हों, जहां हर डायलाग के बाद, एक जोरदार धांसू डायलाग होना ही चाहिए."

तत्काल कमल कुमार कोई जवाब नहीं दे पाया. वह जान गया था, नूपुर आज भी, हमेशा की तरह इस प्रश्न को टाल जायेगी.

. . .किसी अनाम निशाचर पक्षी की तीखी आवाज गिरिश्रृंग के उस पार से उभरी और शॉल के सूखे-जर्द पत्तों से टकराकर, धीरे-धीरे विपरीत दिशा में फैलती गयी. दिगंत पर एक विशाल चांद उभरा और शांति, स्तब्ध ओस भीगी प्रकृति जैसे धवल, श्वेत चांदनी में डूब गयी.

नीचे सुदूर विस्तृत मैदान के एक किनारे छिटपुट झोपड़ियां बेतरतीब बिखरी थीं. . . .रात की खामोशी में दूर पहाड़ी झरने का क्रमशः स्पष्ट होता हुआ कलकल स्वर. . .ऊपर चकमक नीला आकाश!

"तुम नाराज हो नूपुर?"

"ऊं हूं!" नूपुर की हंसी उसी पहाड़ी झरने की कलकल से जैसे एकाकार होती गयी, "नाराज होकर इन सुंदर क्षणों को नष्ट नहीं करना चाहती, पर यहां तुम्हारी जरूरत या 'कमजोरी' बनकर नहीं आयी हूं."

"फिर?"

"तुम महज अपनी जरूरत मिटाने के लिए मुझे यहां नहीं लाये हो," गेस्टहाउस की रेलिंग पर कुहनी टिकाकर, चांदनी में नीचे पार्क की हुई कार देखती हुई नूपुर बोली, "तुम्हारा बंबई का फ्लैट, मद्रास का बंगला, कलकत्ते की कोठी या फिर स्टूडियो के मेकअप रूम तक उसके लिए काफी हैं. . .तुम्हारी शारीरिक इच्छाएं मैंने हमेशा पूरी की हैं. . . आई लव यू कमल. . .आई लव यू. . ."

"फिर मुझसे शादी क्यों नहीं करती?"

"कमल, शादी करने के बाद तुम मुझे फिल्मों में अभिनय करने दोगे?" नूपुर खड़ी हो गयी थी. कुर्सी सरकाकर, छोटे से बरामदे में चहलकदमी करती हुई बोली, "अपनी पत्नी को तुम अन्य नायकों के साथ स्वच्छंद विचरण की छूट दोगे?. . ."

"नहीं, कभी नहीं," एक टिपिकल भारतीय फिल्म अभिनेता की तरह कमल कुमार ने कहा था, "मुझसे शादी के बाद तुम्हें फिल्मों से संन्यास लेना होगा, सदा के लिए."

"पर क्यों?" बहुत विचलित दीखी नूपुर, "मेरे उस कलाकार का क्या होगा कमल, जो मेरे अंदर सोया है? उन महत्वाकांक्षाओं का क्या होगा, जिन्हें मैंने संजोया ?. . .कमल, तुम मुझे 'घर', 'बच्चों' और 'गृहस्थी' के बहाने एक दासता से, गुलामी से क्यों जोड़ना चाहते हो? . . .फिर मुझे एक गुलामी सौंपकर, किसी अन्य नायिका के साथ अपनी 'जरूरतें' पूरी करने तुम यहां आओगे. वह क्या मेरे लिए सम्मानजनक होगा?"

"घर बसाना गुलामी है?"

"है, मेरी निगाहों में. तुम मेरा अतीत नहीं जानते कमल," उफन आयी सांस को धीरे-धीरे, हृदय के कटघरे से निकालती हुई नूपुर बोली, "बताऊंगी. . .हो सके तो आज रात को ही बताऊंगी. . .मैंने किसी को नहीं बताया. . .यह गुलामी मैं झेल चुकी हूं. . ."

"मुझे कुछ नहीं सुनना है तुम्हारा अतीत-वतीत," अचानक कमल कुमार की शिराएं दपदपा उठीं, "तुम मुझसे शादी करोगी या. . ."

"या?" क्षणभर स्तब्ध रहकर नूपुर पहले की तरह खिलखिला उठी, "कमल कुमार, तुम अपनी शक्ल शीशे में नहीं देख रहे हो. . .एक अत्यंत पराक्रमी, दुःसाहसी-लापरवाह मर्द की तरह लग रहे हो. . . तुम क्यों नहीं कुछ 'एंटी हीरो' जैसे रोल करते हो?"

नूपुर व्यंग्य कर रही है. . .एक अंधा आवेग, एक आक्रोश कमल कुमार को घेर लेता है. क्रोध और उबलते आवेग की पृष्ठभूमि में बिजली की तरह, धातु की बनी वह नली चमक-चमक उठती है. कमल शांत होता है. . . उपाय है, इस जिद्दी औरत को काबू में लाने का. तर्क से नहीं तो शास्त्र से. . .

"देखो कमल," विनती के स्वर में अब नूपुर बोली, "इतनी सुंदर, मोहमय रात क्या हम झगड़कर बितायेंगे? तुम बैठो, मैं ड्रिंक लाती हूं."

"नहीं. . .ई," कमल का निषेध अप्रत्याशित रूप से तीखा था, "तुम बैठो, मैं ड्रिंक लाता हूं."

"असफल अभिनेताओं की तरह तुम थोड़ा 'लाउड' हो गये," बरामदे की रेलिंग पर बैठती हुई नूपुर बोली, "देखो भई, मुझे मार-वार डालने की कोई साजिश तो नहीं है!"

बरामदे तक पहुंचती अल्प चांदनी में, पल भर में सफेद-स्याह पड़ते कमल कुमार के चेहरे को काश नूपुर देख सकती. उसी अंधेरे में चेहरा छिपाकर कमल तत्काल डाकबंगले के अंदर दाखिल हो गया.

बैडरूम आकर, सबसे पहले पिस्तौल निकालकर कमल ने खुली वार्डरौब की दराज में छिपाया था. अचानक अगर नूपुर की निगाह इस पर पड़ भी गयी तो किसी सैलानी द्वारा पहले से छोड़ा जान का बहाना चल सकता है. फिर स्कॉच की बोतल निकालकर, दो ड्रिंक बनाकर, बोतल और दूसरे तामझाम ट्रॉली पर रखकर, बाहर बरामदे में आया.

"चीयर्स. . ." ड्रिंक उठाकर नूपुर बोली, "अब हम झगड़ेंगे नहीं, है न?"

चेंज कर आये कीमती शॉल और कुर्ता-पायजामा संवारता कमल बोला, "ठीक."

अरण्य से घिरा, दो कमरों का यह डाकबंगला अभी ज्योत्सना के समुद्र में एक द्वीप की तरह लग रहा है. रात अभी गहराई नहीं है, पर जंगल में रात गहराते देर नहीं लगती है. एक अजीब सन्नाटा पूरे परिवेश में बिखरा-सा है. डाक बंगले का बूढ़ा चौकीदार पहाड़ी के नीचे मैदान के किनारे बनी झोंपड़ी में रहता है. भोजन वगैरह का सारा इंतजाम वह कर गया है. अभी यहां से अगर चिल्लाकर उसे पुकारा भी जाये, तो भी शायद वह नहीं आ पायेगा; नूपुर यह जानती है, शायद तभी मजाक में उसने कहा था, मारने-वारने का इरादा तो नहीं है कमल कुमार का.

एक तेज आंधी, चुपके-चुपके कमल कुमार को जैसे झकझोर जाती है. कमल बैठ नहीं सकता. गार्डन चेयर पर बैठी नूपुर का चेहरा अंधेरे में पढ़ने की नाकामयाब कोशिश के बाद वह उठ जाता है. उठकर, बरामदे के दूसरे कोने पर जाता है. रेलिंग पर पेग-गिलास रखकर, किसी लापरवाह नाविक की तरह वह अपने बालों को पीछे ले जाता है, फिर कहता है, "एक बात कहूं नूपुर?"

"कहो, सिर्फ शादी की बात को छोड़कर."

"लेकिन मैं वही बात कहने तुम्हें इतनी दूर लाया. पिछले तीन वर्षों से केवल वही प्रस्ताव रखने के लिए मैं निरंतर तुम्हारे साथ हूं. निर्माता, वितरकों तक को पता है, तुम्हारे साथ काम करने के लिए बहुत कम पैसों में मैं फिल्में साइन करता हूं. . ."

"प्लीज कमल, प्लीज. . ."

"नूपुर, तुम मुझसे प्यार नहीं करतीं?"

"अगर नहीं करती तो लोकेशन से, सारी यूनिट के सामने रात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिताने यहां तुम्हारे साथ आती?"

"तुम आजाद हो शायद तभी आ पायी हो!"

"और तुम मुझसे मेरी उसी आजादी को छीनने पर तुले हुए हो," कुर्सी पर बैठी-बैठी ही नूपुर बोल गयी, "जानते हो कमल, आज से तीस-चालीस वर्ष पहले, विवाहित औरतें, रात को चुपके, सास-ननद की आंखें बचाकर, पति के कमरे में आती थीं. आकर पहले पति के चरणों की धूल सिर पर रखती थीं. फिर प्रातः मुंह अंधेरे उठकर, पति के चरण स्पर्श कर, कमरे से बाहर निकल जाया करती थीं..."

"इतनी चरण-धूलि क्यों भई?" अबकी कमल कुमार हंसा था.

"वाह, पति जो देवता ठहरे!" नूपुर का व्यंग्य था, "पति को प्यार करते वक्त उनके शरीर में अगर पैर छू जाये तो?"

कमल ठहाका लगाकर हंसा. फिर एक घूंट में गिलास खाली कर, नया पेग अपने गिलास में भरकर नूपुर के पास आया. बोला, "तुम बातें बहुत मजेदार करती हो नूपुर! ...खैर, अपना गिलास बढ़ाओ."

"अभी है!"

"नहीं, खतम करो. मेरा तीसरा राउंड है और तुम पहले पर ही रुकी हो!"

एक पल कमल कुमार को देखकर, दो छोटी-छोटी घूंटों में गिलास खाली कर, नूपुर बोली, "स्थिति आज भी कुछ ज्यादा बदली नहीं है. अभी तुम्हारी पत्नी बनी नहीं हूं, पर ड्रिंक भी तुम्हारी मर्जी से लेनी होगी...खुदा न खास्ता, अगर तुम्हारी पत्नी बन गयी तो जैसा मैं तुम्हें जानती हूं, तुम्हारी मर्जी के बगैर न उठ सकूंगी और न बैठ सकूंगी."

"क्या बकती हो नूपुर!"

"...दरअसल कमल, तुम अपनी बेशुमार दौलत में, आलीशान इमारतों में, इंपोर्टेंट फरनीचरों में, मुझे—मुझ जैसी एक खूबसूरत औरत को महज एक 'डेकोरेशन पीस' बनाकर रखना चाहते हो"

"नहीं...ई..."

"चिल्लाते क्यों हो कमल?" नूपुर चौंकी. फिर उठती हुई बोली, "खफ्तगी और गुस्से में आदमी बड़ा कमजोर दीखता है मुझे..."

"कहां जा रही हो?"

"फॉर अ वाश. बाथरूम. अभी आयी मैं डियर..." शहद घोलती-सी आवाज में एक निपुण अभिनेत्री की तरह कुछ मधुर शब्द बरामदे में उछालती हुई नूपुर डाकबंगले के अंदर चली गयी.

साड़ी बदलकर, बहुत झीनी, बहुत खूबसूरत गाऊन पहनकर जब नूपुर वापस लौटी तो कमल कुमार, डाक बंगले की रेलिंग पर बैठकर सिगरेट पी रहा था.

नूपुर जब पास आती है तो सारा परिवेश एक खुशबू, एक सुवास से भर उठता है. नूपुर के पास आने से पहले ही, वह सुवास कमल कुमार तक आ पहुंची. कमल ने सिर घुमाकर नूपुर को देखा तो देखता ही रह गया.... लाल रंग की पारदर्शी गाऊन में उद्दाम जिस्म की एक-एक रेखा जैसे तरंग की तरह हिलोरें ले रही थी. इतनी बार...इतनी बार नूपुर का सान्निध्य पा लेने के बाद भी, नूपुर नयी, अपरिचित और दुर्लभ क्यों प्रतीत होती है?

'ऐं...नाराज हो मुझसे...,' गिलहरी के शरीर की तरह नर्म, नाजुक गर्दन कमल कुमार के कंधे से टिक गयी, "मुझसे बस झगड़ने के लिए मुझे यहां लाये हो?..."

कमल ने कुछ कहने की कोशिश की, पर एक अत्यंत अपरिचित, आकारहीन शब्दपिंड उसके कंठ से निकला, जिसका अर्थ 'हां' भी हो सकता है और 'नहीं' भी.

"कितना नीला है यहां का आकाश...!" दो पग आगे बढ़कर, शेष बचे ड्रिंक को कंठ में उड़ेलती हुई नूपुर बोली, "कितनी प्रागैतिहासिक-सी हैं दूर सोयी पहाड़ों की वह कतारें...कितना गहन और रहस्यमय है ज्योत्सना में घला-धुला-सा यह धूसर जंगल!"

"अच्छी कविता कर लेती हो..."

"कमल, कवि और कविता की बात पर एक कहानी याद आयी," नूपुर उसी तरह, कमल के कंधों से टिककर, उसके केशों पर उंगलियां चलाती हुई बोली, "कमल मेरे, सुनोगे वह कहानी..."

"...एक लड़की थी. . बहुत शोख. . बहुत चंचल, बहुत सुंदर ...", कहानी शुरू कर अचानक नूपुर रुक गयी. फिर बोली, "ऐसे नहीं, चलो कुर्सी पर बैठें. पास-पास, घनिष्ट होकर. फिर सुनें-सुनायें...ऊं?"

उत्तर की प्रतीक्षा किए बगैर कमल कुमार को लगभग बांहों में भरकर नूपुर बरामदे के दूसरे कोने में जाकर बैठ गयी. फिर दोनों हाथों से, कमल कुमार के कंधे पर झूला बनाकर, डोलती, झूमती-सी नूपुर बोलती गयी.

"...कलकत्ते के पास, एक उपनगर में वह शोख, बड़ी-बड़ी आंखों वाली लड़की रहती थी. पिता एक अच्छी कंपनी में नौकरी करते थे. चार भाई-बहनों का हंसता-खेलता संपन्न, सुसंस्कृत परिवार था.

"..वह छोटी सी लड़की ज्यों-ज्यों बड़ी होती गयी, वह सुनती गयी, वह असाधारण सुंदर है. यौवन की दहलीज पर कदम रखकर, जब वह स्कूल छोड़कर, कालेज गयी. तब भी 'सुंदर' और 'असाधारण' शब्द उसके कानों में बार-बार ध्वनित होते रहे. उस छोटी-सी उम्र में ही कई धनी, संपन्न और अच्छे लड़कों ने उसकी ओर हाथ बढ़ाया, पर असाधारण लड़की के लिए तो असाधारण पुरुष ही चाहिए न. . पुरुष सुंदर, कांतिमय और असाधारण कब होता है, जानते हो कमल?.... धनी बनकर? संपन्न बनकर?...ऊं हूं! पुरुष का सौंदर्य तो उसके गुण होते हैं, कर्म या कीर्त्ति होते हैं.

"...वक्त बीतता गया और एक दिन उस रूपसी की मुलाकात एक उभरते कवि से हुई, कालेज की ही किसी कवि-गोष्ठी में...काले घुंघराले केश, बुद्धि-दीप्त चेहरा, उन्नत नासिका, फ्रेंच-कट दाढ़ी और अत्यंत प्रखर और उज्ज्वल दो आंखोंवाले उस कवि ने जैसे उस पर जादू कर दिया. . गोष्ठियों में वह कवि मानव की मुक्ति के गीत गाता. अपने गीतों में शोषित, वंचित, प्रताड़ित व्यक्तियों द्वारा एक दिन समस्त नाइंसाफी के खिलाफ उठ खड़े होने के संदेश देता. . .

...उस बालिका को लगा, यह व्यक्ति हर आदमी से मुट्ठी-भर ऊंचा इंसान है...बह गयी वह बालिका उस कवि और उसकी कविताओं के बहाव में. हां, प्रेम, बहुत सर्वग्रासी होता है किशोर हृदय में प्रेम की ज्वाला...युवती ने उस कवि के विषय में और कुछ जानने की परवाह ही न की. उसे केवल इतना पता था, वह कवि नहीं संपादक है...बस. . पिता, माता, भाई, बहनों की बाधा, कोई बाधा न रही. वह निकल पड़ी, उस कवि के साथ. . .

...चंद महीने बीतते-बीतते उसे पता चला, उसका पति कहीं संपादक नहीं, बल्कि एक फ्री-लांसर है, लगभग बेकार युवक है. यह झूठ विषैले तीर की तरह उस नववधू के हृदय में बींधता रहा...उस व्यक्ति ने झूठ क्यों कहा था उससे? अगर सच कह देता तो क्या बिगड़ता? आदमी संघर्ष तो करता ही है...इस झूठ से विश्वास का आधार ही जैसे दरक गया. . . परंतु वर्ष पूरा होते-होते, उस 'प्रगतिशील कवि' ने अपने माता-पिता के साथ मिलकर दहेज, जेवर, उपहार जैसी अत्यंत तुच्छ चीजों के लिए लड़की पर प्रताड़ना शुरू की. . भौंचक रह गयी थी वह लड़की. ऐसा भी होता है क्या? अत्याचार का एक लंबा सिलसिला शुरू हुआ. . एक पंछी जैसे अपने जीवन की पहली उड़ान में ही झंझावात में फंसकर अपाहिज हो गया हो.

...उस लड़की के लिए सब कुछ स्वीकार कर लेना असंभव-सा था. विश्वास नहीं होता था, आदमी के इतने परस्पर विरोधी रूप हो सकते हैं. मानव की मुक्ति का गीत गानेवाला आदमी, प्रेम के डोरों से बांधकर किसी को घर लाता है और जी भरकर अपनी शारीरिक जरूरतें मिटा लेने के बाद, उस बंधन की धज्जियां उड़ाकर उसे अशुभ कहता है. क्या करे वह युवती? जिस पिता के लाख विरोध के बावजूद

CC-0. In Public Domain. Gurukul K

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने घर छोड़ा था, अब उसी पिता के सामने जाकर दहेज के लिए, चंद रुपयों के लिए एक बेकार युवक की आवारागर्दी और अय्याशी के लिए हाथ फैलाये? नहीं, वह इसे स्वीकार नहीं करेगी!

. . . गर्भवती थी वह. समस्त लांछन सहती हुई, अपनी आंखों के सामने उस उच्छृंखल पुरुष का अन्य लड़कियों से रंगरेलियां मनाते हुए देखना हुई, पति और सास से शारीरिक पीड़ा सहती हुई वह रुकी रही, मां बनने के लिए. . . एक पुत्र-संतान के प्रसव के बाद, जब वह स्वस्थ हुई और पुत्र थोड़ा बड़ा हुआ तो उसने हमेशा के लिए उस नरक को त्यागना चाहा. वह निकल तो गयी, पर पुत्र को उन लोगों ने छीन लिया. उसे बंधक रखा गया, भविष्य की प्राप्ति के लिए.

". . . फिर शुरू हुई जीविका की तलाश. . नहीं, पिता के घर नहीं गयी वह लड़की. रिश्तेदारों के घर भी नहीं. . पहले छोटी-मोटी नौकरी. . फिर कलकत्ते के रंगमंच पर छोटी-मोटी भूमिका. . धीरे-धीरे रूप-सौंदर्य और अभिनय की ख्याति फैली. और तब आर्कलैंप के नीचे, कैमरे के सामने, नायिका के रूप में आते देर न लगी. छोटी-मोटी नौकरी से कैमरे के सामने आने तक की कथा बहुत करुण है. इस यात्रा के दौरान उस लड़की का उससे बहुत कुछ छीन लिया गया, लेकिन उस युवती ने स्वयं को लुंठित होने दिया. जानते हो क्यों?. . . प्रेम की कीमत थी यह. उस गलती की सजा थी यह. बहरहाल, पहली ही फिल्म. . बतौर नायिका के हिट. फिर बंबई से बुलावा. . ख्याति. . . पैसे . ."

कहानी खत्म कर न जाने क्यों नूपुर का गला रुंध आया था.

"उस बालक का क्या हुआ?" अब कमल कुमार ने पूछा था.

". . . बहुत दिनों तक नियमित पैसों के एवज में उसे बंधक बना रखा गया था. अब वह बालक मुक्त है. दार्जिलिंग में पढ़ता है. भीगी आवाज में नूपुर ने कहा था.

"मैं अगर उस लड़के को और उसकी मां को—दोनों को स्वीकार करना चाहूं तो?" कमल कुमार ने दोनों हथेली में, नुपुर का चेहरा भरकर उन बड़ी-बड़ी आंसुओं से भीगी आंखों को चूमकर कहा, "नूपुर, अब तुम्हें यह कहने की जरूरत नहीं कि तुम ही वह औरत हो, अभिनेत्री हो. . . अच्छा नूपुर, कोई अगर तुम्हारी और तुम्हारे पुत्र, दोनों की जिम्मेदारी लेना स्वीकार करे तो?"

"ऐसा नहीं हो सकता. . .," बहुत बेबस-सी नूपुर बोली, "उस हालत में न तो उसे पिता का प्यार मिल पायेगा और न ही मां का. . . ऐसे समझौते सफल नहीं होते कमल."

"क्यों नहीं नूपुर, क्यों?" बहुत व्यग्र आवाज थी कमल की.

"इसलिए कि वह बालक तुम्हें हमेशा ऊपर से थोपा हुआ, अप्रत्याशित-सा लगेगा," नूपुर की आवाज शायद भीग गयी थी, "जितना मैं तुम्हें जानती हूं, तुम उसे कभी स्वीकार नहीं कर पाओगे. . अभी तुम आवेश में चाहे कुछ भी कहो."

"तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं?"

"कमल, तुम खफा मत होना," एक स्नेहिल चुंबन कमल को लौटाती हुई नूपुर बोली, ". . . मैं अब विवाह के लायक नहीं रही. . . शायद बहुत अपवित्र भी हूं मैं, दुनियादारी की परिभाषा में. फिर विवाहोत्तर प्रेम से मेरा भरोसा उठ गया है. . एक कवि. . जो समस्त मानव के लिए मुक्ति का गीत गाया करता था, उसने मुझे रखैल बना रखा था. अब एक अभिनेता भी मुझे. . . . "

"बंद करो. . . बंद करो यह बकवास.!" विद्युत गति से कमल कुमार कुर्सी से उठकर छिटक गया था. शिराओं में फिर उफान आया था. फिर अल्मारी में रखे उस घातक-घातक हथियार की चमकती नली याद आयी थी. फिल्मों में हजारों बार पिस्तौल चलायी है कमल कुमार ने. आज एक असली पिस्तौल चलाकर देखेगा. देखेगा, छर्रे किस तरह एक जिद्दी औरत के कलेजे को पार कर जाते हैं. देखेगा, एक अभिनेत्री, जिसने असंख्य बार मरने का अभिनय किया है, वह जब सचमुच मरती है अपनी जिद के कारण तो कैसी लगती है. . क्या अभी ले आये पिस्तौल और काम तमाम कर दे और फिर लाश को धकेलकर, पीछे हजारों फुट गहरी पहाड़ी में गिरा दे और उसे आत्महत्या या एक्सीडेंट करार दे? . . नहीं, अभी नहीं. रात अभी जवान है. . एक अंतिम प्रयास और. . .

'छि : छि : छि :, कमल, तुम क्यों आज बच्चों जैसी हरकतें कर रहे हो?' कुर्ते पायजामे में कुछ दूर खड़े, विभ्रांत से कमल को अपलक कुछ क्षणों तक देख लेने के बाद नूपुर बोली, "मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं कमल, अब युद्ध नहीं. शेष लड़ाई अपने-अपने घरों को लौटकर. . "

कमल कुमार चुप.

"आओ कमल," नूपुर अपने हाथ बढ़ाकर बोली, "इस वन्य चांदनी में हम जरा टहल आयें."

कमल कुमार चुप.

"नहीं? . . उम् . . अच्छा तो घूमने का आइडिया ड्राप किये देती हूं," मचलकर नूपुर थोड़ी दूर, एक वेदीनुमा टीले को दिखाती हुई बोली, "उस वेदी पर, चांदनी में हम दोनों नाचेंगे."

"नाचेंगे? अभी?" अब कमल ने कहा था, शायद आश्चर्य.

"हां, क्यों नहीं?" नूपुर उसे खींचकर, डाक बंगले के नीचे उतरती हुई बोली, "कार में कैसेट है. उसे आन किये देती हूं. अभी समस्त वन प्रांतर एक आदिम, अफ्रीकी धुन से प्रतिध्वनित होगा. फिर हम नाचेंगे. . आओ कमल, जीवन में ऐसे क्षण फिर नहीं आयेंगे."

कमल कुमार ने हैरतभरी नजरों से नूपुर को देखा था. कहीं सचमुच आउट तो नहीं हो गयी. बातें करते-करते न जाने कितना पी गयी.

"ऐसे देखो नहीं प्रियतम," नूपुर के शरीर में जैसे ज्वार के पहले की खामोशी हो, "हे पुरुष श्रेष्ठ, मैंने अपना सारा रहस्य उन्मोचित कर दिया है आज. दुनिया जहान से एक्ट्रेस नूपुर सेन ने जो कुछ छिपाया, आज तुम जान गये. . . आओ मेरे हमसफर, विवाह की बात भूल जायें. . . आओ हम नाचें. . . . "

कमल ने कोई आग्रह नहीं दिखाया तो नूपुर स्वयं डाकबंगले से नीचे उतरकर, वहां तक गयी, जहां उनकी कार पार्क थी. कार का दरवाजा खोलकर अपना एक अत्यंत प्रिय कैसेट, रिकॉर्डर में भरकर, उसने स्विच ऑन कर दिया.

अचानक, अचानक ही अरण्य की गहरी निस्तब्धता टूटकर जैसे चकनाचूर हुई. शुरू के कुछ क्षण अजीब से लगे, पर कुछ वक्त बीता तो कमल को लगा, आदिम अरण्य में, यह टिपिकल अफ्रीकी 'धुन' सुनकर कोई खामोश बैठा नहीं रह सकता है. लगा, जैसे शाल के सूखे पत्तों से, अनाम पेड़ों की ऊंची-ऊंची टहनियों से, दूर गिरिशृंग से और जहां-जहां बिखरे, करोड़ों वर्ष प्राचीन चट्टानों के सीने को जैसे चीरकर यह आरण्यक धुन निकल रही है.

उन्हीं आदिम शब्द तरंगों में झूमती, नाचती, नूपुर ऊपर उठ आयी और बोली, "कमल प्रिय, आओ, हम उस वेदी पर चलें. . . आओ कमल, हम नाचें. . . मुक्त होकर, स्वच्छंद होकर, प्रकृति और इस अरण्य को साक्षी मानकर. . . . "

. . . उस वेदी पर पहुंचकर एक लता की तरह कमल कुमार को कभी आलिंगनबद्ध करती और कभी मुक्त करती नूपुर जैसे आदिम मानवी बन गयी थी. कमल कुमार को लगा था, सारा का सारा वन जैसे थिरक रहा हो. कुछ अस्पष्ट शब्द और ड्रिदिम-ड्रिदिम ताल; बांगो, कांगो और न जाने कितने यंत्रों के गर्भ से निकला वह ध्वनिपुंज हृदय की समस्त शिराओं को जैसे झंकृत करता. और उन्हीं झंकारों को नृत्य में समेटे होंठों पर एक अद्भुत अपार्थिव मुस्कराहट लिये नूपुर नाचती रही, नाचती रही, नाचती रही.

"सुनो प्रियतम," चेहरे पर झुक आये वन्य केशों को पीछे ले जाती हुई नूपुर बोली थी, "नृत्य ही मानव का सबसे पुराना शिल्प है. . जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरती शब्दहीन थी, जब मनुष्य ने भाषा का आविष्कार नहीं किया था, तब नृत्य ही भाषा बनी थी, नृत्य ही शब्द था, ध्वनि थी, वाक्य था. . . नृत्य अभिव्यक्ति का माध्यम था प्रियतम. तुम्हारा क्षोभ, क्रोध विसर्जित हो. . . प्रियवर, आओ. . मुझे स्वीकार करो, ग्रहण करो. . . देखो. चांद, तारे, पहाड़, पेड़, पौधे, प्रस्तर, गिरि-शृंग—सबको इसी की प्रतीक्षा है. आओ प्रियतम, मेरी बाहों में आओ. . आओ हम, क्रोध और अभिमान रूपी सागर का सीना चीरकर, उसकी सतह से खुशियों के मोती चुन लें."

. . . सहसा, पता नहीं क्या होता है कि स्वप्नाविष्ट-सा कमल कुमार उस नाचते वन्य सौंदर्य के कदमों पर घुटने टेककर बैठता है. किसी ग्रीक भास्कर्य की तरह कमल कुमार प्रार्थना की भंगिमा में, बैठे-बैठे ऊपर की ओर देखता हुआ अपनी दोनों बाहें फैला देता है. . . नाचती हुई वह स्वप्नसुंदरी, अपने कदमों में बैठे छह फुट दीर्घ उस परम रूपवान पुरुष को देखती है, उसके प्रशस्त कंधों को देखती है, कंधों तक झुक आये, हवा में उड़ते उसके बालों को देखती, उस विशाल ढांचे में बसी दो आंखों से झरती प्रार्थना को महसूस करती है.

सहसा, पलभर रुककर, ठिठककर, नूपुर कमल कुमार के सिर पर हाथ रखती है, और फिर बिखरे बालों को मुट्ठी में भरकर उस दिग्भ्रमित पुरुष को ऊपर उठाती है और उसके अल्प विस्फारित होंठों पर अपने होंठ रखती है. फिर उसके प्रशस्त सीने पर सिर रखकर, फूट-फूटकर रोती हुई कहती है, "प्रियतम, मुझे बंधन से बांधो नहीं. . क्या रखा है एक रिश्ते में?. . मुझसे प्रेम करो. . मुझसे प्रेम करो. . . मुझसे प्रेम करो..."

डाक बंगले में रात को अचानक नींद खुली तो कमल कुमार हड़बड़ाकर उठ बैठा. बहुत ज्यादा ड्रिंक लेने के बाद, जैसे आदमी क्षण भर के लिए स्मृति-भ्रष्ट हो जाता है, कमल कुमार को वैसा ही लगा. आंखें भींचकर, सिर को झटका देने के बाद लगा, मस्तिष्क रूपी कंप्यूटर ने पुनः काम करना शुरू कर दिया है. कंप्यूटर ने बताया, वह और नूपुर एक गहरे अरण्य के डाकबंगले में हैं. . . एक-एक कर मस्तिष्क रूपी कंप्यूटर में 'फीड' की गयी सारी 'डेटा' ने उसे समस्त सूचनाएं सप्लाई कीं. उन सब सूचनाओं के बीच, अंधेरे में बिजली की चमक जैसी, धातु की एक नली उसके दिमाग में कौंध गयी. . . हां, कमल को याद आया, उसके सारे अनुरोध, उसकी सारी विनती, यहां तक कि नूपुर के चरणों में बैठकर प्रार्थना तक को नूपुर ने ठुकरा दिया है. . .शिराओं में बहने वाली खून की धाराओं ने पुनः मस्तिष्क की ओर दौड़ना शुरू कर दिया. . . इस अर्थहीन पराजय का कोई औचित्य नहीं. . .नूपुर को जाना होगा इस धरती से. इस अपमान का यही उत्तर है. महानायक कमल कुमार ने औरतों के मामले में पराजित होना नहीं सीखा है.

लेटे ही लेटे कमल कुमार बड-स्विच दबाता है. अल्प रोशनी के वलय में, नींद में बेहोश-सी नूपुर को देखता है. . .कमल कुमार देखता है, नूपुर के होंठों पर एक अद्भुत-सुंदर मुस्कराहट तैर रही है. परम सुख, संतोष और तृप्ति के बाद औरतों के चेहरे पर जो दमक, जैसी खुशी फैलती है, नूपुर का चेहरा भी उसी आभा से परिपूर्ण था. इस मुस्कराहट में समर्पण का आनंद था—किसी को स्वीकार कर लेने का भी, किसी के द्वारा स्वीकृत होने का भी.

पर नहीं. स्तब्ध करनी है यह खामोश मुस्कराहट भी. कमल कुमार बिस्तर से उठता है. पहले एक सिगरेट सुलगाता है. धीरे-से पैकेट और लाइटर रखता है. आहिस्ता से खिड़की खोलकर, ढल चुकी चांदनी में, पीछे अनंत गहराई को देखता है. देख लेता है, कहीं कोई आहट नहीं है.

"किर्र. . . किर्र. . . कें. कें. . ", एक रतजगा अनाम पाखी बहुत नीचे से उड़ जाता है. खिड़की पर खड़े होकर उसके डैनों की सांय-सांय सुनी जा सकती थी. न जाने क्यों कमल कुमार सिहर उठता है. चुपके से खिड़की बंद कर देता है.

आगे बढ़कर वार्डरोब का पल्ला खोलता है. फिर उसकी दराज खोलता है और अंदर हाथ रखता है.

"इतनी रात गये, वार्डरोब में क्या ढूंढ़ रहे हो कमल?" बिस्तर से आधा अंधेरा और आधी रोशनी के बीच से एक दबी साश्चर्य किलकारी-सी सुनाई पड़ी, "क्या रखा है वार्डरोब में?"

"वा. . .वार्ड रोब में?" सशक्त अभिनेता होने के बावजूद कमल कुमार लड़खड़ा ही गया, "क. . . कुछ भी तो नहीं. . .नूपुर. . . "

"कुछ तो है. . .," अधलेटी नूपुर मुस्करायी, "मुझसे छिपा रहे हो. . उम्, बोलो ना?"

संभावित समस्त खतरे को औरतें किस तरह जान लेती हैं? क्या उनके पास एक अतिरिक्त इंद्रिय रहती है, जिससे पुरुष के मन और आंखों की भाषा वे जान लेती हैं?

"वो . . . वो स्क्रिप्ट," कमल कुमार अब सम्हल गया था, "कल सुबह लोकेशन पर शूटिंग करनी है न?"

"धत. . .," शून्य में, दाहिने हाथ की पांचों उंगलियां लहराती हुई, अत्यंत मोहक अंदाज में वह बोली, "स्क्रिप्ट में कोई नयी बात थोड़े ही है जो रात जागकर देखनी है. . . वापस बिस्तर पर लौट आओ."

. . . नूपुर ने लेटे ही लेटे अपनी दोनों बाहें फैला दी थीं. बहुत मुक्त, बहुत अंतरंग आह्वान था, "आओ. . . मेरे पास आओ. . . बहुत जिद्दी हो तुम. . . बच्चों की तरह. . आओ, मैं तुम्हें सुला दूं. . ."

जिद्दी?. . . तब क्या सचमुच नूपुर पिस्तौल की बात जान गयी है? वार्डरोब की दराज में पिस्तौल है भी? कहीं अंदर चेंज करने आयी नूपुर ने पिस्तौल देख तो नहीं लिया था?. . .उफ्. कमल कुमार का सिर चकराने लगता है.

"नहीं आओगे?" नूपुर बिस्तर पर उठ बैठती है, "तो चलूं पुन: उस वेदी पर? इस क्षीण, अधडूबी चांदनी में अरण्य का रूप बदल गया होगा. . .चलें देखने?"

"नहीं, नहीं. . . ," आतंकित-सा होकर कमल कुमार ने कहा, "सो लेते हैं, कल सुबह शूटिंग शिड्यूल है."

"देन कम. . प्लीज कम माई लव." फिर वही अंतरंग आह्वान.

कमरे के बीचों-बीच खड़े कमल कुमार को लगा, वह बिस्तर तक के दो गजों का फासला शायद ही कभी तय कर पाये.

तब भी, जड़ बने कमल कुमार के अंदर एक आहत, पराजित शेर दहाड़ मार रहा था.

इस बार भी बच गयी नूपुर, पर क्या कल तक बच पायेगी?

सुबह लोकेशन पर धूप निकली तो सबकी जान में जान आयी. बारिश से बचने के लिए सेट को बड़े-बड़े तिरपाल से ढक दिया गया था. वे फटाफट हटा लिये गये. कैमरा मूवमेंट के लिए रेत बिछा ली गयी. शाट 'पैन' करने के लिए एक छोटा क्रेन भी रखा गया. सूर्य की रोशनी को प्रतिफलित करने के लिए लंबे-लंबे रिफलेक्टर संजो दिये गये.

एक टिपिकल फार्मूला दृश्य था. नायिका अपनी सखियों के साथ, पनघट पर नाच रही है, होंठों पर नायक की प्रतीक्षा के गीत हैं. नायक गांव का है, पर विदेश से डाक्टरी पास कर गांव आया हुआ है. . . नायिका नाचती-गाती है, सखियों के संग. गीत समाप्त होते-होते, पहाड़ी के उस पार से, डाकुओं का एक दल आकर नायिका को उठा ले जाना चाहता है, डाकुओं का सरदार बचपन में बिछुड़ा नायक का सगा भाई है, जो बुरी संगत में फंसकर, डाकू हो गया है. तभी अचानक नायक आ जाता है. जमकर ढिशुंग-ढिशुंग होती है. अचानक डाकुओं का सरदार अर्थात खलनायक, नायक पर गोली चलाता है. इसी बीच, नायक की रक्षा करने के लिए नायिका, नायक के सामने आ खड़ी होती है. गोली नायिका के सीने में लगती है. .. पर क्या आम हिंदी फिल्मों की नायिका या नायक मर सकते हैं कभी? नहीं, उसी गांव में अल्प साधनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बावजूद, विदेश से लौटा डाक्टर नायक, नायिका का ऑपरेशन करता है, गोली निकालता है, नायिका बच जाती है. . .

प्रचुर मात्रा में ढिशुंग-ढिशुंग होने के बाद वह दृश्य आया, जब खलनायक, नायक को गोली का निशाना बनायेगा. खलनायक के हाथ में एक असली रिवॉल्वर चमक रही थी. उसने आंशिक पराजित नायक को बांध रखा था और उसके सामने रिवाल्वर उछालते हुए मक्कारी प्रदर्शित करते हुए, भारी-भरकम बूट पहनकर चहलकदमी कर रहा था.

"एक्शन, . . " निर्देशक चिल्लाया.

"नहीं. . . नहीं. . " न जाने कहां से, रोती बिलखती नायिका आकर, नायक के सामने आ खड़ी हुई, "इसे मत मारो. . . मेरे सारे जेवर, सारे गहने ले लो, पर इसे छोड़ दो . . . "

"कट." निर्देशक चिल्लाया. फिर बोला, "अब गोली वाला दृश्य . . . मेडम नूपुर, आप अपने चेहरे पर वही भाव लाइए. कमल साहब के सामने खड़ी होकर उसे दोनों बाजू में भरकर."

नूपुर के चेहरे पर वही भाव था. कमल कुमार के चेहरे पर न जाने क्यों जैसे हवाइयां उड़ने लगी थीं. निर्देशक बहुत खुश था. उसे तो ऐसा ही अभिनय चाहिए.

"एक्शन!" निर्देशक चिल्लाया.

. . . खलनायक के हाथों का रिवाल्वर गरज उठा. . . धुआं उगलती हुई, एक गोली विद्युत गति से, सीधे नूपुर के सीने में धंस गयी. एक दर्दनाक चीख फिजां में गूंजी और नूपुर आगे की ओर झुक गयी.

निर्देशक के 'कट' कहते ही तालियों की गड़गड़ाहट से इस बेहतरीन 'शाट' का स्वागत हुआ. उम्मीद थी उठकर, थोड़े से विश्राम के बाद, नूपुर लेटे ही लेटे, व्यथा से कराहने का अभिनय करती हुई अपना अगला 'शाट' देगी, पर नूपुर उठी नहीं.

फव्वारे की तरह खून की धाराएं रिस निकलीं. कमल कुमार को बाहों में जकड़े, बिंधे गले से नूपुर केवल इतना ही कह पायी, "कमल. . यह. . . क्या. . .हो गया. . मुझे क्यों गोली. . मारी. . .गयी. . ."

सेट पर कुहराम मच गया. पता चला, रिवाल्वर लोडेड थी और गोली असली थी, पर कैसे? कैसे यह हुआ. खलनायक द्वारा व्यवहृत रिवाल्वर में किसने नकली की जगह असली गोली भर दी?

और इसके पहले कि सेट पर डाक्टर आ सके, नूपुर ने दम तोड़ दिया था. शेष हो गयी थी फिल्मी दुनिया के सातवें आसमान पर झिलमिलाती, एक बेहतरीन जिंदादिल अदाकारा.

महीपत, कपूर साहब पर तो जैसे वज्रपात हुआ था. निर्माता कपूर अपने बाल नोचने लगे थे. महीपत, सेट की दीवार से सिर टकराटकराकर रो रहे थे.

घंटे भर में पास के थाने से पुलिस आ गयी थी. पूरा सेट उन लोगों ने घेर लिया था. नूपुर का सुंदर शरीर, पोस्टमार्टम के लिए भेजा गया था. महीपत, कपूर और खलनायक का अभिनय करनेवाले एक नये अभिनेता को हिरासत में ले लिया गया थे. नायक कमल कुमार से यह अंडरटेकिंग ले ली गयी थी, जब कभी कानून को उसकी जरूरत पड़े, उसे हाजिर रहना पड़ेगा.

दो घंटे के अंदर-अंदर सारे देश में यह खबर फैल गयी थी. मिश्रत प्रतिक्रियाएं हासिल हुई थीं. अखबारवाले इसे सुनियोजित हत्या का मामला बता रहे थे, लेकिन संभावित हत्यारे को चिन्हित नहीं किया जा सका था. कुछ लोग इसे महज एक दुर्घटना मान रहे थे, क्योंकि तारीख गवाह है फिल्मों की शूटिंग के दौरान, बिल्कुल ऐसी मौतें, इससे पहले भी हुई थीं.

फिल्मी दुनिया में कुहराम मच गया था. नूपुर के लाखों फैन स्तब्ध रह गये थे.

पूरी कलकत्ते की भीड़ जैसे उस छोटे से उपनगर में उमड़ आयी थी. पोस्टमॉर्टम के बाद नूपुर का शव यूनिट को दे दिया गया था. कानूनी कार्यवाही जारी थीं. जमानत पर निर्माता कपूर साहब और प्रोडक्शन कंट्रोलर महीपत शाह को छोड़ दिया गया था. विमान से शव लेकर यूनिट के सारे लोग कलकत्ता आये थे. कमल कुमार भी आया था. कुछ अन्य प्रख्यात अभिनेता-अभिनेत्रियां भी साथ थे.

नूपुर के घर पहुंचते ही, पहले रोते-बिलखते, उसके माता-पिता आये. फिर, भीड़ चीरकर कुरते-पायजामे में, एक प्रौढ़-सा लगनेवाला व्यक्ति ट्रक के सामने आ खड़ा हुआ.

"पति है—अस्का उंड़ेल—सब खुराफात की जड़ है यही आवारा. . ," भीड़ में से कोई चिल्लाया.

कमल ने भरपूर नजरों से उस आदमी को देखा था, जैसे वह व्यक्ति उसका प्रतिद्वंद्वी हो. बढ़ी हुई दाढ़ी, गंदे कपड़े, विह्वल दृष्टि, अस्त-व्यस्त केश, आंखों पर चश्मा. . .तो यही वह व्यक्ति है, जिसके छलावे में नूपुर आयी थी. . .यही वह व्यक्ति है, जिसने सुनियोजित ढंग से नूपुर के जीवन में 'विवाह' शब्द को एक विभीषिका में बदल दिया था.

". . .मां. . .मामा. . .मम्मी. . .," सात-आठ साल का एक बच्चा ट्रक पर चढ़ने की कोशिश कर रहा था. किसी ने उसे ट्रक पर चढ़ा दिया.

एक असहाय शिशु का वह कातर आह्वान सुई की नोंक की तरह कमल कुमार के सीने से बिंधता चला गयी. जीवन भर के लिए स्नेह की एक छांव उस बच्चे से छिन गयी. अब कभी एक स्नेहिल आंचल की छांव उस बच्चे को नहीं मिलेगी. अब कभी उस शिशु को मां की गोद नसीब नहीं होगी. . .यह क्या हो गया! !

"मां. . .मां. . .मां. . .उठो मां. . .!"

कमल धीरे-धीरे अपने कानों पर हाथ रखता है, फिर भी 'मां' शब्द किसी अंधे कुएं में उपजा प्रतिध्वनि की तरह उसके हृदय को चीर जाता है. कमल से खड़ा नहीं रहा जाता. सिर उठाकर, मुंह खोलकर वह बहुत सारी हवा अपने अंदर समेटना चाहता है, पर उससे यह नहीं होता. . . .नन्हें पाखी की आवाज में वह शिशु निरंतर अपनी मां को पुकारे जा रहा था. वह आह्वान, बुलेट बनकर कमल के अंतर्मन को कुरेद रहा था. . .ओफ्, यह सहा नहीं जाता!

लोगों की नजरें बचाकर, कमल धीरे-धीरे ट्रक से नीचे उतरता है. वह चुपचाप ही, खींचकर उतार लेता है, अपने सेक्रेटरी को. पुलिस की मदद से, अस्वस्थता का बहाना बनाकर, कमल पीछे-पीछे आती हुई अपनी कार में बैठता है. कार चल पड़ती है, भीड़ की विपरीत दिशा में.

लोकल थाने के ऑफिसर इंचार्ज ने सपने में भी नहीं सोचा था, इतने बड़े अभिनेता को वह अपने सामने खड़ा पायेगा. उसने कमल के सामने एक साथ तीन-चार कुर्सियां बढ़ा दीं.

ऑफिसर ने अखबार में दुर्घटना की बात पढ़ रखी थी. कमल कुमार उसी मुतल्लिक बयान देने आये थे. अफसर ने धीरज से, खुशामदाना अंदाज में कमल कुमार का बयान सुना. फिर अपनी कुर्सी से उछला, "हुजूर, कह क्या रहे हैं आप? कहीं सदमे से आपका दिमाग. . ."

केवल दिमाग नहीं, हृदय भी छलनी हो गया था. कमल कुमार के अंदर एक शब्द—'मां' अभी भी घुमड़ रहा था, अत्यंत शक्तिशाली उस छोटे से शब्द ने उसे तोड़ दिया था, शायद ध्वस्त कर दिया था.

" . . .आप मुझे गिरफ्तार कीजिए अफसर," कमल कुमार जैसे एक अन्य जगत से बोल रहा था. उसकी आवाज रुंध गयी थी, "उस खलनायक की रिवाल्वर में सबकी नजरें बचाकर असली गोली मैंने भर दी थी. . .मैं नूपुर सेन का कातिल हूं. . ."

"पर क्यों? क्यों कुमार साहब?" अफसर हक्का-बक्का था, "जवाब दीजिए कुमार साहब?"

मेज पर लुढ़कते हुए भीगे, कांपते, थर्राते स्वर में कमल कुमार ने कहा था, " . . .आप नहीं समझेंगे. . .कभी नहीं समझेंगे. . ." □

● सी-147, एम. एम. टी. सी. कॉलोनी, नयी दिल्ली-110017

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयोजक : सुशील वर्मा

चरम आवेग के काम : कितने सही कितने गलत?

कुछ लोगों का मानना है कि चरम आवेग में किये गये काम ही सही काम होते हैं, लेकिन कुछ लोग ठीक इसके विपरीत सोचते हैं. उनका मानना है कि चरम आवेग में गलत काम ही होते हैं. सबकी अपनी-अपनी सोच है और अपने-अपने तर्क, जो एक दूसरे के पक्ष में हो सकते हैं और विपक्ष में भी. तो आइए, इस संदर्भ में कुछ ऐसे लोगों के विचार जानें, जो अपने-अपने क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण हैं—

चरम आवेग के कारण किये गये अपराधों को कानून अलग नजरिये से देखता है!

—लक्ष्मीमल सिंघवी

चरम आवेग चौराहे की तरह है. यह आवेश, प्रतिरोध, संताप और दर्शन में बदल सकता है. इसकी यह सहज प्रकृति होती है कि यह 'वैक्यूम' में पैदा नहीं होता. इसकी भूमि मनुष्य का भाव होती है, जिसके ढेरों अनुभव और सामाजिक, राजनीतिक, मानवीय दृष्टिकोण होते हैं. इन सब को मिलाकर एक खास मन:स्थिति में इसकी उत्पत्ति होती है.

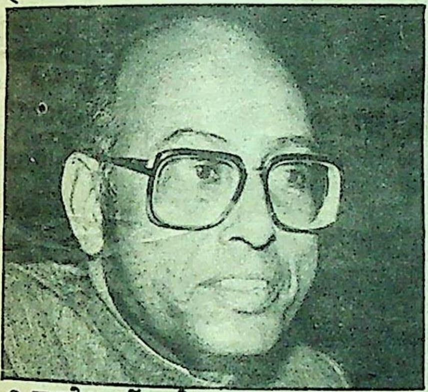

● लक्ष्मीमल सिंघवी

जरूरी नहीं कि आवेग तर्कसंगत और विवेकसंगत हो ही. यह तर्करहित और विवेकरहित भी हो सकता है, क्योंकि इसे अंतर्मुखी बनाना बहुत आवश्यक होता है. इसे बहिर्मुखी बना देने से समाज में तनाव, हिंसा, प्रतिरोध और वैमनस्य की स्थिति बन सकती है.

चरम आवेग की स्थिति कानून की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है. क्योंकि कई अपराध ऐसे होते हैं, जो आवेग के कारण किये जाते हैं. उन्हें कानून दूसरे नजरिये से देखता है, क्योंकि कोई पूर्व नियोजित मंशा अपराध करने में नहीं होती है.

इन अपराधों को क्षण भर का प्रमाद या पागलपन भी कहा जा सकता है. एक आदमी घर लौटता है और वह अपनी पत्नी को किसी अन्य व्यक्ति के साथ अश्लील स्थित में पाता है. तब उसका मानसिक संतुलन नहीं रह पाता. वह उनमें से एक या दोनों को तत्काल मार डालता है. कई बार यह समझना थोड़ा मुश्किल होता है कि अपराध चरम आवेग के कारण ही किया गया था: इसके अलावा कोई पूर्व नियोजित दंडनीय मनस्तत्त्व भी इस अपराध के पीछे था. इसलिए चरम आवेग की अवधि को जानना जरूरी हो जाता है. यह आधुनिक मनोविज्ञान का बहुत उलझा हुआ प्रश्न है कि चरम आवेग की अवधि क्या होती है या हो सकती है.

देखना यह होता है कि आवेग क्या पागलपन की स्थिति में आ जाता है और अगर ऐसा होता है तो व्यक्ति को इंसैनिटी की सुरक्षा भी कितनी है. मेरा यह मानना है कि हमारे देश में चरम आवेग के कारण हुए अपराधों के लिए दंड व्यवस्था अलग होनी चाहिए. इधर पिछले वर्षों में हम यह देख रहे हैं कि हमारे न्यायालय इस सिद्धांत को स्वीकार कर रहे हैं.

अगर किसी व्यक्ति ने निश्छल भाव में चरम आवेग को क्षणों में कोई अपराध किया है तो केवल हर्जाना ही लिया जाना चाहिए. कुछ मामलों में व्यक्ति को हल्की-सी सजा दी जा सकती है. ऐसे व्यक्ति को लंबी सजा नहीं दी जानी चाहिए. प्राणदंड देना तो एकदम गलत है, क्योंकि व्यक्ति का अपराध करने का मंतव्य नहीं होता है.

हम लोग कानून के क्षेत्र में एक प्रकार के प्रशिक्षण से गुजरते हैं, जिसमें हम चरम आवेग को संयमित करने का अभ्यास करते हैं. इसलिए ऐसे क्षण मेरे जीवन में बहुत कम आते हैं और अगर आते हैं तो बहुत कम अवधि के. □

राजनीति में रहते हुए पैशन पर नियंत्रण रखना जरूरी है!

—इंद्रकुमार गुजराल

जब मैं और मेरी पीढ़ी के कुछ लोग युवावस्था में थे, तब जिस चीज ने हमें अपनी ओर खींचा था, वह हिंदुस्तान की आजादी का जद्दोजहद था. तब पूरा माहौल ही आवेग भरा था. अपनी 10 वर्ष की उम्र में मैं भी इस माहौल का हिस्सा बन गया था.

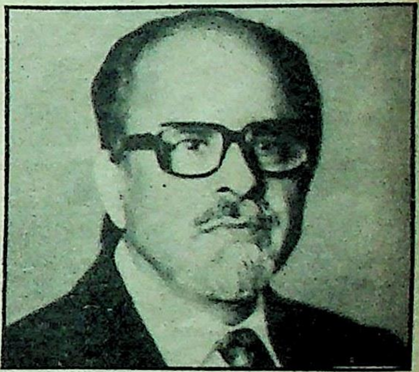

● इंद्रकुमार गुजराल

मेरा यह अनुभव है कि नौजवानी में चरम आवेग के क्षण आते हैं. बाद में तो व्यक्ति नाप-तौल करने लगता है. पिछले दिनों हुए दंगों को मैं पैशन के दंगे नहीं मानता.

मेरा राजनीतिक जीवन दो हिस्सों में बंटा हुआ रहा है. एक मेरा विद्यार्थी जीवन, जब आजादी की लड़ाई चल रही थी और एक सत्ता का जीवन, जब मैं संसद-सदस्य एवं मंत्री (राजनयिक) था. मेरा मानना है कि सत्ता में रहते हुए या सत्ता से लड़ते समय व्यक्ति को आवेग में नहीं आना चाहिए. उसका जीवन एकदम "कैल्कुलेटिड" होना चाहिए. जब व्यक्ति सत्ता में हो या सत्ता से लड़ रहा हो, तब अगर उसके जीवन में आवेग के क्षण आते हैं तो वह इस काबिल नहीं है कि वह राजनीति में रह सके. जो व्यक्ति अपने पैशन पर नियंत्रण नहीं रख सकता है, वह न मंत्री बन सकता है और न ही राजनयिक.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवेग के अनुभव की भूमि पर लिखी गयी रचना ही श्रेष्ठ हुआ करती है!

▣मृदुला गर्ग

जिंदगी में ऐसा कोई हादसा जरूर होता है, जिससे आप अंदर से बाहर चले जाते हैं. यही क्षण आपके जीवन में चरम आवेग के क्षण होते हैं. मुझे यह हमेशा लगता रहा है कि अपनी व्यक्तिगत जिंदगी में घटे हादसों की बनिस्पत मैं समाज के हादसों से अधिक प्रभावित (आवेग में) हो जाती हूं, जैसे भोपाल-कांड से मैं इतनी व्यथित हो गयी थी कि मुझे बोलने में परेशानी होने लगी. आप यकीन कीजिए कि कई दिनों तक मैं बोल ही नहीं पायी.

मेरी व्यक्तिगत जिंदगी में इक्के-दुक्के ही ऐसे हादसे हुए हैं, जिनसे चरम आवेग की स्थिति बन पायी है, जैसे पहली घटना यह है कि

● मृदुला गर्ग

जब मेरे पिताजी की मृत्यु हुई तो मेरी इच्छा हुई कि मैं आत्महत्या कर लूं. मैं तब यह सोचने लगी थी कि आदमी जिंदा रहे या न रहे, कोई खास फर्क नहीं पड़ता. मैं जब किसी व्यक्ति से मिलती थी तो मन में प्रश्न उठता था, "अच्छा, आप जिंदा हैं?" तब मुझे लगातार सिरदर्द रहने लगा था. करीब एक हफ्ता गुजर गया.

एक दिन मैं अपने घर के बरांडे में घूम रही थी. घूमते-घूमते मेरे मन में विचार आया कि मैं छज्जे से नीचे सड़क पर कूद मरूं, मगर मैं साहस नहीं कर पायी. तब मैंने अपने कमरे में आकर लिखना शुरू कर दिया (जो कि 'अनित्य' उपन्यास का पहला खंड है) अचरज की बात यह रही कि मेरा सिरदर्द गायब हो गया.

दूसरी घटना यह रही कि मैंने अपनी एक कहानी 'टोना' लिखी, (जो कि अब 'चित-कोबरा' उपन्यास का अंश है) इसको लिखने के बाद मैं अपनी बालकनी में बैठी थी, तब मुझे इतनी ज्यादा एकेस्टिसी (आनंदानुभूति) हुई कि मेरा मन हुआ कि मैं नीचे कूद जाऊं. मुझे लगा कि अब जीने की कोई जरूरत नहीं है.

करीब पांच वर्ष पहले गाड़ी चलाते हुए मेरी इच्छा होती थी कि मैं पूरी रफ्तार से गाड़ी दौड़ाऊं और फिर छोड़ दूं. मुझे बहुत रोमांच होता था.

यही भावना मैंने उपन्यास लिखते समय महसूस की थी. मेरी इच्छा होती है कि मैं अपने उपन्यास को एक 'प्वाइंट' पर ले जाकर छोड़ दूं. फिर मुझे कोई परवाह नहीं कि उपन्यास कहां जाता है अपने नये उपन्यास 'मैं और मैं' के लिखने के दौरान मैं चरम आवेग की स्थिति को जी रही थी. उपन्यास लिखने के पूर्व मुझे लग रहा था कि मुझे कुछ चीजों से दुबारा मिलना संभव नहीं है. इसलिए मैंने अपने एकदम निजी अनुभवों को लिखना बेहतर समझा, क्योंकि मेरा यह मानना है कि लेखक अपनी हत्या लिखकर करता है. अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मैं सोचती हूं कि किसी स्त्री के लिए उसके चरम आनंद (आवेग) के क्षण तब होते हैं, जब वह अपनी पहली संतान को जन्म देती है.

अंत में मेरा यह मानना है कि चरम आवेग के क्षणों के थमने पर आवेग के अनुभव की भूमि पर लिखी गयी रचना ही श्रेष्ठ होती है. जब रचनाकार तटस्थ होकर लिखता है तो उसकी रचना दूसरे या तीसरे दर्जे की बन जाती है.

दंगे जानबूझकर फैलाये गये आवेग का परिणाम थे!

▣ डॉ. महीप सिंह

मेरे जीवन में आवेग कभी चरम स्थिति तक पहुंचा हो, ऐसा मुझे याद नहीं आता. हां, कुछ घटनाओं ने मुझे आवेग के उन चरम क्षणों का स्मरण कराया, जिनका संबंध वैयक्तिक जीवन से नहीं है. बल्कि वैयक्तिक जीवन से जुड़े सामाजिक जीवन से है. उदाहरण के लिए अपनी किशोरावस्था के समय जब देश विभाजन के साथ आजाद हुआ, तब वह क्षण मेरे लिए बहुत उत्तेजना का था. वह क्षण ऐसा था कि मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्षण खुशी का है या दुख का है.

दूसरी घटना वह थी कि जब चीन के साथ भारत का संघर्ष चल रहा था. हर मोर्चे पर भारतीय सेना पराजित हो रही थी. ऐसा लग रहा था कि भारत के न जाने कितने बड़े हिस्से पर चीन का कब्जा हो जायेगा. उन दिनों मैं बहुत उत्तेजित, उद्विग्न और व्याकुल था.

एक वह आवेग का क्षण रहा, जबकि सेना ने बांग्ला देश में विजय प्राप्त करके लगभग नब्बे हजार लोगों को शस्त्र समर्पित करने के लिए बाध्य किया. भारतीय इतिहास में यह घटना अद्वितीय थी.

दुःख से भरा चरम आवेग का क्षण मेरे लिए 6 जून का था, जब मुझे जानकारी मिली कि हमारी बहादुर सेना ने 'दरबार साहिब' में प्रवेश किया, अकाल तख्त ध्वस्त कर दिया और सैकड़ों लोगों को मार दिया. मुझे तब अजीब लग रहा था कि इस हादसे को देश का एक वर्ग आनंद और उन्माद के रूप में देख रहा है और दूसरी तरफ मैं इसे दुःख और पीड़ा के रूप में देख रहा हूं. यह अंतर मुझे भीतर ही भीतर साल रहा था.

श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या के बाद हुए दंगों को कुछ लोग चरम आवेग का परिणाम बताते हैं, जबकि मेरा यह मानना है कि वह जानबूझकर फैलाये गये आवेग का परिणाम था. जिसका केवल एक ही मकसद था कि एक वर्ग को दूसरे वर्ग के खिलाफ करके राजनीतिक फायदा उठाना.

गलत-सलत अफवाहें फैलाकर वे अपने मकसद में कामयाब रहे. हाल ही में प्रकाश में आनेवाली तीन रिपोर्टों से यह जाहिर होता है कि दंगे चरम आवेग का परिणाम नहीं थे. बल्कि पूरी तरह योजनाबद्ध

● महीप सिंह

थे, जबकि आवेग नियोजित नहीं होता, वह तो स्वयंभू होता है.

यह आवेग के क्षण निकल जाने के बाद मैंने कई कहानियां लिखीं, जैसे कि देश-विभाजन के बाद मेरी एक कहानी थी 'पानी और फूल' 1978, '79, '80 में अलीगढ़, मुरादाबाद और भिवंडी में हुए दंगों के दौरान कुछ कहानियां लिखीं.

6 जून की घटना के बाद कुछ लेख लिखे. मैं यह मानता हूं कि इस सबके लिखवाने में चरम आवेग का अहम् योगदान रहा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डोरियन ग्रे का चित्र

आस्कर वाइल्ड

अंग्रजी साहित्य में 'कला कला के लिए' के सिद्धांत के बहुत बड़े पैरवीकार आस्कर वाइल्ड का जब नाम आता है तो एक दूसरा नाम भी दिमाग में गूंजने लगता है. उनके महान उपन्यास 'पिक्चर आॅव डोरियन ग्रे' का. प्रस्तुत है मानव मन के कुछ अंधेरे पक्षों को उजागर करने वाले इसी उपन्यास का संक्षिप्त रूपांतर——

कमरे के मध्य में चित्रफलक पर एक अभूतपूर्व सौंदर्यपूर्ण व्यक्तित्व से युक्त युवक का आदमकद चित्र टंगा था. उससे कुछ दूरी पर चित्रकार बेसिल हावर्ड शांत बैठा था. एक मुस्कराहट उसके चेहरे पर बिखर गयी.

"यह तुम्हारी अब तक की कृतियों में सर्वोत्तम है." लार्ड हेनरी ने कहा, "इसे तुम अगले वर्ष ग्रासवेनर अवश्य भेजना."

"तुम शायद मुझ पर हंसो, परंतु मैं इसे प्रदर्शित नहीं कर सकता हूं. इस चित्र में मैंने बहुत सीमा तक स्वयं को समा दिया है." बेसिल ने उत्तर दिया.

"स्वयं को समा दिया है! मुझे इस चित्र में और तुममें कोई समानता नहीं दिखाई दे रही है."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम समझे नहीं, बेशक चित्र में और मुझमें कोई समानता नहीं है. हैरी, चित्रकार जब पोर्ट्रेट बनाता है तो वह उसका खुद का होता है, न कि सामने बैठनेवाले का. चित्र में चित्रकार अपने अंतर को उद्घाटित करता है न कि उसे, जिसका चित्र बनाता है. इस चित्र में मैंने अपनी आत्मा के रहस्य को उद्घाटित कर दिया है और यही मूल कारण है कि मैं इसे प्रदर्शित नहीं करना चाहता हूं."

"डोरियन ग्रे से पहली बार जब मिला तो उसे देखते ही एक डर-सा मेरे अंदर समा गया. मुझे महसूस हुआ कि इस प्रभावशाली सौंदर्ययुक्त व्यक्तित्त्व को यदि मैंने नहीं रोका तो यह मुझ पर हावी हो जायेगा. इस डर के कारण मैं कायरतापूर्वक कमरे से बाहर निकल गया, परंतु बाहर लेडी ब्रैंडन ने मुझे जाने नहीं दिया. अचानक मैंने एक बार फिर स्वयं को डोरियन ग्रे के सामने पाया. मैं उससे स्वयं बात कर सकता था, फिर भी मैंने लेडी ब्रैंडन से परिचय कराने को कहा. अभूतपूर्व आकर्षण है उसके व्यक्तित्व में."

"डोरियन ग्रे का चित्र है यह? मुझे उसके बारे में और बताओ. कितनी बार उससे मिलते हो?"

"रोज. वह मेरी आवश्यकता बन गया है. मेरी कला जैसे उसमें सिमट गयी है. विश्वकला इतिहास में दो युगों का ही महत्व है, एक जब कला का कोई नया माध्यम प्रकाश में आता है. दूसरे जब नया कलात्मक व्यक्तित्त्व पैदा होता है. डोरियन ग्रे के व्यक्तित्व ने मुझे चित्रकला की नयी शैली दी है. तुम्हें उसमें कुछ नहीं लगेगा, परंतु मेरे लिए वह सब कुछ है. मैंने मूर्तिकला की विलक्षण कलात्मकता को उसमें उड़ेल दिया है. मेरा एक बहुत बड़ा हिस्सा इस चित्र में समाया हुआ है. उसे मैं प्रदर्शन के लिए कहीं नहीं भेज सकता हूं. मैं नहीं चाहता कि लोग उसमें मेरी आत्मा को ढूंढ लें."

इस बीच खानसामा ने आकर कहा, "श्री डोरियन ग्रे स्टूडियो में बैठे हैं श्रीमन!"

"तुम उससे अब मेरा परिचय अवश्य करवाओ." लार्ड हेनरी ने हंसते हुए कहा.

"डोरियन ग्रे मेरा परम मित्र है, उस पर तुम्हारा प्रभाव ठीक नहीं होगा. वह सहज सौंदर्यपूर्ण स्वभाव से युक्त है. मेरा कलाकार-जीवन उस पर निर्भर है. देखो. . ."

"क्या बक-बक कर रहे हो." हैनरी ने यह कहते हुए बांह से पकड़ा और मुस्कराते हुए घर के अंदर ले चला.

लार्ड हैनरी ने डोरियन ग्रे को देखा. वास्तव में वह आश्चर्यजनक रूप से सुंदर था, नीली निष्कपट आंखें, सुघड़ लोहित होंठ और लहरदार सुनहरे बाल. उसे देखते ही उस पर विश्वास करने का मन होता था. आश्चर्य नहीं कि बेसिल उसे पूजता था.

"यह लार्ड हैनरी है, मेरे आक्सफोर्ड के पुराने मित्र. हम तुम्हारे बारे में ही बातें कर रहे थे." बेसिल ने कहा.

"आप बहुत आकर्षक हैं मिस्टर ग्रे, बहुत आकर्षक."

बेसिल अपने रंग मिलाने में व्यस्त था, उसका ब्रुश तैयार था. यह सुनते ही वह कुछ चिंतित हुआ और हिचकिचाते हुए बोला, "हैरी, मुझे यह चित्र आज ही बनाना है. बुरा मत मानना, मैं तुम्हें जाने के लिए कह रहा हूं."

"नहीं आप नहीं जाइये. बेसिल कुछ रुष्ट मूड में है, ऐसे में मेरे लिए सहना बहुत कठिन है." डोरियन ग्रे ने कहा.

सवा घंटे बाद हावर्ड ने चित्र बनाना समाप्त किया.

"अब यह चित्र पूरी तरह से बन गया है." कहते हुए बेसिल ने कैनवस के बायें कोने में अपना नाम लिख दिया. इस बीच ग्रे और हेनरी बहुत बतिया चुके थे.

"दोस्त, मैं तुम्हें हार्दिक बधाई देता हूं. आधुनिक समय का यह सर्वोत्तम पोर्ट्रेट है." लार्ड हेनरी ने कहा.

डोरियन ग्रे धीरे से उठकर चित्र के सामने आया, देखते ही उसके गाल प्रसन्नता से शरमा गये. उसकी आंखों में प्रसन्नता झलक रही थी. जैसे वह स्वयं को पहली बार पहचान रहा था. अपने अप्रतिम सौंदर्य को उसने पहली बार महसूस किया था.

"अफसोस!" डोरियन बड़बड़ा रहा था, "अफसोस मैं बूढ़ा और भयानक हो जाऊंगा, परंतु यह चित्र हमेशा इतना ही जवान रहेगा, यह कभी बूढ़ा नहीं होगा. यदि इसका उलटा होता तो! यह चित्र बूढ़ा होता रहता और मैं वैसा ही जवान रहता, सदा जवान! इसके लिए मैं अपना सब कुछ लुटाने को तैयार हूं. अपनी आत्मा तक दे सकता हूं. मुझे जब भी लगा कि मैं बूढ़ा हो गया हूं, मैं स्वयं को मार दूंगा."

हावर्ड का चेहरा पीला पड़ गया, उसने डोरियन का हाथ पकड़ते हुए कहा, "ऐसा मत कहो डोरियन, ऐसा मत कहो. भौतिक वस्तु से तुम्हें ईर्ष्या नहीं है, तुम तो इन सबमें अच्छे हो."

"मुझे उस सबसे ईर्ष्या है, जिसका सौंदर्य नहीं मरता है. मुझे इस पोर्ट्रेट से ईर्ष्या है. हर बीतता हुआ क्षण मुझसे कुछ छीन लेता है. काश, मैं यह चित्र हो सकता. तुमने यह चित्र क्यों बनाया, क्यों बनाया?" आंसू की गर्म धार उसके गाल पर बह गयी.

"मुझे अपने इस सर्वोत्तम चित्र से घृणा होने लगी है. हैरी, न तुम रुकते. . ." यह कहकर बेसिल ने लंबी रंगपट्टिका छुरी उठायी और कैनवेस की ओर बढ़ा.

डोरियन ने उसके हाथ से छुरी छीनी और उसे स्टूडियो के कोने में फेंकते हुए चीखा, "नहीं बेसिल, नहीं, यह हत्या होगी."

"डोरियन, मुझे प्रसन्नता हुई कि तुम्हें मेरा काम पसंद आया. जैसे ही यह चित्र सूखेगा, इसे वार्निश करके मैं तुम्हारे पास भेज दूंगा. फिर जो चाहे तुम करना."

डोरियन ग्रे अभूतपूर्व सुंदरी की संतान था. जिसने एक पागल आवेश में सब कुछ दांव पर लगा दिया था. ग्रे को जन्म देने के तत्काल बाद उसकी मृत्यु हो गयी थी. प्रत्येक उत्कृष्ट वस्तु के पीछे एक त्रासदी होती है.

कुछ महीने बाद, डोरियन ग्रे लार्ड हेनरी की प्रतीक्षा कर रहा था और हेनरी आदत के मुताबिक अभी तक नहीं आया था. उसका सिद्धांत था कि सही समय, समय का चोर है.

"डोरियन, देर से आने की माफी चाहता हूं."

"मुझे जाना होगा हैरी, मैं तुम्हें लेडी थौर्नबरी के यहां मिलूंगा." डोरियन ने उठते हुए कहा.

"मेरे दोस्त, औरतें सिर्फ सजावट होती हैं. वह मस्तिष्क पर पदार्थ की विजय का प्रतिनिधित्व करती हैं."

"तुम्हारी बातें मुझे डरा रही हैं हैरी, 'वह' तो बहुत प्रतिभासंपन्न है."

"उसे कब से जानते हो?"

"तीन सप्ताह से."

"कहां मिले थे?"

"नाटक देखते हुए. रोमियो जूलियट नाटक था. रोमियो मोटा और प्रौढ़ था, परंतु, जूलियट! हैरी, एक सत्रह वर्षीय लड़की की कल्पना करो जिसका चेहरा फूलों जैसा है. उसकी गहरी भूरी आंखें आवेग से भरी हुई थीं, उसके ओंठ गुलाब की पंखुड़ियां थे. उससे अधिक सौंदर्य मैंने जीवन में नहीं देखा. मैं एकटक उसके सौंदर्य को देखता रहा. और उसकी आवाज! हैरी, मैंने कभी ऐसी आवाज नहीं सुनी है. जैसे बांसुरी बज रही हो. मैं साइबेल वेन को प्रेम क्योंकर न करूं, हैरी? मैं हर रात उसका नाटक देखने जाता हूं. एक शाम वह रोजालिंड होती है और एक शाम इमोशेन. मैं यह सब तुम्हें न बताता, परंतु तुमने मुझे बुरी तरह प्रभावित किया हुआ है. मैं तुमसे कुछ नहीं छिपा सकता. यदि जीवन में मैंने कोई अपराध किया तो मैं तुम्हारे सामने कबूलने अवश्य आऊंगा." डोरियन ने कहा.

"तुम्हारे जैसे लोग अपराध नहीं करते हैं, डोरियन. अब अच्छे बच्चे की तरह बताओ कि साइबेल से तुम्हारे संबंध कैसे हैं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एकदम पवित्र हैरी!"

"पवित्र वस्तुएं ही स्पर्श योग्य होती हैं डोरियन! प्रेम में व्यक्ति अपने को धोखा देना आरंभ करता है और अंततः दूसरे को ठगता है. इसे विश्व रोमांस कहते हैं. आज रात तुम मेरे साथ खाना खाओ, क्यों?"

"नहीं, आज वह इमोशन है और कल वह जूलियट होगी."

"वह साइबेल कब होती है?"

"कभी नहीं."

"मैं तुम्हें बधाई देता हूं."

"मैं चाहता हूं, किसी शाम तुम और बेसिल उसका अभिनय देखो, तब तुम उसके प्रतिभाशाली व्यक्तित्त्व के कायल होगे. मैं चाहता हूं संसार के मृत प्रेमी हमारी हंसी सुनें और उदास हो जायें. मैं चाहता हूं भावावेश की हर सांस उन प्रेमियों की चेतना में घुसकर दर्द से राख कर दे. अच्छा मैं चलता हूं, इमोशन मेरी प्रतीक्षा कर रही है."

जैसे ही वह गया, लार्ड हैनरी की आंखें चिंतन में डूब गयीं. क्या आवेग है डोरियन के प्रेम में?

"बेसिल संभवतः डोरियन ग्रे की साइबेल से सगाई का समाचार तुम्हें मिल गया होगा." लार्ड हेनरी ने कहा.

"डोरियन ग्रे, विवाह कर रहा है! असंभव!"

"यह एकदम सच है. मेरे विचार से भावावेश में डोरियन इस सुंदरी से विवाह करेगा और छह महीने बाद उकताकर किसी और की ओर आकर्षित होगा. अच्छा अध्ययन रहेगा."

"नहीं, तुम जो कह रहे हो, तुम स्वयं जानते हो, अर्थहीन है. डोरियन ग्रे का बारबार जीवन तुमसे अधिक किसी और को कष्ट नहीं देगा."

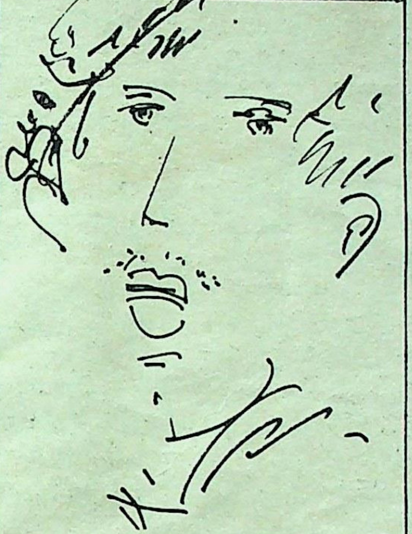

चित्र को देखते ही चित्रकार के होंठों से आश्चर्य मिश्रित भय फूट पड़ा. क्या यह डोरियन ग्रे का ही चित्र है? इसमें थोड़ा-बहुत सौंदर्य बचा है, परंतु कितना भयानक लग रहा है! उसकी आंखें फटी रह गयीं और एक बीमार-सी दृष्टि से उसने डोरियन को देखा.

लार्ड हेनरी हंसा, "दूसरों के बारे में जो हम कारण ढूंढते हैं, वस्तुतः हम स्वयं कहीं उससे डर रहे होते हैं, मैंने जो कुछ कहा सार्थक कहा है."

डोरियन ने आते ही कहा, "मेरे मित्रो, मुझे बधाई दो, बधाई, मैं आज तक इतना प्रसन्न नहीं हुआ हूं. मैं साइबेल से प्रेम करता हूं, असीम प्रेम. मैं उसे स्वर्ग के मंच पर बिठाना चाहता हूं, और देखना चाहता हूं कि सारा संसार उसकी पूजा करे. उसके विश्वास ने मुझे वफादार बना दिया है. हैरी, मैं जब उसके साथ होता हूं तो वह सब भूल जाता हूं, जो तुमने सिखाया है. साइबेल के स्पर्श ने मुझे बदल दिया है, तुम उसका अभिनय, उसे अवश्य देखो."

डोरियन के इस भावावेश को लार्ड हैनरी मूर्खता मान रहा था. उसके अनेक उदाहरणों द्वारा औरत को मात्र एक वस्तु, भोग्य वस्तु के रूप में चित्रित किया, प्रेम को व्यर्थ का भावावेश, परंतु डोरियन तो साइबेल के प्रेम में आकंठ डूबा हुआ था.

बेसिल ने डोरियन से कहा, "तुम्हारा साइबेल से विवाह का सोचना एकदम सही है. मैं स्वीकार करता हूं साइबेल को ईश्वर ने स्वयं बनाया है. उसके बिना अधूरे रहते."

"धन्यवाद बेसिल, मुझे विश्वास था कि तुम मुझे अवश्य समझोगे. हैरी तो सिनिक है, मुझे उसकी बातों से डर लगता है."

साइबेल मंच पर तालियों की गड़गड़ाहट के बीच आयी. निश्चित ही लार्ड हेनरी ने ऐसा सौंदर्य पहले कभी नहीं देखा था. लार्ड हेनरी ने चश्मे से झांकते हुए कहा, "सुंदर, अति सुंदर!"

नाटक आरंभ हुआ, परंतु साइबेल कहीं से परिपक्व नजर नहीं आ रही थी. उसके कारण नाटक डूब रहा था. यहां तक कि अनपढ़ साधारण दर्शकों की रुचि नाटक में नहीं दिखाई दे रही थी. साइबेल कहीं से जुलियट नहीं दिखाई दे रही थी. दूसरा अंक समाप्त होते ही सीटियों की आवाजें हाल में गूंज गयीं. बेसिल और हैरी ने चलने को कहा, परंतु डोरियन ने कहा कि वह पूरा नाटक देखकर जायेगा. "तुम मुझे अकेला छोड़ दो. मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे दिल को टूटते हुए देखो." डोरियन की आवाज कांप रही थी और होंठ थरथरा रहे थे.

जैसे ही नाटक समाप्त हुआ, डोरियन ग्रीन रूम की ओर भागा. साइबेल अकेली खड़ी थी. उसके होंठ रहस्यात्मक मुस्कान फेंक रहे थे. डोरियन को देखकर असीम प्रसन्नता का भाव उसके चेहरे पर आ गया. वह लगभग चीखते हुए बोली, "कितना खराब अभिनय किया मैंने, डोरियन!"

"भयानक, तुमने मेरे प्यार की हत्या कर दी है."

साइबेल ने जवाब नहीं दिया, परंतु आश्चर्य से देखकर हंस दी.

"हां तुमने मेरे प्रेम की हत्या की है. मैं कितना मूर्ख था कि मैंने तुमसे प्रेम किया. अभिनय के बिना तुम मेरे लिये शून्य हो. मैं तुम्हें अलौकिक बनाना चाहता था. संसार तुहारी पूजा करता. अब तुम क्या रह गयी हो, तृतीय श्रेणी की सुंदर अभिनेत्री."

सइबेल पीली पड़ गयी. उसने हाथ थामकर डोरियन की आंखों में झांका. डोरियन ने उसे धकेल दिया, "मुझे मत छुओ."

"मुझे दुत्कारो मत, डोरियन. तुम जैसा कहोगे, मैं करूंगी. मैं मूर्ख थी. मुझे आज रात के लिए क्षमा कर दो. मैं तुम्हें प्यार करती हूं. इस तरह मुझे मत छोड़ो." सुबकियों के आवेश से उसका गला रुंध गया.

"मैं जा रहा हूं. तुमने मुझे निराश किया है. मैं तुमसे फिर कभी नहीं मिल सकता."

साइबेल चुपचाप रोती रही. डोरियन कमरे में उसे अकेला छोड़कर चला गया.

डोरियन ने जैसे ही दरवाजा खोला, उसकी नजर बेसिल द्वारा बनाये गये अपने चित्र पर पड़ गयी. वह आश्चर्य से पीछे हो गया. चित्र के भाव बदले हुए थे, चेहरे पर क्रूरता थी. उसने अपनी आंखें मलीं, चित्र का पास से निरीक्षण किया, जब चित्र बना था, क्रूरता के यह चिह्न चेहरे पर नहीं थे. वह कुर्सी पर धम से पड़ गया. उसके दिमाग में बिजली कौंधी, हां, उसने एक पागल इच्छा बेसिल के स्टूडियो में इस चित्र के सामने की थी. यह पोर्ट्रेट बूढ़ा हो जाये और वह स्वयं वैसे का वैसा ही रहे. उसका सौंदर्य बना रहे और चित्र मनोवेग और पाप के भावों को वहन करे, परंतु यह सब असंभव है, परंतु चित्र पर क्रूरता के चिह्न विद्यमान थे. नहीं, यह भ्रम है. डोरियन चित्र को निरंतर देख रहा था.

सुबह की हवा ने उसके मनोवेग को मद्धम कर दिया. अब वह केवल साइबेल के बारे में सोच रहा था. उसे लगा कि वह साइबेल के प्रति बहुत क्रूर हो गया था. इसमें उस बेचारी का क्या दोष. मैं उससे विवाह करूंगा, परंतु दो दिन बाद अचानक उसे लार्ड हेनरी से पता चला कि साइबेल उसी रात को मर गयी थी. उसे विश्वास नहीं हुआ. लार्ड हेनरी ने बताया कि वह आधी रात को अपने ड्रेसिंग रूम में मृत पायी गयी थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हैरी, मैंने उसे मार दिया. जब उसने खराब अभिनय किया, मेरा दिल तोड़ा तो मैंने उस पर क्रोध किया. वह बहुत रोई, गिड़गिड़ाई, पर मैं नहीं पिघला. अब मैं उसके पास जाना चाहता हूं तो वह मर चुकी है."

"प्रिय डोरियन," लार्ड हेनरी ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा, "अगर तुमने उससे विवाह किया होता तो भी दुखी रहते. बेशक तुम्हारा व्यवहार अच्छा रहता, परंतु शीघ्र ही उसे पता चलता कि तुम्हें उससे लगाव नहीं रहा. ऐसे में औरत भिन्न हो जाती है."

"हैरी, ऐसा क्यों है कि मैं उससे इतना प्यार करता था, परंतु इस त्रासदी को अनुभूत नहीं कर पा रहा हूं. क्या मैं पत्थर दिल हो गया हूं."

"नहीं, तुम्हारे लिए जीवन में अभी बहुत कुछ शेष है. तुम्हारा आकर्षक सौंदर्यपूर्ण व्यक्तित्त्व बहुत कुछ कर सकता है."

"परंतु हैरी, मैं झुर्रियोंदार चेहरेवाला बूढ़ा हो गया, तब?"

"तब तुम्हें अपनी विजय के लिए संघर्ष करना पड़ेगा, डोरियन?"

जैसे ही लार्ड हेनरी गया, डोरियन अपने चित्र के सामने खड़ा हो गया. चित्र ने साइबेल के मृत्यु के समाचार को पहले ही चेहरे पर ग्रहण कर लिया था. उसे आशा बंध गयी थी कि भविष्य में इस चेहरे पर वह और बदलाव देख सकेगा. पोर्ट्रेट उसके लिए जादुई शीशे का काम करेगा. उसका शरीर उसके साथ है, उसकी आत्मा चित्र में है. उसके जीवन की एक भी धड़कन कम नहीं होगी. वह वैसा ही रहेगा, चित्र में कोई भी बदलाव आये, उसे क्या फर्क पड़ता है.

"डोरियन तुम कहां थे, मैं तुम्हें ढूंढ़ रहा था." बेसिल ने कहा.

"मैं ओपेरा में था, हैरी की बहन लेडी गवेंडोलन के साथ."

"तुम ओपेरा गये थे, साइबेल की मृत्यु के बावजूद." बेसिल ने आश्चर्य से कहा.

"हां, हां. और तुम मुझसे कोई ऐसी बात नहीं करोगे, जो बीत चुकी है." डोरियन चीखा.

"डोरियन तुम कितने भयानक रूप से बदल गये हो. यह हैरी का प्रभाव है. मैं उस डोरियन ग्रे को वापस चाहता हूं, जिसे मैंने चित्र में अंकित किया था." चित्रकार उदास होकर बोला.

"मैं वह चित्र देखना चाहता हूं, तुमने उसे पर्दे के पीछे क्यों छिपा रखा है. पर्दा हटाओ."

"नहीं बेसिल, तुम चित्र नहीं देखोगे." एक चीख के साथ डोरियन बेसिल और पर्दे के बीच में आ गया. वह कांप रहा था. बेसिल ने डोरियन को पहले कभी इस रूप में नहीं देखा था.

"बैठो डोरियन, बस मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो. क्या तुमने चित्र में कुछ विलक्षण देखा है? कुछ ऐसा विलक्षण, जो पहले तुम्हारी नजर में नहीं था. अचानक तुम्हारे सामने आ गया."

"बेसिल." डोरियन चीखा. उसने कांपते हाथों से कुरसी को जोर से पकड़ा हुआ था.

"इसका मतलब, तुमने कुछ विलक्षण देखा है. डोरियन, जब पहली बार मैं तुमसे मिला, तुम्हारे असाधारण व्यक्तित्त्व से प्रभावित रहा हूं. मैं तुम्हारी पूजा करता हूं. जब तुम औरों से बात करते तो मुझे ईर्ष्या होती. मैं तुम्हें सिर्फ अपने लिए संपूर्ण रूप में चाहता था. जब तुम दूर होते तो मेरी कला में जीवित रहते. यह सोचना गलत है कि सृजन का आवेग कृति में प्रकट हो पाता है. जैसा मैंने हैरी से कहा था, मैं तुम्हारी पूजा करता हूं. मैं समझ गया कि तुम्हारे पोर्ट्रेट का प्रदर्शन क्यों नहीं हो सकता है. मैं स्वयं भी नहीं चाहता हूं. तुम केवल मेरे लिए हो."

डोरियन ने यह सुनकर संतोष की सांस ली. खतरा टल गया था. डोरियन को चित्रकार पर दया-सी आ रही थी. वह उसे पूजता है. जैसे ही बेसिल गया, डोरियन के चेहरे पर मुस्कराहट की रेखा खिंच गयी. अचानक उसे लगा कि इस पोर्ट्रेट को छिपाना ही पड़ेगा. उसने बड़ी सावधानी के साथ प्रसिद्ध फ्रेम बनाने वाले मिस्टर हर्बर्ड के साथ मिलकर चुपचाप, वर्षों से बंद धूल भरे कमरे में रख दिया.

प्रति घंटे, प्रति सप्ताह चित्र बूढ़ा हो रहा था. पाप के चिह्नों को चेहरे पर लाने से चित्र चाहे अपने आपको बचा सकता था परंतु, उम्र नहीं छिप सकती थी. गाल पिचक जायेंगे, झुर्रियां पड़ जायेंगी, हाथों की नीली नसें उभर आयेंगी, बालों की चमक गायब हो जायेगी. डोरियन को शैशव में देखे अपने दादाजी की याद हो आयी, परंतु उसका अपना चेहरा तो वैसा ही आकर्षक सौंदर्य से युक्त है. वह धीरे-धीरे अपने सौंदर्य पर स्वयं मुग्ध होने लगा है और अपनी आत्मा को भ्रष्ट करना उसे रुचिकर लगने लगा है. उसने उस अकेले कमरे में, जहां उसका शैशव बीता था, चित्र को स्वयं टांग दिया.

अब उसे चित्र से अलग होना अच्छा नहीं लगता है. वह घंटों कमरे में बैठा चित्र में होनेवाले परिवर्तनों को निहारता रहता है. उसमें एक डर समा गया है कि कहीं इस चित्र को कोई चुरा न ले. संसार उसके समस्त रहस्यों को जान लेगा. उसे लगता कि सब उसे संदेह की दृष्टि से देख रहे हैं.

वह एक नवंबर का दिन था. उसके अड़तीसवें जन्मदिन की पूर्व संध्या. डोरियन लार्ड हेनरी के घर से खाना खाकर रात ग्यारह बजे लौट रहा था. रास्ते में उसने बेसिल को देखा, और कांप गया. डोरियन उसकी तरफ न देखते हुए तेजी से आगे बढ़ा पर बेसिल ने उसे पहचान लिया.

"डोरियन मैं नौ बजे से तुम्हारे पुस्तकालय में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था. बहुत देर हो गयी तो मैं तुम्हारे नौकर से कहकर चला आया. मैं अर्द्धरात्रि की गाड़ी से पेरिस जा रहा हूं. अभी एक घंटे का समय है, चलो बैठते हैं."

दोनों पुस्तकालय में पहुंच गये.

"अन्यथा मत लेना, और वैसे भी तुम्हारे लिये यह जानना जरूरी है, जानते हो लोग तुम्हारे बारे में क्या-क्या बातें करते हैं."

"मैं दूसरों के प्रेम किस्से सुनने में रुचि रखता हूं. मेरे बारे में लोग क्या कहते हैं, मुझे कोई रुचि नहीं. उनमें कोई नवीनता नहीं होती है." डोरियन ने कहा.

"परंतु तुम्हें उनमें रुचि लेनी चाहिए. हर अच्छा व्यक्ति अपने नाम के साथ जुड़ी अच्छाई की आकांक्षा करता है, डोरियन, ऐसा क्यों है कि ड्यूक आफ बेरविक जैसा व्यक्ति तुम्हारे आते ही क्लब से उठकर चला जाता है. ऐसा क्यों है कि लंदन के अनेक सभ्य लोग न तुम्हें बुलाना पसंद करते हैं और न तुम्हारे पास आना पसंद करते हैं. अनेक ऐसे लोग हैं जो तुम्हारे आत्मीय बने, जिन्हें या तो शहर छोड़ना पड़ा था या वह मारे गये."

"बस, बहुत हो गया बेसिल! तुम जानना चाहते हो कि ड्यूक मेरे आते ही क्लब छोड़कर क्यों चला जाता है, क्योंकि मैं उसके जीवन के बारे में सब कुछ जानता हूं. उसकी रगों में जो खून है, उससे उसका अतीत स्वच्छ नहीं हो सकता. जानते हो, ऐसे लोग किस प्रकार का जीवन व्यतीत करते हैं. ये सब हिप्पोक्रेट हैं."

"प्रश्न यह नहीं है डोरियन, अंग्रेजी समाज गलत है, इसलिये तो मैं चाहता हूं कि तुम अच्छे बनो. ऐसा बनो कि लोग तुम्हारा सम्मान करें. बुराई की ओर नहीं अच्छाई की ओर बढ़ो, लोग तुम्हारे बारे में बहुत कुछ कहते हैं, मेरे एक अच्छे मित्र ने ही कहा, परंतु मैंने उससे कहा कि मैं डोरियन को अच्छी तरह जानता हूं, पर सोचता हूं कि क्या मैं तुम्हें जानता हूं? बिना तुम्हारी आत्मा को जाने मैं ऐसा दावा कैसे कर सकता हूं? परंतु, आत्मा को देखना तो ईश्वर ही संभाव्य बना सकता है."

एक अट्टहास कमरे में गूंज गया. "तुम मेरी आत्मा देखना चाहते हो, मैं तुम्हें दिखाऊंगा. आओ देखो, यह तुम्हारे ही हाथों का कमाल है. तुमने मेरे भ्रष्ट आचरण के बारे में बहुत कुछ कहा है, अब उसे आमने-सामने देखोगे." डोरियन के शब्दों में एक पागलपन था. वह उसे उस कमरे में ले गया, "तुम कहते हो कि केवल ईश्वर ही आत्मा को देख सकता है. लो पर्दा हटाओ और स्वयं आत्मा को देख लो. तुम पर्दा नहीं हटाते, लो मैं हटा देता हूं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तलाक

—कैलाश सतभैया

अदालत में बहुत भीड़ थी. आज तलाक के केस का निर्णय होना था. जज साहब ने एक नजर पति-पत्नी को देखा, "तुम लोग एक बार और सोच लो. ऐसा न हो कि बाद में तुम लोगों को पछताना पड़े. वैसे निर्णय, तुम्हारे पक्ष में हो रहा है. मात्र औपचारिकता शेष रह गयी है."

जवाब में पति-पत्नी खामोश रहे. मानों दोनों ही तलाक के लिए मौन स्वीकृति दे रहे हों. उनका छह वर्षीय बेटा पास ही खड़ा था. कभी वह अपने मम्मी-डैडी को देखता, तो कभी अदालत में बैठे लोगों को. वह बहुत आतंकित था.

"तुम्हारा तलाक मंजूर किया जाता है. बेटे को अपने पास कौन रखेगा?"

"रमा! बंटी को तुम अपने ही पास रख लो. मैं इसका पूरा खर्च दूंगा."

"नहीं, बंटी को तुम अपने ही पास रखो." पत्नी ने निर्णायक स्वर में कहा.

अदालत में खामोशी छा गयी. सभी एक क्षण के लिए अवाक् रह गये. घृणा और क्रोध से सभी के चेहरे खिंच गये. सभी आश्चर्य चकित हो इस कलयुगी पति-पत्नी को देख रहे थे. बंटी जज साहब के पास जाने के लिए बढ़ा ही था कि उसे ठोकर लगी. उसे सम्हालने के लिए जैसे ही उसकी मां ने उठाना चाहा तो वह चीख पड़ा, "मत छुओ मुझे. मैं तुम लोगों की शक्ल भी नहीं देखना चाहता!" वह चलता हुआ जज साहब के पास पहुंचा. सभी खामोश हो उस बच्चे को देख रहे थे.

"सर, मुझे अनाथालय भिजवा दीजिये," कहकर वह फूट-फूटकर रो पड़ा. □

चित्र को देखते ही चित्रकार के होंठों से आश्चर्य मिश्रित भय फूट पड़ा. क्या यह डोरियन ग्रे का ही चित्र है! इसमें थोड़ा बहुत सौंदर्य बचा है, परंतु कितना भयानक लग रहा है, परंतु ऐसा किसने कर दिया. उसने चित्र के बायें कोने पर मोमबत्ती के प्रकाश में देखा, उसका अपना नाम ही अंकित था. उसकी आंखें फटी रह गयीं और एक बीमार-सी दृष्टि से उसने डोरियन को देखा. उसकी आंखों में न दुख था, न सुख. एक आवेग था, बस.

"इस सबका क्या अर्थ है डोरियन?"

"बेसिल, वर्षों पहले, जब मैं लड़कपन में था, तुम मिले, तुमने मेरी खूबसूरती की प्रशंसा की. मैं आत्मविमोहित हो गया. तुमने लार्ड हेनरी से मिलवाया, जिसने युवा-जगत के आश्चर्यजनक सौंदर्य से मेरा परिचय करवाया. तुम्हें याद होगा, एक पागल क्षण में मैंने इच्छा की थी कि. . ."

"मुझे याद है. परंतु डोरियन, हेनरी की शिक्षा को भूल जाओ, प्रार्थना करो, अब भी देर नहीं हुई है. अब भी तुम अपने पुण्य से अपने पाप नष्ट कर सकते हो."

"नहीं, इन बातों का अब कोई मतलब नहीं." डोरियन ने बेसिल की ओर देखा, एक जंगली जानवर का आवेश डोरियन की आंखों से झांक रहा था. उसने चाकू लेकर बेसिल की नाड़ियों में घुसा दिया. डोरियन लगातार चाकू घोंप रहा था, जिस मित्र ने उसके पोर्ट्रेट को बनाकर एक रहस्यात्मक जीवन पैदा कर दिया था, वह समाप्त हो चुका था. डोरियन के लिए इतना पर्याप्त था.

डोरियन ने एलेन नामक वैज्ञानिक को विवश करके बेसिल का शरीर विभिन्न रसायनों से वहीं नष्ट करवा दिया.

कहते हैं कि मनोवेग व्यक्ति को एक वृत्त में सोचने को बाध्य करता है. हर क्षण डोरियन का मस्तिष्क एक ही विचार के गिर्द घूमता—एक भयानक खौफनाक व्यक्तित्व को जीवित रखना. कुरूपता, जो एक समय उसे घृणास्वरूप लगती थी, अब रुचिकर लगने लगी थी, क्योंकि यही उसके लिए वास्तविकता थी.

डोरियन काफी दिन घर में बंद रहा. इस बीच पीछा किये जाने, किसी जाल में फंसने की आशंका उसे निरंतर भयभीत कर रही थी. मृत्यु का एक भय उसके इर्द-गिर्द घिरता जा रहा था. सूखे पीले पत्ते उसे अपने व्यर्थपूर्ण जीवन का संकेत देते थे. युवा चेहरे का मास्क उसे बचा रहा था, परंतु कब तक? अपराध की छाया उसके जीवन को क्या बना देगी? किस भावावेश में उसने अपने मित्र की हत्या कर दी थी.

डोरियन ने जब लार्ड हेनरी के सामने प्रश्न रखा, "यदि मैं कहूं कि मैंने बेसिल की हत्या की है?"

लार्ड हेनरी ने लापरवाही से कहा, "तुम्हारे जैसा व्यक्तित्व हत्या कर ही नहीं सकता. यह छोटे लोगों का कार्य है."

डोरियन के चेहरे को देखकर उसके अपराधी व्यक्तित्व को कोई सोच ही नहीं पाता है, यह विचार उसे निरंतर प्रताड़ित कर रहा था. आह! मनोवेग और गर्व के किस विकराल क्षण में उसने कामना की थी कि उसका पोर्ट्रेट उसके बीतते वर्षों के चिह्न अंकित करे और वह वैसा ही युवक रहे. . .

अब अतीत के बारे में सोचना व्यर्थ है. उसका युवा चेहरा उसका शत्रु बन चुका है. अतीत उसे निरंतर प्रताड़ित कर रहा है. अपनी आत्मा की जीवंत हत्या ने उसे निरंतर परेशान कर रखा है. यह सब इस चित्र के कारण ही है. इस चित्र ने ही उसका जीवन बरबाद कर दिया है. अब वो जीवन में अच्छे कार्य करेगा.

हां, वह अच्छा बनेगा. उसे लगा जैसे एक बड़ा बोझ उतर गया हो. उसने मोमबत्ती पकड़ी और कमरे की ओर चल दिया. उसने पोर्ट्रेट से पर्दा खींच दिया. चित्र वैसा ही था. उसमें अच्छाई का कोई चिह्न नहीं था. चित्र पर पड़ा लाल धब्बा बड़ा हो चुका था. क्या वह जीवन भर एक हत्यारे का जीवन जीता रहेगा? नहीं, उसके हत्यारे जीवन का प्रमाण यही चित्र है, उसे वह नष्ट कर देगा. उसने आसपास देखा. उसके हाथ वही चाकू लगा, जिससे उसने चित्रकार बेसिल की हत्या की थी. वह इसी हथियार से चित्रकार की कृति की हत्या कर देगा. उसने चित्र को छुरा भोंक दिया.

एक भयानक चीख वातावरण में गूंज गयी. डोरियन के सेवक भय से जाग उठे. पास से गुजरते हुए दो व्यक्ति रुक गये. उन्होंने पुलिस के एक आदमी को सूचना दी. कमरे में बत्ती जली हुई थी.

"यह किसका घर है?" पुलिसवाले ने पूछा.

"डोरियन का." व्यक्ति ने उत्तर दिया.

सबने दरवाजा खटखटाया, पर उत्तर नहीं मिला. तब छत से कूदकर खिड़की के सहारे उन्होंने दरवाजा खोला. सेवक जब अंदर घुसे, उन्होंने देखा, दीवार पर उनके स्वामी का आकर्षक सौंदर्यपूर्ण चित्र लटक रहा था. जमीन पर मृत व्यक्ति पड़ा था, उसके हृदय में छुरा घुसा हुआ था. मृत व्यक्ति का चेहरा झुर्रियों से भरा था, कुम्हलाया हुआ था. जब तक सेवकों ने अंगूठी नहीं देख ली, तब तक पहचान नहीं पाये कि वह व्यक्ति कौन था. □

उपन्यास का संक्षिप्त रूपांतर . प्रेम जनमेजय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर प्रेमियों के प्रेम-संबंधों के भावावेग का रहस्य—

धरती बरसात मांगती है

रमेश बत्तरा

कल्पना कीजिए, हीर-रांझा, सोनी-महीवाल, लैला-मजनू, शीरी-फरिहाद, रोमियो-जूलियट आदि हमारे यह प्रेम और पूजा के युगल पात्र अगर बिछुड़ जाने की अपेक्षा मिल गये होते या इनका विवाह हो जाता तो क्या हमारा इतिहास प्रेम की महान गाथाओं से रिक्त रह जाता? या फिर इस संदंभ में सारी दुनिया किसको आदर्श मानती. क्या युवक-युवतियां एक ही नजर में परस्पर न्योछावर होना छोड़ देते? क्या यह भी संभव था कि 'पहली नजर का प्यार' आदि जैसे मुहावरों, रूपकों या बिंबों का हमारी भाषा में कोई जिक्र ही न होता?

शुक्र है कि हमारी संस्कृति पर ऐसा कोई पहाड़ नहीं टूटा, मगर यह जरूर हुआ है कि प्रेम में कुछ कर गुजरनेवाले लोग आज चिराग लेकर ढूंढने पर भी नहीं मिलते. आज का आदर्श है—जान है, जहान है! . . —और भी गम हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा! . . . . या —मुझसे पहले-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग! . . . . . इन सब बातों के अपने तर्क हैं, दुनियादारी है, समझ है, सहजता है, फिर भी क्या वजह है कि अब कोई भी शाहजहां मुमताज के लिए ताजमहल खड़ा करने की कल्पना नहीं करता? . . . . . कोई रजिया अपने गुलाम प्रेमी के लिए ताज छोड़ने का हौसला नहीं करती! . . . कोई मीरा, कृष्ण के लिए जोगिन नहीं होती! . . .

'मैंने सांप का बहाना मारा, डसा तो इश्क ने था?'—न इस शैली के लोकगीत रहे हैं और न ही बातें कि—आग के बिना धुआं कहां!

वक्त बदलता है, सब कुछ बदलता है. मगर प्रेम एक ऐसी उदात्त भावना है, जो शाश्वत है. प्रेम का भावावेग सृष्टि के प्रथम स्त्री-पुरुष में भी था और अंतिम स्त्री-पुरुष में भी रहेगा. फिर क्या कारण है कि सहसा इस भावावेग की दिशा ही कुछ और हो गयी तथा इसके कार्य व्यवहार में जमीन-आसमान का अंतर समा गया? वह कौन-सा आकर्षण था जिसने उपरोक्त प्रेमी-युगलों को अनेक किस्सों का नायक बना दिया और आज हमें अपने-आप पर संदेह होने लगा है हम प्रेम के आवेग को भली-भांति समझते भी हैं या नहीं! इस संदर्भ में पंजाबी के नामी कवि पाश की एक कविता है:—**प्यार करना और जीना उन्हें कभी नहीं आयेगा / जिन्हें जिंदगी ने बनिया बना दिया . . . . . तुम यह सब कुछ भूल जाना मेरी दोस्त / सिवाय इसके / कि मुझे जीने की बहुत चाह थी / कि मैं गले-गले तक जिंदगी में डूबना चाहता था. . . . . . .**

यही सच है, जो लोग जिंदगी को बड़ी शिद्दत और शौक के साथ जीना चाहते हैं, वे लोग इसमें कोई भी कमी सहन नहीं कर पाते और उसी शिद्दत तथा शौक से जान पर खेल जाते हैं. इन प्रेमी युगलों के मन जीने की अथाह चाहत से भरपूर थे. यही कारण है कि ये फना होने के बावजूद संसार की स्मृति में अमर हो गये.

मगर जीने की इच्छा तो आज भी मौजूद है और ऐसा भी नहीं कि प्रेमी-युगलों की परंपरा समाप्त हो गयी हो, बल्कि प्रेम की इस संसिद्धी का विकास हुआ है. फिर भी इनके किस्से नहीं बनते. कभी-कभार अखबार में किसी प्रेमी युगल अथवा प्रेमी या प्रेमिका का कोई ऐसा दुखांत छप जाता है और अगले रोज अखबार की तरह ही बासी हो जाता है.

इस कार्यव्यवहार को गौर से परखने की जरूरत है. प्रेम का भावावेग समांतर पटरियों पर चलनेवाली गाड़ी के दो पहियों की समान साझेदारी का मोहताज़ नहीं, वह अपने-आप में संपन्न और संपूर्ण है, फिर भी अकेला और अपनी एकाकी भंगिमा के बावजूद किसी से पूर्ण लगाव के साथ जुड़ा हुआ. प्रेम का यही विरोधाभास प्रेमियों की परीक्षा लेता है और जो इसकी कसौटी पर खरे उतरते हैं वे नायक बन जाते हैं.

इसी विरोधाभास के चलते नायक कल भी बनते थे और आज भी बन रहे हैं. किस्से कल भी बनते थे और आज भी बन रहे हैं. फर्क इतना आया है कि पहले ये किस्से नायक-नायिका के मिलन से पहले बन जाते थे, अब मिलन के बाद बनने लगे हैं जैसे कि तलाक या दहेज की मांग या हत्या आदि के रोमांचपूर्ण किस्से गली-गली में सुनायी देते हैं.

दरअसल, प्रेम का आवेग किसी रुकावट को स्वीकार नहीं कर पाता. लैला-मजनू आदि इन प्रेमी युगलों का युग पर्दे का युग था. नारी किसी भी संबंध के तहत पुरुष की संपति थी. ऊंच-नीच, जात-पात, अमीर-गरीब की खाइयां अपनी रूढ़ियों समेत चौड़ी होती जा रही थीं. पुरुष को समाज में निरंतर अवांछित हैसियत प्राप्त होती जा रही थी. ऐसे में कोई पिता या भाई कतई सहन नहीं कर सकता था कि किसी गैरजातिवाला, गरीब या अन्य गांववाला कोई युवक उनकी बेटी पर जान न्योछावर करे या उनकी बेटी उस युवक को स्वप्न तक में भी देखें. सामाजिक बंधनों और आडंबरों का अंबार था—जिगर साहब के अंदाज में—एक आग का दरिया था और डूब के जाना होता था. बस, जो इस आग में डूब गये, वे तपकर सोना हो गये और जो घबरा गये वे मिट्टी के साथ मिट्टी!

समय बदला. दरिया आग का न रहकर, पानी का हो गया और इसमें नाव और जहाज चलने लगे. सामाजिक बंधन ढीले पड़ते गये. रूढ़ियां बिखर गयीं. प्रेमी-युगल ऐसे या वैसे विवाह की मंजिले-मकसूद पर पहुंचते गये. समाज भौतिकवादी होता चला गया और गृहस्थी संभालने में रुकावटें आने लगी. किस्से बनने लगे—कहीं तलाक होने लगा, कहीं हत्या, कहीं सामूहिक आत्महत्या तो कहीं अत्याचार. जीने की चाहना और प्रेम के भावावेग ने किसी को वेश्या बना दिया, किसी को रखैल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह कौन-सी वजह थी कि जिसकी वजह से हीर-रांझा, सोनी-महीवाल, रोमियो-जूलियट आदि प्रेमी-युगल युगों-युगों तक याद किये जाते रहेंगे? प्रेम का वह कौन-सा आवेग है जो किसी को नायक बना देता है और किसी को खलनायक? प्रेम का वह कौन-सा प्रारूप है जो अपने-आप में जंजाल भी है और जांनिसार भी?—दुनियावी विरोधाभासों में पनपे प्रेमी-युगलों के भावात्मक लगाव को रेखांकित करता हुआ आलेख कि जो प्रेमी-युगल अपने जीवन में फना हो गये, वे जनजीवन में अमर कैसे होते चले गये निरंतर!

तो किसी को एकला चलने-वाला संघर्षशील व्यक्ति, किसी को भिखारी, किसी को शराबी, किसी को वैरागी तो किसी को लिखारी. इन स्त्री-पुरुषों की कहानियां हमारे लेखकों ने एक बार नहीं, अनेक बार अनेक प्रकार से अंकित की हैं. बस, फर्क पड़ा तो यह कि इन पात्रों का नाम अमर नहीं हो पाया, क्योंकि वे एक व्यक्ति के रूप में चित्रित नहीं हुए बल्कि इन्हें सामाजिक त्रासदी के स्तर पर रेखांकित किया गया.

प्रेम और विवाह के बंधे-बंधाये और अंधे नियमों के शिकंजे को तोड़ने का मूल श्रेय इन्हें नहीं बल्कि उन विख्यात प्रेमी-युगलों को जाता है. जिन्होंने इस ढांचे को उस वक्त चुनौति दी जबकि व्यक्ति, व्यक्ति नहीं, आडंबरों का पुतला होता था. बेशक वे खुद नहीं रहे, पर अंतत: उस पुतले में छोटी या बड़ी दरार ज़रूर डाल गये.

कई बार व्यक्ति के जीवन पर घटनाओं का भी गहरा प्रभाव पड़ता है. कई बार शराबी का बेटा, देखा गया है कि शराब से नफरत करता है और भावावेश में तमाम शराब पीनेवालों को गाली देता है. पौराणिक युग की एक कथा है:—

एक राजा था. वीर, धीर, न्यायप्रिय और उदार. वह अपने-आप में वचनबद्ध था कि जिस दिन उसके राज में कोई भूखा सोयेगा उस दिन वह राज-पाट त्याग देगा. वहां कई बार कई लोग भूखे सोये, पर राजा ने राज-पाट नहीं छोड़ा. हां, वह व्यक्ति भूखा न सोये इसका प्रबंध जरूर कर दिया. एक बार उसके दरबार में एक महात्मा आये. राजा ने उनकी खूब आवभगत की. महात्मा ने प्रसन्न होकर राजा को एक फल दिया और कहा, "इसे खाकर तुम चिरयुवा हो जाओगे."

राजा ने सोचा, मैं यह फल खाकर क्या करूंगा..... रानी को देता हूं, वह हमेशा अपनी युवावस्था को याद करती रहती है. सो, राजा ने वह फल रानी को दे दिया. तब रानी ने वह फल अपने परम मित्र कोतवाल को दे दिया और कोतवाल ने अपनी प्रिय वेश्या को! .....वेश्या ने सोचा, वेश्या का जीवन ही जीना है..... क्या करूंगी चिरयुवा होकर....वह सीधी दरबार में गयी और वह फल राजा के चरणों में अर्पित कर दिया.

आखिर रहस्य खुल गया. राजा ने किसी को कुछ नहीं कहा और रातो-रात राज-पाट छोड़कर जंगलों की तरफ निकल गया.

इस तरह जो काम व्यक्ति वास्तव में नहीं करना चाहता, अचानक घटनाक्रम उससे वही कुछ करवा देता है. हजारहा किस्सों में दर्ज उन प्रेमियों के निजी जीवन में क्या कुछ जमा-घटा हुआ, यह शोध का विषय हो सकता है, पर उनका दुखांत उनके उदात्त चरित्र को अवश्य उजागर करता है. प्रेम का तात्पर्य उनके लिए आंखें चार करना नहीं रहा, बल्कि आंखों से दिल में उतर जाने के तहत दो जिस्म और एक जान हो जाने में रहा. प्रेमी ने प्रेमिका को अपनी उपलब्धि नहीं माना और प्रेमिका ने प्रेमी को. उन्होंने अपने मन में जागृत हुए एक-दूसरे के प्रति प्रेम के भावावेग को ही उपलब्धि माना, जहां आकर मिलन या विछोह में कोई मूलभूत अंतर नहीं रह जाता, जहां आकर मन सिर्फ यही सोचता है कि मेरी मौत मेरे प्रेमी की मौत है!... कि मुझे उसके लिए जीना है... कि वह है तो मैं हूं... वरना नहीं हूं!...

स्त्री और पुरुष की सामाजिक स्थिति आज भी समान नहीं है, सस्सी-पुन्नू के जमाने में तो हालत ही क्या रही होगी. मगर उन प्रेमियों ने उस युग में भी बाकायदा जतला दिया कि प्रेमी-प्रेमिका यानी स्त्री-पुरुष बाकायदा बराबरी का दर्जा रखते हैं, मगर जो लोग इस तरह से जीना चाहते हैं उन्हें जीने नहीं दिया जा रहा. उनमें जीने की कितनी उत्कट इच्छा थी, इसका एक उदाहरण मिरजा-साहिबा की गाथा में देखा जा सकता है—

हट्टी सड़े सियाल दी, जित्थे दीवा नित्त बले,
कुत्ती मरे किराड़ दी, जेहड़ी कौं-कौं नित्त करे,
गलियां होवण सुंजियां ते मिरजा यार फिरे!

(सियाल की दूकान जल जाये जहां हमेशा दीया जलता रहता है, किराड़ की कुतिया मर जाये, जो हर वक्त भौंकती रहती है. गलियां वीरान हो जायें और वहां मिरजा यार भटकता फिरे)

जीवन की यह भटकन उनका भटकाव नहीं, पड़ाव था, एक व्यवस्था थी जिसमें से वे जीवन की लौ तलाश करना चाहते थे. प्रेम की इस लौ को शिवकुमार बटालवी ने हीर के माध्यम से व्यक्त किया है. वह अपनी मां से कहती है, **"मां, मेरे नयनों के नेत्र बिंदुओं में विरह की रड़क उठती है!"** और उसके बाद सहसा मानो रांझा पुकार उठता है— **"भट्ठी वालिए, पीड़ां दा पराग भुन दे!"** —भड़भूंजन मक्की भूनती है, चावल भूनती है, चना भूनती है, गेहूं भूनती है. पर रांझा कहता है— मुझे दर्द और पीड़ा का अंबार भूनकर दे दे!

इन प्रेमियों ने दर्द और पीड़ा के अंबार को अपना सुख माना, ठीक इस धरती की तरह जिसने उन्हें परवान चढ़ाया. उन्होंने धरती को ही अपना आदर्श बना लिया... धरती, जिसकी गोद में अथाह जलराशि है, मगर वह हमेशा प्यासी रहती है...हमेशा बरसात मांगती है.

यह बरसात की प्यास ही तो है जो धरती को 'मां' का दर्जा दे जाती है और प्रेमियों को 'महानता' का. ◻

भावावेग और हम

प्रेम को अगर प्रेमी-प्रेमिका संदर्भ में ही न लिया जाये तो भावावेग के क्षण हमारे सामान्य जीवन में भी आते रहते हैं. हम राह चलते कभी किसी व्यक्ति को देखते हैं तो मुंह-सा बना लेते हैं, और कभी किसी व्यक्ति को देखकर एकदम प्रसन्न हो जाते हैं, जबकि उन दोनों से हमारा कोई रिश्ता नहीं होता. हमने उनसे न कुछ लेना होता है, न देना.

लड़कियों से छेड़छाड़ हमारे यहां एक आम बात है. यहां तक कि यह प्रायः भयावह भी हो उठती है. पर इस संदर्भ में इस मानसिक रोग से पीड़ित लोग भी कई बार लड़की का चेहरा देखकर पीछे हट जाते हैं, मानो वह सुंदर नहीं है तो उसका कोई अधिकार नहीं कि उसे छेड़ा जाये! मगर दूसरा व्यक्ति उस लड़की को भी छेड़ने से बाज नहीं आता.

तात्पर्य यह कि भावावेग वस्तुतः कोई ऐसा भाव नहीं, जो हमारे जीवन में कभी-कभी ही उजागर होता हो. यह तो हमारे जिस्म का एक हिस्सा है, जो व्यक्तिगत पसंद के आधार पर व्यवहार करता है. पसंद अगर सुरुचिपूर्ण एवं सामाजिक हो तो भावावेग रचनात्मक रूप धारण कर लेता है और भदेस हो तो वह किसी का अहित करे या न करे, सामाजिक जीवन का अहित जरूर करता है. ◻

—र. ब.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी आत्महत्या करेगा

• राजकुमार गौतम

...और आदमी नहीं, एक बेहतर आदमी की आत्मा मरेगी. इस देश की राजधानी के ऐन दिल में. हां, उसकी आत्महत्या जो इस देश का आदमी है और नागरिक भी. वह मौलिक आदमी जो अपने देश को प्यार करता है, देश के हर एक जश्न में शामिल होता रहा है और हर कमजोरी को, अप्रत्यक्ष रूप से, सहन करता रहा है. ऐसा श्रेष्ठ और सज्जन आदमी मर जायेगा और जिंदगी के खिलाफ गलत चुनाव की एक गलत परंपरा डाल जायेगा.

निश्चित रूप से लोग उसे नहीं पहचानेंगे. आदमी की इस बहादुरी से घृणा करेंगे. उसकी लड़ाई को व्यक्तिनिष्ठ और भयावह कहकर थाने-कचहरी तक ले जायेंगे और दोस्त लोग अपनी उत्पादित दोस्ती को फिर कछुए की गर्दन की तरह सिकोड़ लेंगे. मरने के बाद भी आदमी अकेला रह जायेगा. असल में अकेलेपन की इस लगातार उपस्थिति को खत्म कर डालने के लिए ही तो आदमी खुद को मार डालेगा.

आदमी बहुत दिनों से अकेला ही है.

जीसस और गांधी के अकेलेपन को भी ढूंढ ही लिया गया था. वह उस अकेलेपन का ही इलाका था—जहां खड़े होकर वे दूसरे लोगों की इजाजत लिये बगैर चले गये थे. लेकिन वह अकेलापन भी सम्माननीय था. उस सम्मान की दरकार इस आदमी को नहीं है. हालांकि दरकार होनी चाहिए थी. लेकिन एक जरूरी बात की दरकार होना तक असंभव लगने लगे तो आदमी क्या कर सकता है! अपने बहुत भीतर और एकदम बाहर की चल रही अनवरत लड़ाई की झंकार सुनता और उसे झेलता हुआ आदमी वाकई क्या कर सकता है?

यह लड़ाई ही मूलत: आदमी के अकेला हो जाने की बारीक लड़ाई है. किसी अकेली व बहुत खूबसूरत सत्ता का वरण करने की इच्छुक इच्छा. जहां यह इच्छा पूरी नहीं हो पाती है, वहां आदमी में एक विशेष किस्म की जूठी भावुकता रच-बस जाती है और जिंदगी की धमनियों के बीच जीने के पक्ष में आदमी की उठी हुई बाजू का चारित्रिक-पतन हो जाता है. अफसोस और समुद्रभर खेद कि आदमी जिंदगी से मानसिक संबंध स्थापित करता है कि अकेला हो जाता है; धर्म के पास पहुंचता है तो अकेला होना पड़ता है और राजनीति का दर्द दिल में संजोने जाता है तो वहां सारी लड़ाई ही अकेले ही रह जाने के बेईमान-बिंदु पर पड़ाव डाल लेती है.

लेकिन ये सब आदमी के आत्मीय दर्द नहीं हैं. इन दर्दों से इतिहास पटा पड़ा है और आगत इतिहास का गर्भाधान 'अकेले-होते-हुए-भी-अकेले-नहीं' का आभास देते भ्रमरूपी शुक्राणुओं के ही जरिये होगा. संस्कृति से लिपे-पुते इस विराट देश में अकेलेपन की इस नैतिकता का किसे पता नहीं होगा.

आदमी इस उम्र तक आते-आते इस अकेलेपन की तपिश को पहचान गया है. सांस्कृतिक संपन्नता के बावजूद अकेलेपन का तनाव अर्जित करते जाने का नाम है—इस देश की नागरिकता! धर्म के जरिए संस्कृति आदमी को भौतिकता से पीछे खींचती है. वैराग्य में आदमी के इस अकेलेपन का सच्चा स्वागत है. नागरिक में तबदील हो जाने के बाद आदमी के जीवन की अनिश्चितताएं उसकी कप्तान बन जाती हैं.

नवजात शिशु जो हवा में हाथ फेंक-फेंककर शून्य से बातें करता है, अपना अकेलापन तोड़ देने को मजबूर कर दिया जाता है. उसके अकेलेपन को ममतासनी पुचकारों की तलवार से काट दिया जाता है. मां कुछ दिनों तक उसे अकेला रह जाने लायक बना देने की जल्दी में अपने अकेलेपन की बलि देती है और पल जाने के बाद बच्चा अपरिचित... वह कौन है? 'वह' से मतलब? अकेला?...यह सब आदमी के बचपने में हो गुजरता है. फिर स्कूल में उसकी लड़ाई शुरू होती है. और हर लड़ाई में आदमी सिर्फ 'एक' होता है. इसकी/उससे. वह अकेला 'अच्छा' या अकेला 'बुरा' हो जाता है. यानी कुछ के लिए अच्छा और कुछ के लिए बुरा हो जाता है. वह खुद क्या है, इसे लेकर भी संदेह हो जाता है.

जिंदगी के ये सुकुमार विरोध आदमी को व्यक्तित्व प्रदान करते हैं. व्यक्तित्व की मजबूत सत्ता से आदमी परेशान हो उठता है. वह कीमती जिंदगी जीता है, आंखों पर चश्मा चढ़ाकर मौलिक दृष्टि से बेईमानी करता है और व्यवस्था की तैनात शैतानी को खूबसूरत रस-गुहा समझकर भोगता जाता है. आधी से अधिक जिंदगी, मात्र पेट भरने के चक्कर में, वह नौकरी नामक वेश्या की बगल में सोकर बरबाद कर देता है और जब जिंदगी का लक्ष्य शिशु उसे नहीं मिलता है तो वह खुद को मर्द कहने में घबराता और शरमाता है.

इसी बिंदु पर आकर आदमी चीखना चाहता है. पूरी जिंदगी एक छोटे-से चुटकुले में तबदील हो जाये, इससे बड़ा चीत्कार कोई हो सकता है क्या? लेकिन आदमी खुद को चुटकुला नहीं बनने देगा, हर चुटकुले की जड़ें गंदी होती हैं. लेकिन जिंदगी का फूल गंदा नहीं होता. क्या आदमी की जिंदगी वाकई गंदी होती है ! चुटकुले जैसी घटिया!

आदमी घबराकर उठ जाता है. वह नहीं रहेगा—यह कितना बेहूदा-सा सच है. पूरी की पूरी मौत का आदमकद कष्ट आदमी अग्रिम ही भोगने लगे तो केवल पसीना ही थोड़े आयेगा या सिर्फ गला ही थोड़े सूख जायेगा और बस...! नहीं, कम से कम ऐसा तो होगा ही कि आदमी के शरीर पर एक साथ करोड़ों मौतें जन्म लेंगी और एक आतंकपूर्ण लड़खड़ाहट के बाद गिरते हुए अपनी लाशें आदमी के जीवित शरीर पर ही छोड़ जायेंगी...! और आदमी यह भी जान गया है कि एक मौत का वजन सौ मुर्दों को ढोने के विश्वास जितना भारी है.

आत्महत्या की सजा झेलना कोई आसान काम है...!

आदमी आज जब जिंदगी से मौत की तरफ लौट रहा है तो उस कुयात्रा के लिए पैरों में मजबूत यात्रा की मौजूदगी की जरूरत उसे महसूस नहीं हुई. हालांकि इन्हीं पैरों से जिंदगी की हर एक प्रगति में वह शरीक हुआ था. पढ़ाई, नौकरी और शादी—सब कुछ नाटकीय परिस्थितियों की तरह. परिस्थितियों का आकर्षक आतंक ही था कि वह बिना पागल हुए युग व समाज व विदेश की तमाम नंगी और बेशर्म नृशंसताओं को दिलोदिमाग पर महसूस और प्रहारित करने के बजाय उन्हें उसने सामान्य ज्ञान का मुद्दा बनाये रखा. शासन के एक अति महत्वपूर्ण पद पर रहते हुए उससे क्रमश: पत्नी, बच्चा, प्रेमिका, धैर्य, मानवता और खूबसूरत सोच का नजरिया—सब कुछ छूटते चले गये और हाथ लगे अभिमान, औरतबाजी और चंद गंजे दोस्त! ईर्ष्या ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

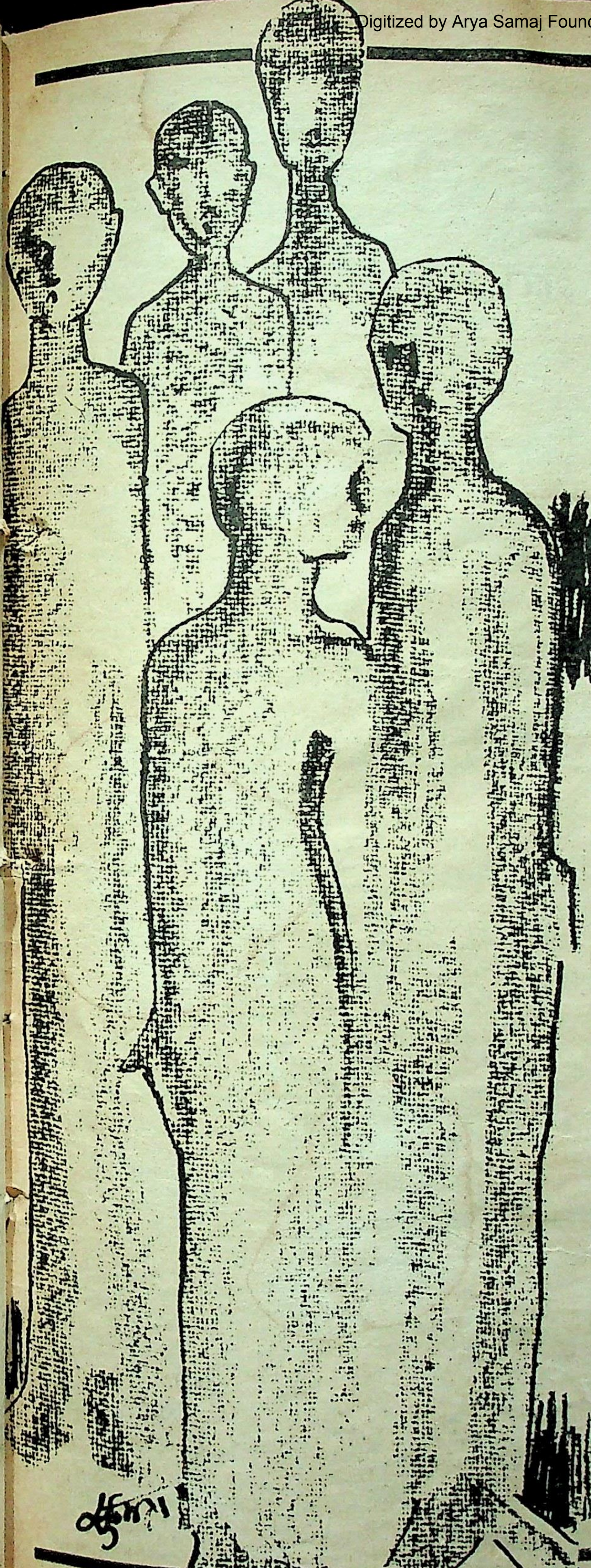

आदमी, जो आदमी की तरह जीना चाहता है, क्या वजह है कि अंततः अपनी ही निष्ठा और अपनी ही ईमानदारी के तहत अपने-आप से ही ऊब जाता है? ऐसे आदमी की मौत की जवाबदेही किसको देनी होती है? अस्सी करोड़ जनता को या अस्सी करोड़ लोगों पर शासन कर रहे शासक वर्ग को?—हिंदी के युवा कथाकार राजकुमार गौतम का एक सीधा सवाल आप सबसे. . .

उसकी पदोन्नति में सहायता पहुंचायी और बीमार मानसिकता के कारण वह शासन का विश्वसनीय बना रहा.

आदमी का अपनी जिंदगी से समझौता तो लगातार चलता रहा लेकिन संबंध नहीं बन सका. कई बार उसने जिंदगी के काल्पनिक दरबार में खुद को पेश करने की सोची भी. लेकिन पेश होने के काल्पनिक समय में वह समझौतों की नंगी जांघ पर सिर टिकाये नींद ले रहा होता. नींद में सपने होते, सपनों में स्मार्टनेस होती और जब कभी अकेली-अकेली अस्सी करोड़ जनता उसे रोती-बिलखती दिखायी दे जाती तो हड़बड़ाहट में उसकी आंखें खुल जातीं. मुस्कराकर वह खुद पर तरस खाता और फिर शेष सपनों की एंपोरियम से वह कुछ शो-पीस छांटता और उन्हें दफ्तर की मेज से लेकर अपने बिस्तर तक फैला देता.

कभी-कभी खुद को भी आदमी सांत्वना दे लिया करता. यदि यह सब अपराध है तो जीना भी अपराध है. और, जीना तो पड़ेगा. हां—यह सच है कि जीने के लिए जो उद्यम करने पड़ते हैं, वे पैशाचिक अपराधों के समकक्ष हो चले हैं—छीन-झपट और डांट की अनिवार्य संस्कृति को गतितर बनाये रखने के लिए. छिः ! लानत है ! !

आदमी बहुत बार मानसिक बहसें किया करता, बहस को समझौते के तापक्रम से ऊपर नहीं ले जाने के वायदे का पालन करते हुए.

"यदि कोई तुम्हारे साथ किसी प्रकार का बलात्कार करने की सोचे तो तुम्हारा क्या कदम होगा?" आदमी खुद से पूछता.

"बलात्कार नहीं होने दूं, इसकी कोशिश करूंगा." फिर आगे कहता, "मैं चाहता हूं कि लोगों के दिल इतने बड़े हो जायें कि वे बलात्कार सोच ही न सकें. . . मस्तिष्क ही नहीं, हृदय भी शासन में शामिल हो. मनुष्यता के ग्रीन-रूम में हथियारों का आधुनिक मेक-अप न हो, प्रेम और सद्भावना की रिहंसल चल रही हो. . वैज्ञानिक खोजें कि किस इंजेक्शन से मानवता बढ़ायी जा सकती है. शास्त्र-पुराण बतायें कि बलात्कारी को किस श्लोक के उच्चारण से निष्क्रिय किया जा सकता है. ."

इन लंगड़ी बहसों से आदमी दुख की कब्र में धंस जाता. इन तर्कों के सिवाय, जीवन की संपूर्ण बाध्यताओं को स्वीकार करते हुए, और कुछ और अन्य पतनों में शरीक हो जाता. आदमी को लगता, जिंदगी जिस आंसू रोकर बह जाना चाहती है वह आंसू अभी उसके भीतर पैदा ही नहीं हो सका है. जिंदगी की खातिर आंसू का इंतजार करना भी आदमी का ही काम है.

आदमी को क्या मर जाने का फैसला ले लेना चाहिए था?

अपनी नसों की गहराइयों में घुसकर आदमी ने जिंदगी में हिस्सा लिया था. नौकरी, सामाजिक-आर्थिक प्रतिष्ठा, नारी-शरीर और बच्चा प्राप्त किया था. इस सबसे आदमी को संतुष्ट हो जाना चाहिए था. आत्महत्या के लिए सूखे आंसू और जीवन के कंधे पर टंके विस्मयबोधक चिन्ह की स्थिति पैदा होने देनी ही नहीं चाहिए थी. जिंदगी के रहस्यमय दरवाजे पर झूठे यश की गश्त चौकसी रहती तो अपना-आपा बदरंग न लगने लगता. जिंदगी को यदि जीने की जगह निपटाया गया होता तो आदमी आज यह सब उल-जलूल न सोचता. भागते हुए लोगों से शिक्षा लेता जो जिंदगी की दुर्घटनाओं के वक्त ठिठककर क्षणभर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए रुकते हैं और फिर दुर्घटना की गलती बताते हुए जिंदगी के अगले क्रिया-कलाप में बढ़ जाते हैं. आदमी ने यही गलती की है कि वह रुक गया है. आदमी ठिठककर रुका और ठहर गया. यह ठहराव ही आदमी को आत्महत्या तक घेरकर लाया है. यहीं उसका अकेलापन संपूर्णता को भी प्राप्त हुआ है.

अब तक आदमी ने अकेले जो कुछ भी किया वह बहुतों के खिलाफ चला गया. कितने जांच आयोगों का अध्यक्ष बन-बनकर आदमी ने तर्कों की ताकत का इस्तेमाल किया. जिंदगी के ऊपर पता नहीं महाविज्ञान के कितने डंडे बरसाये और हर चीज, हर बात और हर सुरक्षा का सहारा पाकर भी वह अकेलेपन को नहीं तोड़ सका. अपने इस अकेलेपन का कारण उसे प्रदत्त सत्ता की हदें चीख-चीखकर समझातीं—खुशगवारी, जनप्रियता और लोक कल्याण में ही निहित है. . .महान को ही आदर दिया जाता है. . आदमी को जिंदगी के लक्ष्य और मंसूबों में जमीन-आसमान का फर्क रखना चाहिए. . .आदमी की अपनी जिंदगी का विशेषण कुछ महान होगा जो स्वतंत्रता की किसी वर्षगांठ पर आदमी के सीने में चुभो दिया जायेगा. . .यह सब समय मिलने पर सोचा जायेगा.

फिलहाल तो जो बम विस्फोट, तालाबंदी, प्रांतीयता और खान-दुर्घटनाओं की जांच हाथ में है, उसे परखना-जांचना है. उन्नतशील जीवन के लिए समग्र तंत्र शासकीय दृष्टिकोण पर निर्भर करता है. मृतक परिवारों के प्रति जिम्मेदार और ईमानदार प्रतिबद्धता से अलग समस्याओं को हल करने के कुछ और भी तरीके हैं जैसे, एक तरीका आंसू होता है, एक मुस्कराना और एक क्रोधित हो उठना. . आदि.

लेकिन आदमी को दुर्घटनाओं के अभिवावकत्व को सम्मान और सुख और सुरक्षा और कैरियर के बीच कहीं बचाकर रख लेना, जीवन की प्रेमिल ऊष्मा में कहीं कच्चे-मांस की सड़न देने लगता. जांच आयोगों की गिल्ली-डंडा से प्राप्त विजय से झूठी शूरवीरता की पारदर्शी सूचनाएं आदमी को लाभान्वित नहीं कर सकीं.

जांच-आयोग की तराश बिल्कुल सही थी—प्रोमोशंज के ठोस आसार लिये हुए! लेकिन आदमी ने तभी महसूस किया था कि इस दुनिया में और इस जिंदगी में तो हर एक आशय और विश्वास को बदला जा सकता है. किसी भी व्यवसाय से अचानक कूदकर आदमी कलाकार हो सकता है और बाल्मीकि बन सकता है.

कोयला खदान की रिपोर्ट्स जब सब बाधाओं को छलनी करते हुए समाचार पत्रों तक पहुंची तो पूरे देश में तहलका मच गया. ऐसी उत्तेजना जैसे कि एक ही दिन दो सूरज उग आये हों. एक-दूसरे के विरोधी लेकिन सौ प्रतिशत सूरज.

आदमी ने निष्कलंक साहस अपने भीतर से निकालकर अस्सी करोड़ लोगों के सामने रख दिया था. उस साहस को लोग अपने-अपने बुद्धि-निर्णयों के तले बिछा-बिछाकर देख रहे थे. आदमी के भविष्य को लेकर विशाल आहें भरी जा रही थीं और साक्षात्कारों के माध्यम से आदमी खुद, यानी अकेले को व्यक्त करना चाह रहा था. जांच और शासन के संबंधों और आरामदेह निर्णयों के ढोंग के बारे में बता रहा था कि शहद पाने के लिए मधुमक्खी का छत्ता तोड़ना ही पड़ता है. जिंदगी का यह बेमिसाल नमूना है, जिसे आदमी गुप्त वितरित करना चाह रहा था, ताकि यह घटना एक संभावना बन जाये और हर अधिकारी के दिल पर नुकीली सुई की तरह चुभती रहे. अस्सी करोड़ जनता के मस्तिष्क के लिए वह एक अनुपस्थित वक्ता बना रहना चाहता था.

". . . लेकिन ऐसा क्यों? यदि तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं था तो जांच में चयन के पहले नहीं बता दिया जाना चाहिए था?" आदमी से पूछा गया था.

पहली नजर में यह जवाबतलबी आदमी को पेशेवर लगी थी. पिछले वर्षों में उसने शासन को बहुत बार समझाना चाहा था कि वह आदमी के मस्तिष्कीय हथियारों से न खेले. नौकर को उसकी हैसियत में रखना आसान है, हैसियत बताकर रखना मुश्किल है. शासन के साथ उदास प्रेम भी नहीं किया जा सकता है. तो. . .?

अपनी जिंदगी को समझा पाने की फुर्सत आदमी से छीन ली गयी थी. इस अच्छे काम का गर्व आदमी के पास आकर एक बार भी सलाम बजा नहीं पाया था. आदमी को अपना जन्म अकारण और भौतिक जवाबदेहियों से भरा-भरा और स्थूल दीखने लगा था. हर रोज एक ताजा अपमान आदमी को झेलना पड़ता था और आदमी की हालत, भगवान कसम, ऐसी हो चली थी कि वह दिल की धड़कनें छाती पर हाथ रखकर सुनने को मजबूर हो चला था. पहले अखबारवाले आदमी का वक्तव्य छापते थे और अब 'संपादक के नाम' पत्रों में उसकी पीड़ा भरी पुकारें. लड़ाई एक कमीनी छटपटाहट में बदलती गयी थी.

आदमी ने जिंदगी से जो कुछ बहुत धीमेपन से प्राप्त कर लिया था, वह अहसानमंदगी में उसके सिर पर झूला करता. बिल्ली की तरह आदमी जब सच्चाई-बयानगी के पंजे फैलाता तो बातें सुननेवाले श्रोता उसका पासंग फिर भी महसूस नहीं कर पाते. आदमी का मस्तिष्क अपने ही द्वंद्वों के भार से शासन के संगीत की तरफ झुकता चला गया और इस कोशिश में लग गया कि शासन को बता दे कि उसे गलत समझ लिया गया है! वह अपना अपराध स्वीकार करता है!!

लेकिन आदमी के इस निर्णय से उसके मस्तिष्क ने जो दर्द की एक दूसरी सत्य प्रतिलिपि जारी की तो सच्चाई से उत्पन्न आनंद के सुख ने उसे फिर एक आरामजनक करवट दे दी. आदमी के जी-तोड़ संघर्ष ने फिर से एक आकार ले लिया. उसने आत्मविश्वास को गोद ले लिया. आदमी इसी बहाने खुद को जिंदगी देगा, संघर्ष और प्रतिबद्धता और नैतिकता और आत्मालोचना और प्रत्येक बेहतर संभावना की नब्ज को डूबने नहीं देगा. अपनी सफलता के इस रहस्य को पहेली नहीं बनने देगा. आदमी अस्सी करोड़ जनता को एक बार फिर से बतायेगा कि अब तक बैठाये गये सभी जांच आयोगों में स्थितियों को पहचाने बगैर ही कार्यवाही हुई है.

यह बात सच है कि जो आत्मविश्वास आदमी के भीतर पुनः जन्मा था, वह वाकई महान था. यदि यह विश्वास पराजित मन की लाठियों से दम तोड़ गया तो निश्चित रूप से आदमी मर जायेगा.

आदमी के चेहरे पर हजारों विश्वास एक साथ तैनात हो गये. आदमी के लहराते हुए वक्तव्य सीधे प्रेस में कंपोज होने के लिए चल पड़े. सारा शासन जैसे सुन्न रह गया; चकित, स्तब्ध और लुंज-पुंज! खुद को टटोलते हुए आदमी को पता चला कि भले ही गलत किये हों लेकिन जिंदगी में उसने काम तो बहुत किये हैं. . . कल्पना में तो आदमी ने यहां तक सोचा कि स्वर्ग से निर्दोष लोग उतरकर आयेंगे और अपनी-अपनी बातें कहते हुए वे अपना 'दोष' उसे बतायेंगे. उसके इस श्रम से अस्सी करोड़ जनता की थकी हुई इच्छाओं को शब्द मिलेंगे और तमाम गलत पूर्वाग्रहों की सीमाएं तोड़ते हुए एक सर्जक चेतना स्थापित हो सकेगी. आदमी ने खुद को यकीन दिलाया कि उसका कदम बिल्कुल उचित है. जिंदगी की खूबसूरती की वापसी को आतुर एक जीवंत शिलालेख है. साहस, कर्म और शौर्य की भाषा में लिखा हुआ.

बहुत सारे दूसरे लोगों की ही तरह पत्नी और बच्चे ने भी आदमी से पूछा था, "तुमने यह सब क्या कर दिया! हम क्या ऐसे बदकिस्मत थे?"

"बदकिस्मत? कतई नहीं." आदमी ने कहा था.

"धिक्कार; तुम्हें न समझा पाने के लिए हमें धिक्कार!"

"समझाना क्या है?" आदमी ने पूछा.

"खुद को समझाने की ताकत हमारे पास नहीं है."

"क्या तुम्हारी सलाहें इतनी आतंकजदा होंगी."

"उफ! तुम्हें सोचना चाहिए .बल्कि शर्म आनी चाहिए. . ."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरे-धीरे अस्सी करोड़ जनता ने एक-से ही सवाल पूछे थे. आदमी जवाब देता रहा था. लेकिन क्या वे शब्द करोड़ों बार दोहराये जाने के बाद भी जवाब ही थे? जल्दी ही शब्द शायद आदमी की ढाल बनने लगे थे. आतंक, अवसाद, घृणा, कुंठा और बेहिसाब तनाव को इतना पास खिसकता देख, प्यार करते रहने के बावजूद पत्नी और बच्चे और प्रेयसी और हमदर्द और पद और प्रतिष्ठा और यश और धन और सज्जनता और सुकोमलता. . . सभी आदमी के पास से दूर चले गये थे. चलो, अच्छा ही हुआ जो ये सब चीजें एक आदमी की जानकारी में ही उससे दूर चली गयीं.

'उफ! कितने घिनौने लोग हैं!' आदमी दूसरों के साथ-साथ अपने पर भी तरस खाता. विचारधारा के आसमान तले इकट्ठा होते नेत्रहीन लोगों पर तरस खाता; प्रजातंत्र के नाम पर 'हवा-के-रुख-में-बहते-लोगों' पर तरस खाता, लेकिन खुद को प्यार इसलिए करता, क्योंकि वह स्वयं को युग-वृक्ष का सबसे मीठा, महत्वपूर्ण, शीर्षस्थ और आकर्षक फल समझता था. उसने जिंदगी से कोई बेईमानी नहीं की थी. समय की संक्रामक बीमारी का इलाज उसने किसी औपनिवेशिक नीति के तहत नहीं खोजा था बल्कि इच्छापूर्वक उस बीमारी का वरण किया था. बल्कि आदमी ने इस बात की वकालत की थी कि आतंक की जिस रस्सी से होकर वह गुजरे, वह रस्सी पूरे देश के ऊपर आर-पार तनी हो और अस्सी करोड़ में हर एक सिर यह सोचने को मजबूर बना रहे कि आदमी के गिर जाने से उसका सिर टूटकर गिर सकता है, इसलिए आदमी की तरफ ही वह निहारता रहे.

'जिंदगी के एक किनारे पर बैठकर जंगलीपने में दिन गुजार देने का कोई मतलब नहीं है. मानवता के पैकिंग के भीतर जो फैशनपरस्त अमानवीयता है, उस कुत्तेगीरी से आदमी का कोई सरोकार नहीं है. जिंदगी को एक प्रयोग की तरह आदमी जीने के पक्ष में नहीं है. हमबिस्तर प्रेयसी की जगह सुरक्षा अधिकारी को आदमी नहीं झेल पाता और विश्वासों की इस अप्रसन्नता को भी आदमी समाप्त करना चाहता है . . . .'

“मैं तुम्हें पहचानता हूं और दिलोजान से तुम पर फिदा हूं!” किसी दूसरे आदमी ने एक दिन उससे कहा था, “तुम्हें इतना अधिक अच्छा नहीं होना चाहिए था.”

और आदमी का खूबसूरत अकेलापन उस दिन छूट गया था. कोई भी यह आसान-सी कल्पना कर सकता है कि बरसों से एक आदमी अकेलेपन की समाधि में लीन हो तो किसी भी आमंत्रण का मतलब उसके लिए कितना रंगीन हो सकता है.

बातें और बहसें और दोस्ती और औपचारिकताएं; सुबह, दोपहर शाम और रातों तक चलती रहीं. चीजों को देखने का एक समान नजरिया वहां था, जिसके दोनों तरफ बैठकर वे दोनों आग सेंकते. आदमी की योग्यता को छुए बगैर उसके साथ किसी और का रह पाना असंभव था. लेकिन दूसरे आदमी की योग्यता का दायरा इतना विशाल और बलिष्ठ था कि आदमी कभी भी उसकी लपटों में फंस जाता.

एक दिन आदमी इस दोस्त के तर्क-कुंड में फंस गया लेकिन दोस्त ने ही उसे फिर बचा लिया. रहा-सहा फासला उस दिन मिट गया और बहसों के हमले अब शांतिवार्ता में बदल गये.

दोस्त ने फिर से आदमी को जीवन का स्वाद चखाया. सिखाया कि अकेलेपन का मतलब ही मौत से मैत्री करना होता है. जाओ, एक बार फिर अब कुछ चखो. इसलिए कि जीवंत बने रहने का अहसास हथेलियों पर नाचता रह सके. सोलह साल की लड़की क्या होती है, इसे जानना जरूरी है. सब कुछ जानने के बाद ही मौत का वरण करो. जिंदगी में आकर्षक क्षणों की फेहरिस्त को लंबा करो. और. . और. . .

आदमी जिंदगी के कलाविहीन सौंदर्य से वैसे ही उकताया हुआ था. वह ढ़-ढ़-ढ़ कर ढह गया.

एक बार वह फिर से राजा-रानी के सिंहासन के बीच जा बैठा था. आदमी वहां पहुंचकर चौंका. राजा-रानी इस बार बदल चुके थे. इस बदलाव में आदमी का बहुत बड़ा 'हाथ' और 'श्रम' था, यह भी इसे पता चला. बाकी सब कुछ वही था, वहीं था. अंधाधुंध बेशर्मी और बंदरबांट. जूते से जनता के साथ बलात्कार करती अफसरशाही और हंसने पर खतरनाक पाबंदी. एक विचारधारा और एक औपनिवेशिक समर्थन से निकलने के बाद दूसरी साम्राज्यवादी ताकतों के तले दबे-पिसे लोग पुराने ही थे.

आदमी की कीमत उसके तथाकथित हिंसक वक्तव्यों के कारण ही इतनी अधिक हो गयी थी. उसकी ईमानदारी की मजबूरी देश भक्ति में कैसे तबदील हो गयी? वह मर जाता तो क्या वाकई स्वतंत्रता, सेनानी का पद उसे मिलना निश्चित था? यह क्या बात हुई?. . . स्वतंत्रता के इन बियावान खंडहरों में नागरिक होकर भटकने से क्या फायदा होगा? दुनिया के हर देश के आंगन में उथल-पुथल है, तो फिर संस्कृति का आधार किस काम में आयेगा? नेताओं के नखरे और आतंकवादियों के ऊधम मिलकर आदमी के आत्मसम्मान और जीवन को ध्वस्त करते रहेंगे तो आदमी को समझदार तो होना ही पड़ेगा. . ! पता नहीं क्यों, आदमी इस बार सिंहासननुमा कुरसी से उतरता-उतरता रुक गया. रुका ही नहीं, फिर जम भी गया.

“अब तुम वाकई बहुत अच्छे हो गये हो. मैंने तुम्हें अब तक धोखे में रखा था. लेकिन अब मुझे मेरी असलियत में देखो.” यह दोस्त की आवाज थी.

आदमी ने पलटकर दोस्त को देखा. अचंभा. असंभव. फिर से खतरा.

आदमी चौंक-चौंककर देखता रहा था. बेहद आकर्षक, सुकुमार और मक्खन का शरीर तथा ताजमहल-सी सुरूपता हथियाये, एक शर्म-संकुचित-रूपा-कन्या वहां खड़ी थी.

“हां, मैं!” उसने कहा था, “तुमने बहसों के बीच मुझे कभी देखा ही नहीं था. मैं पहले भी औरत ही थी. लेकिन तुम्हें मेरे सेक्स के बारे में जानने की न कभी उत्कंठा हुई, और न ही तुमने कभी समय ही दिया. मैं अब हमेशा तुम्हारे साथ ही रहूंगी. तुम्हारी हमबिस्तर और प्रेयसी—उससे भी कहीं अधिक तुम्हारी संगिनी और बांदी. मेरी श्रद्धा तुममें लीन हो जाने की है और मैं चाहती हूं कि समय-समय पर तुम्हें तुम्हारे ही बारे में बताती रहा करूं, तुम्हारे शब्दों और क्रिया-कलापों की चौकीदारी कर सकूं. तुम्हारी किसी भी शिकायत के तले मैं प्राण दे दूंगी और तुम्हारे लिए आंसू बहानेवाली एकमात्र वारिस मैं ही रहूंगी. . .”

शेष पृष्ठ 65 पर जारी...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांपों की पहाड़ी

• गाई द मोपासां

हम प्रायः वहां जाया करते थे और उस वृद्ध साधु को देखा करते थे जो विशाल घाटी के बीच रहा करता था. हम इस प्रकार के लोगों की जिंदगी के बारे में और विशेषतः उन कारणों के संबंध में, जिनसे वे अन्य मनुष्यों की संगति से परहेज करने लगते हैं, सोचकर विस्मित हुआ करते थे.

एक दिन जब हम वृद्ध साधु से मिलकर वापस आ रहे थे तो हमारे एक साथी ने कहा, "मैंने अपने जीवन में दो साधुओं को निकट से देखा है. उनमें से एक पुरुष था और दूसरी स्त्री. स्त्री शायद अभी भी जीवित होगी. पांच वर्ष हुए, वह कोरसिका के एक निर्जन, वीरान प्रदेश में रहती थी. मैं उसे प्रायः देखने जाया करता था. वह इस ढंग से मेरा स्वागत किया करती थी, जिससे पता चलता था कि उसका अच्छे-खासे ऊंचे वर्ग से संबंध रहा होगा, लेकिन उसने कभी अपने बारे में एक शब्द भी नहीं कहा और न मैंने ही उससे कुछ पूछा.

"दूसरे साधु की बड़ी ही विचित्र कहानी है. क्या तुम उस वन के बीच की उस ऊंची चोटी को, जिसे 'सांपों की पहाड़ी' कहते हैं, जानते हो? बारह वर्ष पूर्व एक साधु वहां रहा करता था. उसके बारे में अनेक रहस्यमय बातें सुनने के कारण उससे मिलने की उत्सुकता हुई. और एक सुबह मैं घोड़े पर सवार होकर उससे मिलने के लिए चल पड़ा.

नेस्पोल में घोड़े को छोड़कर पैदल ही पहाड़ी पर चढ़ने लगा. मौसम गर्म और खुश्क था, लेकिन दृश्य बड़ा आकर्षक था. मैं सनोवर के वृक्षों की खुशबू से और छिपकलियों के चट्टानों के अंदर आने-जाने और लंबी घास में लोप हो जाने के दृश्य को देखकर बेहद आनंदित होता रहा.

पहाड़ी का नाम 'सांपों की पहाड़ी' बड़ा उपयुक्त था, क्योंकि वहां 'सांप' बहुत थे.

पहाड़ी की चोटी पर एक टूटा मंदिर था. एक जर्जर दीवार के निकट एक पत्थर पर वह साधु बैठा था. वह पैंतालीस वर्ष से अधिक आयु का न था, लेकिन उसके सिर के बाल सफेद हो गये थे. उसे इर्द-गिर्द के खंडहरों से कोई दिलचस्पी न थी. वह कभी-कभी नीचे नदी के किनारे, जिसके इर्द-गिर्द पुराने दुर्गों की दीवारें अब भी विद्यमान थीं, चला जाया करता था.

"यहां का दृश्य कितना मनोरम है," मैंने कहा.

"लेकिन यह भयानक और डरावना लगता है," साधु बोल उठा, "विशेष रूप में जब दिनभर अन्य कोई वस्तु दिखाई नहीं देती."

मैं एक घंटा तक वहां रहा और मैंने उस साधु के बारे में अनुमान लगाया कि वास्तव में वह विरक्त होकर वहां आया था—जीवन और संसार से उदासीन, लोगों से विरक्त और अपने आप से बेजार.

कुछ दिन के बाद मैं फिर वहां गया और उसके बाद फिर. यहां तक कि हम दोनों मित्र बन गये.

वसंत ऋतु के आरंभ में एक प्रातः मैं खाने-पीने का सामान लेकर पहाड़ी पर गया, क्योंकि उस दिन हमने साथ-साथ ही खाना खाने का कार्यक्रम बनाया था. वह दिन बड़ा सुंदर था.

हवा संतरों के फूलों से बसी हुई थी. वह ऐसा दिन था, जब एक वृद्ध व्यक्ति भी प्रेम के सपने देखने लगता है. साधु मुझे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और जब हम अपने-अपने विशिष्ट स्थान पर बैठ गये तो मैंने मदिरा का एक गिलास साधु को दिया, यह सोचकर कि उसकी सुप्त शक्तियां जाग्रत हो जायें और वह खुलकर आनंद ले सके. मैंने ठीक ही सोचा था.

मदिरा पान करके उसकी तबीयत रंग पर आ गयी और वह पेरिस की बातें करने लगा, और अपने यौवनकाल के बारे में भी.

आखिर मैंने साहस बटोरकर उससे सीधा प्रश्न किया, "आप यह संन्यासी जीवन बिताने पर क्यों विवश हुए?"

"यह कहानी बड़ी दुखपूर्ण है." उसने उत्तर दिया, "मैंने कठोर से कठोर यातना सहन करने के बावजूद अब तक इस रहस्य को नहीं खोला.

मेरे लिए इस बात का कोई महत्त्व नहीं कि कोई मेरे बारे में क्या सोचता और

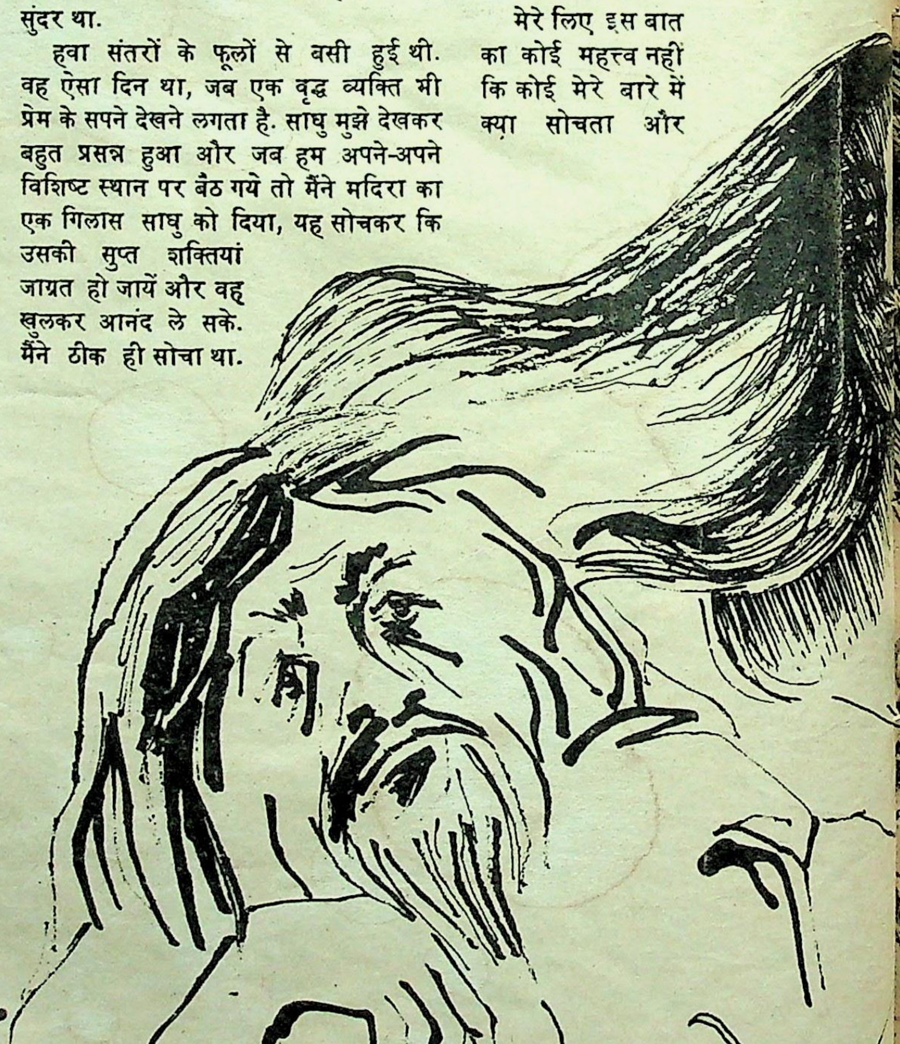

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या पापबोध की तीव्रता प्रायश्चित से पूरी तरह समाप्त हो जाती है? फिर भी क्यों आदमी उस पापबोध को कलेजे से लगाये इधर-उधर भटकता रहता है? क्या किसी भी स्थिति से भागना सही प्रायश्चित है? ऐसे ही कई सवालों का जवाब दे रहे हैं फ्रांस के प्रख्यात कथाकार मोपासां.

मध्यवर्गीय विसंगतियों के गंभीर चितेरे मोपासां जब अपने ही लेखन की लीक से हटे तो कहां पहुंचे?

निष्कर्ष निकालता है. . . मैं पेरिस में पैदा हुआ. वहीं शिक्षा प्राप्त की और बहुत अच्छे वेतन पर नौकर हो गया. वहां मैं एक कुंवारे युवक जैसा जीवन बिता रहा था. तुम इसका अभिप्राय समझते हो न? केवल एक पत्नी से बंधे रहना मुझे पसंद न था. इसलिए एक के बाद दूसरी स्त्री बदलता रहा. चयन के लिए क्षेत्र बहुत विस्तृत था.

मेरा जीवन साधारण रूप में होटलों और थिएटरों में व्यतीत हो रहा था. पेरिस के ऐश्वर्य और आमोद-प्रमोद से परिपूर्ण जीवन का मैं उपभोग कर रहा था. बस, इसके अतिरिक्त मुझे कोई काम न था. बीस वर्ष तक मैं ऐसा ही मौज का जीवन व्यतीत करता रहा. इस बीच कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी. उस समय मेरा कोई मित्र न था. और न पत्नी और न बच्चे ही थे.

अपना जन्मदिन मनाने के लिए मैं एक बड़े ही फैशनेबिल होटल में गया. खाना खाने के बाद मैं किसी थिएटर या पुराने होटल में जाने के बारे में सोचने लगा. मैंने होटल को ही तरजीह देना उचित समझा, जहां सुंदर युवा लड़कियां मेहमानों का आतिथ्य-सत्कार करती हैं. वह लड़की, जिसने उस रात मेरी सेवा की, अपनी अन्य हमपेशों की तरह युवा और सुंदर थी. मैंने मदिरा का एक पेग उसकी भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए पेश किया, जिसे उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया.

वह चुस्कियां लेकर पीने लगी. साथ ही मुस्कराते हुए सधी हुई आंखों से वह मेरी ओर देख रही थी. मैंने उससे कुछ बेहूदे और अश्लील शब्द कहे और नगर के किसी अन्य शानदार होटल में खाना खाने का निमंत्रण दिया.

उसने आने का वचन दे दिया. इस विस्तार में जाने के लिए मुझे क्षमा करें, लेकिन आप जानते ही हैं कि कोई व्यक्ति इससे पहले कि वह किसी से प्रेम करे, उसके स्वभाव की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता है, ताकि रोमांस उल्लासपूर्ण हो. इस संबंध में परख के लिए उसे बहुत कुछ करना पड़ता है. कई दिन के बाद जब हमारे संबंध घनिष्ठ हो गये तो मैं उसके घर गया. मैंने देखा कि वह एक छोटे से दो कमरोंवाले फ्लैट में रहती थी. वह कमरे बहुत मामूली तरीके से सुसज्जित थे, लेकिन थे खूब साफ-सुथरे. मैंने उस दिन उसके साथ पूरे दो घंटे बिताये. वह बड़े रंगीन स्वभाव की थी और हंसमुख भी. मैं उससे बहुत प्रभावित हुआ. वापस लौटते समय जब मैं उसकी फीस कार्निस पर रखने लगा तो मैंने सामने दीवार पर दो तस्वीरें टंगी हुई देखीं, जो पुरानी होने के कारण धुंधली पड़ गयी थीं. कौतूहलवश जब मैं उन्हें गौर से देखने के लिए आगे बढ़ा तो मेरा सिर ग्लानि से झुक गया, क्योंकि उनमें से एक तस्वीर मेरी थी, जो मैंने अपने छात्र जीवन में खिचवाई थी.

"वह युवक कौन है?" मैंने मुस्कराते हुए लड़की से पूछा तो गौर से मुझे देखने लगी, "यह मेरा पिता था. मैंने इसे नहीं देखा, लेकिन मेरी मां ने मरते समय कहा था कि मैं इस तसवीर को संभाल कर रखूं, क्योंकि किसी दिन यह बहुत लाभकारी सिद्ध हो सकती है." वह सहजता से मुस्करायी, क्योंकि उसे मेरे संबंध में कुछ पता नहीं था. उसने कभी मुझे ढूंढ़ने का प्रयत्न भी नहीं किया था.

मैंने उसकी निश्चित फीस पांच पौंड की बजाय दस पौंड उसे दिये और पागलों की तरह वन की ओर भागा. मुझे यह पता नहीं था कि मैं किधर जा रहा हूं. नौ महीने बाद मुझे उस लड़की का पत्र मिला, जिसमें उसने सूचना दी थी कि उसके एक चांद-सा लड़का पैदा हुआ, जो मेरा ही है. चूंकि मैं उस घटना को भूल-सा गया था, इसलिए उस पत्र ने मेरी सुप्त भावनाओं को झकझोर दिया. मैं नदी के किनारे बेंच पर बैठ गया और जीवन की उन घटनाओं पर विचार करने लगा. मेरी ही लड़की! गजब हो गया. पेरिस में इस प्रकार की अन्य कितनी घटनाएं प्रतिदिन होती हैं! बंद खिड़कियों के पीछे बड़े ही अश्लील और जलील काम होते हैं. . . मेरे भीतर अपने इस घोर महापाप का प्रायश्चित करने का साहस न था. अंत में मैंने एक वकील से परामर्श लिया और कोई कारण दिये बिना उस लड़की के लिए यथोचित गुजारा निश्चित कर दिया. फिर मैंने अपनी नौकरी छोड़ दी और यहां आ गया और यहीं रहता हूं और न जाने कब तक रहूंगा. अब आप बताएं कि आप ने मेरे बारे में क्या मत बनाया है?"

उसकी ओर हाथ बढ़ाकर मैंने कहा, "अपनी भूल का अनुभव होने पर आपने अपने कर्त्तव्य का पालन किया. यह भी कोई साधारण बात नहीं. अन्य लोग शायद यह भी न करते."

"मैं जानता हूं." उसने कहा, "मैं धीरे-धीरे संसार से विरक्त हो गया. मेरा मानसिक संतुलन भी बिगड़ गया. पेरिस से मुझे अति घृणा हो गयी, क्योंकि वहीं वह घटना घटी थी, जिससे मेरा जीवन बरबाद हो गया."

यह कहानी सुनकर मैं आश्चर्यचकित रह गया. मेरी चेतना जड़ हो गयी. मैं साधु से विदा लेकर अपने घर आ गया. मैंने दो बार उसे वहां देखा और फिर मुझे वह स्थान छोड़ देना पड़ा. जब मैं अगले वर्ष वापस आया तो वह साधु 'सांपोंवाली पहाड़ी' पर नहीं था. और उसके बाद मैंने उसे कभी नहीं देखा. □

अनुवाद : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीवारों वाला लैंडस्केप

एम. जे. फिट्ज़ेरॉल्ड

देह के भोग और प्रेम में क्या अंतर है? वे कौन सी मनोवैज्ञानिक गुत्थियां हैं जो इस अंतर में से पैदा होती हैं? इन्हीं कुछ सवालों के जवाब ढूंढ रही है नवोदित ब्रितानी लेखिका की यह फंतासी.

एम. जे. फिट्ज़ेराल्ड लंदन में विश्वविद्यालय में साहित्य पढ़ाती हैं. यह उनकी दूसरी कहानी है, जो १९८३ में पेंग्विन की फायर बर्ड श्रृंखला में प्रकाशित हुई है.

जब से ब्रायोनी ने यह जाना कि पुरुष के स्पर्श में एक खास तरह का आनंद होता है, तब से उसकी हालत यह हो गयी कि अगर कोई व्यक्ति नजर या हाथों से उसे छू भी ले तो वह जरा भी प्रतिरोध नहीं कर पाती थी और उसके सामने ऐसे ही बिछ जाती थी जैसे कि सूरज के सामने धरती. वसंत में यह सब शुरू हुआ और शरद आते-आते उसने स्वीकार कर लिया कि वह स्वच्छंद भोगी है.

जब वह 456 वें आदमी के साथ बिस्तर पर थी, तब उसे पहली बार महसूस हुआ था कि वह इसके साथ-साथ इधर-उधर बिखरी ईंटें भी बटोर रही है. वह कुछ देर के लिए ठहरी तो आदमी ने पूछा कि मामला क्या है. "कुछ नहीं," उसने कहा और उस आदमी को खुश करने के लिए नकली कराहटें भरने लगी. निपटने के बाद आदमी ने उसकी उंगलियों के सिरों को चूमा और फिर करवट बदलकर सो गया. नींद उसे भी आ रही थी, वह भी सो गयी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगली बार ब्रायोनी को लगा कि वह हांफती हुई, भागते-भागते ईंटें इकट्ठा कर रही है. वह उनको उठा-उठाकर अपने चमड़े के मजबूत लबादे में रखती, एक बार में छह या सात ईंटें आती थीं. वह उन्हें लेकर एक जगह पर रख देती और फिर भागकर अगली खेप उठाती. जब उसने दो खेप लाकर रख दीं, तब वह उन्हें एक के ऊपर दूसरी ईंट रखकर चिनाई करने लगी. पर सीमेंट तो था ही नहीं. उसने सोचा और अचानक वर्तमान में लौट आयी. थोड़ी देर रुकने के बाद उन्होंने अपना काम फिर शुरू कर दिया. ईंटें ठीक वैसे ही पड़ी थीं जैसे उसने उन्हें छोड़ा था. वह उन्हें एक दूसरे के ऊपर चिनने लगी. इस बार उसने सीमेंट न होने की बात को सोचा ही नहीं. पर आदमी जल्दी चुक गया. इसके बाद तो उसे याद भी न रहा कि एक-दो मिनट पहले वह क्या कर रही थी. दोनों उठे. ब्रायोनी ने आदमी के लिए चाय बनायी. फिर वह चला गया, उसे रिट्ज पर अपने किसी ग्राहक से मिलना था.

एक कैफेटेरिया में ब्रायोनी को एक आदमी मिला जिसने उसके कॉफी और चॉकलेट केक के पैसे चुका दिये. फिर वह उस आदमी के साथ उसके घर चली गयी. लेकिन उसके बीवी-बच्चों के आने से पहले ही उसे पीछे के रास्ते से निकल भागना पड़ा. सड़क पार करते हुए वह बहुत खुश थी क्योंकि इस बार उसे मजा तो आया ही था, ईंटें भी नहीं ढोनी पड़ी थीं.

456 वें आदमी के साथ जब वह बिस्तर पर थी तो ईंटें अभी वहीं पड़ी थीं. इस आदमी का नाम डेल था और वह शहर के शेयर बाजार में दलाल का काम करता था. ब्रायोनी वही चमड़े का लबादा पहने थी और जानती थी कि अभी उसे काफी ईंटें ढोनी हैं. श्वेत-श्याम लैंडस्केप में वह इधर-उधर भाग रही थी. यह दृश्य उसे वॉल ल्यूटन की फिल्मों की याद दिला रहा था जो उसने टेलिविजन पर एक रेट्रोस्पेक्टिव में देखी थीं.

ईंटें सैकड़ों की संख्या में थीं और ब्रायोनी को लग रहा था कि जल्दी से जल्दी अधिक से अधिक ईंटें बटोर लेनी हैं. वह भाग रही थी. झपटकर ईंटों को बटोर रही थी, छह-सात ईंटों को अपने लबादे में भरकर लौट रही थी, उन सबको एक जगह रखकर बड़ा ढेर बना रही थी. जब वह चौथी खेप लेकर आयी तो उसने खुद से ही कहा कि अब दस ईंटों की और जरूरत होगी. पर यह सोचते ही वह दृश्य स्खलित हो गया और वह जहां थी, सारी ईंटें वहीं गिर गयीं. उसके ढेर से काफी दूर.

ब्रायोनी को लगा कि अब वह डेल से प्यार नहीं कर सकती. उसने डेल से कहा कि वह एक यात्रा पर वेस्ट इंडीज जा रही है. टेलीफोन विभाग से भी उसने प्रार्थना की कि उसका टेलीफोन नंबर बदल दिया जाये, क्योंकि इस नंबर पर कुछ गुंडे उसे तंग करते हैं. टेलीफोन विभाग ने जल्दी ही उसका नंबर बदल दिया.

एक दिन ब्रायोनी जब 468वें आदमी के साथ एक रेस्तरां में खाना खा रही थी, तभी डेल एक औरत के साथ वहां आ गया. उसने ब्रायोनी की तरफ देखा. ब्रायोनी को याद आया कि कैसे वह उसकी उंगलियों के सिरों को चूमा करता था. जल्दी ही दोनों ने अपने-अपने साथियों को टरका दिया. पर बिस्तर पर आते ही वह लैंडस्केप जैसे ब्रायोनी का इंतजार कर रहा था. इस बार उसने देखा कि वह जिस तरफ भी नजरें उठाती है. उसके चारों और ईंटों की दीवारें हैं. बड़े खतरनाक ढंग से एक दीवार पर से उचककर उसने देखा कि प्रत्येक दीवार छह फुट ऊंची और चार फुट चौड़ी है. लंबी इतनी कि वह जहां तक देखती है, दीवार फैलती चली जाती है. ये असली दीवारें नहीं थीं, क्योंकि ईंटों को सीमेंट से तो चिपकाया ही नहीं गया था, उन्हें तो बस एक दूसरे के ऊपर रख भर दिया गया था. ठीक वक्त पर ब्रायोनी उछलकर नीचे आ गयी वरना पूरा छह फुटा निर्माण उसी के ऊपर आ गिरता. अब फिर उसे ये ईंटें चिननी होंगी. वह ईंटों को चिनने में इतनी मगन हो गयी कि अपने शरीर के ऊपर पड़े दूसरे शरीर का ध्यान ही न रहा, जो अब शांत हो चुका था. ब्रायोनी को बड़ी निराशा हुई. डेल ने उसकी तरफ देखा. ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था. एक बार फिर सब काम शुरू हुआ. फिर से लैंडस्केप आकर अटक गया और वह फिर से बाध्य हो गयी ईंटों को एक के ऊपर एक रखकर चिनने के लिए. निपटने से पहले वह लगभग पूरी दीवार तैयार करने में सफल हो गयी. डेल काफी थक गया था. वह तत्काल सो गया. ब्रायोनी उसके सीने पर सिर रखकर उसके दिल की धड़कनें सुनने लगीं और फिर सपने में वह इन धड़कनों की धुन पर नाचने लगी. पर यह काम अधूरा ही रह गया क्योंकि डेल ने उसकी तरफ से करवट बदल ली थी.

आखिरी बार जब वह डेल से प्यार कर रही थी तो उसने चमड़े के लबादे को उतारने की भरसक कोशिश की, पर असफल रही. उसने अपने को दौड़ने, ईंटें बटोरने और एक के ऊपर दूसरी ईंट चिनने से रोके रखा, पर वह अपने को वाल ल्यूटन के लैंडस्केप से दूर न हटा सकी और दीवारों को देखती भर रह गयी. उसे लग रहा था जैसे इन दीवारों के पीछे कई छायाएं छिपी हुई हैं. उसने आंखें खोलकर डेल की तरफ देखा, वह उसे ही देख रहा था.

एक दिन ब्रायोनी 480वें आदमी के साथ बिस्तर पर थी. इस आदमी का नाम नेलेन था. ब्रायोनी एक दीवार पर चढ़ रही थी. दीवार के पीछे कोई आकृति थी. वह जानना चाहती थी कि यह आकृति कौन है जो कई सालों से तांक-झांक कर रही है. जब उसने उस तरफ देखा तो वहां कोई नहीं था. तभी उसके पांव अपनी जगह से हट गये और वह पीठ के बल जमीन पर आ गिरी और उसके ऊपर ईंटों का पूरा ढेर आ गिरा. उसे बुरी तरह चोट आयी.

अगली बार जब वह ईंटों की एक तह के ऊपर दूसरी तह बड़ी सावधानी से रख रही थी तब वह अच्छी तरह जानती थी कि कोई उसके बिल्कुल नजदीक, दीवार के पीछे से उसे देख रहा है. वह उसे पकड़ने के लिए उठ खड़ी हुई. पर वह तो दीवार के दूसरी तरफ था. उसने दीवार को एक जगह हाथ से पकड़ा फिर दूसरी जगह पैर टिकाये और ऊपर की तरफ उचकी. पर अब वहां कोई नहीं था. जो भी वहां रहा होगा, अब उसकी छाया दूसरी दीवार के पीछे चली गयी. फिर सावधानी से वह नीचे उतरी और अपने काम में लग गयी और तब तक करती रही जब तक नेलेन ने उसे झकझोरकर जगा न दिया. फिर दीवारें और लैंडस्केप गायब हो गये.

नेलेन को उसके साथ बिस्तर पर जाना पिछले 479 व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक अच्छा लगता था, पर ब्रायोनी को तो दीवार तैयार करनी होती थी. जब ब्रायोनी ने यह बात उसे बतायी तो उसने कहा, "कितने शर्म की बात है कि मैं तो तुम्हें प्यार करता रहा हूं और तुम ...!" कहकर वह चला गया. इसके बाद ब्रायोनी भी लंबी छुट्टियों पर चली गयी और इस दौरान वह 99 व्यक्तियों के साथ सोयी. पर दीवारों को उसने नहीं देखा और इनके बारे में लगभग भूल ही गयी. हां, कभी-कभी सपने में उसे दीवारों के पीछे दुबकी हुई छायाएं ताकझांक करती और बच्चों की तरह एक दीवार से दूसरी के पीछे भागती छिपती दिखाई देती थीं. पर जब वह डायल नाम के 579 वें आदमी के साथ बिस्तर पर थी, तब वह वाल ल्यूटन के लैंडस्केप में लौट आयी और दीवारें बनाने के लिए ईंटें इकट्ठा करने के बाध्यकारी काम में जुट गयी. बाद में जब वह आदमी सो गया तब उसके सीने पर अपना सिर रखे उसके दिल की धड़कनों को महसूस करते हुए ब्रायोनी ने सोचा कि उसे यह जगह छोड़कर वापस अपने शहर चले जाना चाहिए. सोचती हुई वह उसकी आंखों के पपोटों और भवों को सहला रही थी. तभी वह जाग गया और उसने ब्रायोनी की तरफ देखा और फिर जल्दी ही वह इधर-उधर भागती हुई, एक और दीवार बनाने के लिए ईंटें बटोर रही थी.

डायल के साथ ब्रायोनी इतनी बार हमबिस्तर हुई जितनी संभवतः किसी और के साथ नहीं हुई होगी. इसका एक कारण तो यह था कि जिस टापू पर वे थे, वह बहुत छोटा था, फिर कोई खास समस्याएं भी इनके सामने नहीं थीं. इस दौरान किसी और के साथ हमबिस्तर होने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रायोनी के पास न समय था और न अवसर. कुछ ही समय बाद ब्रायोनी ने देखा कि उसने आसपास की सारी ईंटें इकट्ठा कर ली हैं. फिर काफी देर तक वह पूरे लैंडस्केप में घूमती रही कि कहीं कोई ईंट किसी कोने में, झाड़ी के नीचे या पेड़ के पीछे छिपी न रह गयी हो. इस तलाश में वह मीलों भटकती रही. एक दीवार से दूसरी दीवार पार करती रही और तब तक घूमती रही जब तक वह पूरा लैंडस्केप साफ न हो गया. अब उसके चारों ओर, जहां तक उसकी नजरें जाती थीं केवल दीवारें थीं—छह फुट ऊंची और चार फुट चौड़ी. फिर वह अपने चिरपरिचित चमड़े के लबादे में लिपटी यह सोचती रही कि अब क्या किया जाये कि तभी किसी के द्वारा झकझोरे जाने से उसका यह लैंडस्केप गायब हो गया. उसने सोचा कि अब वह लैंडस्केप उसे कभी नहीं दिखाई देगा, डायल ने उसके टखनों को चूमा और हंसा.

काफी दिन बाद वह वापस लौटी. लैंडस्केप जरा भी नहीं बदला था. इधर-उधर कोई ईंट बिखरी हुई नहीं थी. केवल साफ-सुथरी दीवारें खड़ी थीं जो श्वेत-श्याम सेट पर काली दिखाई दे रही थीं. ब्रायोनी अपने चमड़े के लबादे में लिपटी सोच रही थी कि अब क्या किया जाये. अब उसे किसी काम की जल्दी नहीं थी. बल्कि उल्टे वह बोर ही हो रही थी. वह निश्चित रूप से जान रही थी कि इन दीवारों ने किसी को छिपा रखा है और वह जानना चाहती थी कि वह कौन है? वह दीवारों के बीच से गुजरती हुई दीवारों पर गहरी नजर डाल रही थी. वह जानती थी कि वह जो भी है, उसके साथ जिंदगी भर आंख-मिचौनी खेल सकता है. जब 800वां आदमी आया तो यह दृश्य गायब हो गया और ब्रायोनी सोचने लगी, पहले के मुकाबले इस बार उसे वह दृश्य अधिक याद आया था. जब वह आदमी उसकी तरफ पीठ करके सो गया था तब भी भ्रमित रही पर तीसरी बार उसने एक ही बात महसूस की कि अब उसके लिए एक ही काम शेष रह गया है—दीवारों को तोड़ देना. उसने सोचा कि शायद इसीलिए सीमेंट नहीं था.

पहले जहां निर्माण की शीघ्रता थी, वहीं अब ध्वंस का ऊबाऊ निश्चय था. पहले जहां एक उतावली उसमें थी कि जहां भी ईंट दिखी, पहुंच जाती, अब उसकी जगह एक प्रकार की क्रमबद्धता आ गयी थी. वह दीवारों के बीच में आ गयी थी. फिर उसने उस जगह की तलाश की जहां वह पहले थी और फिर अपना काम शुरू कर दिया. उस छिपी हुई आकृति को पराजित करने का यही एक रास्ता बचा रह गया था.

एक रात वह अपने विशालकाय बिस्तर पर अकेली ही जागी. सपने में वह ईंटों को उठा-उठाकर एक ओर रख रही थी. तब से वह यह काम कभी भी और कहीं भी कर लेती थी. दरअसल वह जान गयी थी कि अगर वह अकेली हो तो यह काम हल्का और कम थकाने वाला है. हालांकि अब भी कई बार ऐसे होता था कि कोई आदमी उसकी ओर देखता और वह वसंत की धरती की तरह बिछ जाती. फिर भी उसे एकांत अच्छा लगता और उसकी पक्की धारणा बन गयी थी कि यदि वह एक बार लैंडस्केप को दीवारों से खाली कर दे तो जो छाया दीवारों के पीछे से उसके साथ आंख-मिचौनी खेलती है, सामने आ जायेगी. तब वह सचमुच आजाद हो जायेगी और उस जगह घूमने की जरूरत नहीं रहेगी.

पर दीवारें तो बहुत थीं, जितनी उसने बनायी थीं, उनसे हजारों अधिक. वे बढ़ती ही जा रही थीं. जब भी ब्रायोनी को लगता कि वह आखिरी छोर तक पहुंचने वाली है. तभी क्षितिज पीछे चला जाता और उसे सफेद सेट पर काले रंग की दीवारों की असंख्य पंक्तियां खड़ी दिखने लगतीं.

जैतून के पेड़ों और बड़े-बड़े खेतों वाले गांव से गुजरते हुए उसकी नजर रास्ते में एक अनाज के गोदाम पर पड़ी. उसकी चिनाई इस प्रकार की कि सीमेंट केवल ईंटों के दो तरफ लगा था और दीवारें किसी ईंटों के बने छत्ते जैसी लगती थीं. बीच में जगह इसलिए छोड़ी गयी थी ताकि हवा भीतर जा सके. उसकी रीढ़ में जैसे झुरझुरी होने लगी. वह इसके भीतर देख सकती थी. सामने की दीवार और उसके पार भी. . .जैतून के पेड़. वह वहीं दीवार से पीठ सटाकर बैठ गयी और लैंडस्केप में प्रविष्ठ हो गयी. एक-एक ईंट करके दीवारों को गिराने के कष्टप्रद काम के बजाय बेहतर होगा कि प्रत्येक स्तर की इतनी ईंटें हटा ली जायें कि उनके पीछे कोई छिप न सके. उसने अगली दीवार की जड़ से ही अपना काम शुरू कर दिया. उसने एक ईंट को अपनी जगह से खिसकाया.

लेकिन यह काम इतना आसान न था. पूरी दीवार ही हिलने लगी क्योंकि सीमेंट तो कहीं लगा ही न था. पर ब्रायोनी अपने काम में लगी रही और उसने प्रत्येक स्तर पर छेद बना दिये. काम खत्म हो गया तो उसने देखा कि वह इनके बीच में से अच्छी तरह देख सकती है. वह खुशी से झूम उठी. जल्दी ही उस आकृति से उसका सामना हो सकेगा. उसने अपनी आंखें खोलीं और देखा कि एक आदमी गोदाम की दीवार में बने छेद में से उसे देख रहा है. ब्रायोनी मुस्करायी और समर्पित हो गयी. वह बहुत खुश थी कि उसे अपने ऊपर किसी प्रकार का कंपन महसूस हुआ. यह 999वां आदमी थी, जो दरअसल एक लड़का था. उसका बाप इस गोदाम का मालिक था. उसका नाम नेयेद था.

उन्होंने खेतों में जाकर प्यार किया. लड़का उसके एक-एक अंग के रहस्य को समझ लेना चाहता था. और वह अपनी श्रमसाध्य दुनिया में लौट गयी. उसे आश्चर्य हो रहा था कि ये दीवारें कितनी मजबूत हैं जो ईंटों के हटाने से भी नहीं गिरतीं.

थोड़ी देर बाद उसने एक दीवार के छेद में से देखा, सामने की दीवार पर उसी सीध में एक छेद था. इस प्रकार दीवारों के छेदों के क्रम में से दूर तक देखा जा सकता था. अचानक उसने एक और ईंट खिसकायी कि तभी एक आदमी का हाथ दिखाई दिया. लंबी-लंबी उंगलियों वाला यह हाथ काफी परिचित था. ब्रायोनी को डेल की याद आयी जो सोने से पहले उसकी उंगलियों के सिरों को चूमा करता था. वह डेल-डेल चिल्लायी और उसे देखने के लिए ऊपर उचकी पर वह जा चुका था. अपनी निराशा से उबरने के लिए उसने आंखें खोल लीं और देखा कि नेयेद अंगूरों के बगीचे से होता हुआ उसकी ओर आ रहा था. फिर जैसे ही वे प्यार करने लगे, लैंडस्केप बीच में आ धमका. ब्रायोनी रुक गयी और उठकर खड़ी हो गयी. फिर वे एक दूसरे की बांहें थामे अंगूर के बगीचे में टहलने लगे कि पता नहीं कैसे अगली ईंट खिसकी और जमीन पर गिरी. उसके पीछे उसे सुपरिचित मजबूत कंधे दिखाई दिये. वह चिल्लायी—"नेलेन! नेलेन!" पर जब तक वह दीवार के किनारे तक आ पाती, वह जा चुका था और उसे दूसरी दीवार के पास एक छाया जाती दिखाई दी.

अगले दिन पहली बार उसने तथा नेयेद ने एक होटल के छोटे से बिस्तर पर प्यार किया. तभी एक तूफान सा आया और उसने गर्मी की हवा को ठंडा करके कमरे को अंधेरा कर दिया. . वह झुकी और ईंटों की चौखट के बीच में से देखा. वह जानती थी कि अब उसे डायल का मुस्कराता चेहरा दिखाई देगा. और ऐसा ही हुआ. उसका चेहरा आंखों तक ही प्रकट हुआ. वह उस छेद में से हाथ डालकर उसके आंखों के पपोटों और भवों को छू सकती थी. पर तब उसकी मुस्कराहट दिखाई नहीं देगी. इसलिए वह उसे देखती रही और वह उसे देखता रहा. अचानक उसका चेहरा डायल से बदलकर नेलेन और फिर डेल का चेहरा बन गया. अब उसे आंखें खोलकर नेयेद को देखने की भी जरूरत नहीं रही क्योंकि अब उसी का चेहरा उसे ईंटों के बीच के छेद में से दिखाई दे रहा था और तब तक दिखाई देता रहा जब तक कि वह अजनबी सा लगने लगा और फिर पूरा लैंडस्केप गायब हो गया.

अनुवाद : सु. उ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैशन प्ले

शिशुतीर्थ

• रवींद्रनाथ ठाकुर

1930 में जब रवींद्रनाथ म्यूनिख में थे, तब किसी ने उन्हें एक ऐसे गांव के बारे में बताया, जो बावेरिया स्थित 'ओवर मैगर्न' नामक नदी के किनारे बसा था और जहां एक बार हैजे की महामारी गांववालों द्वारा ईसा के भजन एवं मनन-चिंतन से दूर हो गयी थी. उन्हें यह भी बताया गया कि वहां एक-दो दिन में ईसा मसीह के जीवन की एक कथा पर आधारित एक नाटक खेला जाने वाला है. उस गांव में जाकर, वह नाटक देखने की इच्छा उनके मन में बलवती हो उठी.

ईसा के जीवन के अंतिम अंश की दुखमय घटनाओं पर आधारित नाटक को 'पैशन प्ले' कहा जाता है. यूं तो यह नाटक अधिकांश ईसाई देशों में खेला जाता है, किंतु इस गांव के लोग इसे कुछ ज्यादा ही श्रद्धा के साथ खेलते हैं. उनकी श्रद्धा का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि उसमें अभिनय करने वाले सब कलाकार, अभिनय से पूर्व, कई दिनों तक, शुचिता के सब नियमों का पालन कर, ईसा के ध्यान में निरत रहते हैं.

नाटक इतना अधिक सम्मोहक था कि कई दिनों तक उनका मन ईसा के आत्मोत्सर्ग की पावन-प्रेरक गाथा से अभिभूत रहा. दो दिनों तक वे किसी से बोले नहीं और बराबर अंग्रेजी में एक काव्य—जो मूलत: अंग्रेजी में लिखा गया उनका एकमात्र काव्य है—लिखते रहे, जो 1931 में 'द चाइल्ड' (शिशु) नाम से प्रकाशित हुआ. भारत लौटने पर उन्होंने 'शिशुतीर्थ' नाम से इस काव्य का बंगला में अनुवाद भी किया. मुक्त छंद की 228 पंक्तियों में संपूर्ण इस काव्य के, कुछ अंश आगे प्रस्तुत हैं. . .

जब मेघ विदा हुआ, तब पूर्व दिशा में शुक्र तारे का उदय हुआ. पृथ्वी के कक्ष से विराम का दीर्घ नि:श्वास निकला. शाखाएं थरथर होने लगीं और पत्ते मरमर. "समय आ पहुंचा." भक्त प्रवर ने कहा. "कैसा समय?" किसी ने पूछा. "यात्रा का समय," भक्त प्रवर ने उत्तर दिया. कैसी यात्रा, सबने सोचा, किंतु पता किसी को न लग पाया.

अंधेरा दूर हुआ. उषा के स्पर्श से पृथ्वी में सिहरन हुई. प्राणों के प्रवाह सृष्टि का उर अचंचल हो गया. सबके कानों में न जाने कहां से उठी एक ध्वनि गूंजने लगी, "चलो, हम सब अपने जीवन को चरितार्थ करें." ध्वनि में गति हुई और वह कोटि-कोटि कंठों में निनादित हुई. पुरुषों ने भक्तप्रवर को प्रणाम किया, स्त्रियों ने ललाटों पर हाथ रखकर उसे निहारा और बच्चों ने उसे देखकर तालियां बजाते हुए नृत्य आरंभ कर दिया. प्रभात की पहली किरण ने भक्तप्रवर के माथे पर कुंकुम-तिलक लगाया. सबने एक स्वर से कहा, "हम तुम्हारी वंदना करते हैं, बंधुवर !"

यात्रिक आ पहुंचे—सागरों को पार करके और पर्वतों तथा पथहीन भूभागों को लांघकर, कोई नील नदी को पार करके आया, कोई गंगा को. किसी ने अरण्यों को पार किया और किसी को नगर का सिंहद्वार पार करना पड़ा. कोई पैदल आया तो कोई घोड़ों-ऊंटों पर चढ़कर. कोई पताका फहराते हुए रथ पर सवार होकर आया. अपने अमात्यों के साथ राजा भी आये और कंथाधारी भिक्षु भी. चपल गति युवक भी आये और ज्ञानवृद्ध तथा वयोवृद्ध आचार्य भी. थालों में चंदन, गगरियों में सुगंधित जल तथा अधरों पर मृदु हास लिये बालिकाएं, माताएं, वधुएं और कुमारियां भी आ गयीं. भड़कीले प्रसाधनों, वस्त्रों और कर्कश स्वर वाली वारांगनाएं भी आ पहुंची. लूले-लंगड़े और अंधे-आर्त्त लोगों के साथ-साथ धर्मनिष्ठ साधु भी आये.

भक्तप्रवर चले जा रहे हैं, पत्थरों और कंकड़ों से भरे दुर्गम पथ पर और उनका अनुसरण कर रहे हैं—राजा और रंक, युवक और वृद्ध, बलवान और दुर्बल. अनुयाइयों में कुछ संशयालु हैं और कुछ मन ही मन क्रुद्ध. हिसाब लग रहा है. कितनी राह शेष है. उनके अनुयाइयों की भौंहें तनी हैं. वे जाने के इच्छुक नहीं हैं, लेकिन उनकी अधूरी आशाएं ही उन्हें आगे ले जा रही हैं. वे आगे बढ़ रहे हैं, क्योंकि लौटना असंभव लगता है. विराम को उन्होंने इस कारण त्याग रखा है कि सबके सिर पर त्रिशंकु की भांति, 'न इधर के न उधर के' हो जाने का भय सवार था.

और भक्त प्रवर ?

उनके ओठों पर तो बस एक गीत है, जो उनकी यात्रा को आनंदमय बना रहा है. इस प्रकार चलते-चलते कई दिन बीत गये. सबके हृदय में अवज्ञा जागने लगी. चेहरों की मृदुता कम होने लगी. अज्ञान के 'मौन निमंत्रण' की अनुभूति होने लगी.

एक रात, वे सब यात्रिक वटवृक्ष के नीचे बैठे ही थे कि वायु के झोंके ने बत्ती बुझा दी और चारों ओर अंधेरा फैल गया. हां, एक यात्रिक उठा और भक्त प्रवर से कहने लगा, "तुम झूठे हो! सुनो मित्रो, हम सबको इसने ठगा है."

अब हर कोई भक्त प्रवर को धिक्कारने लगा. सबने जी खोलकर उसकी निंदा की. एक आततायी ने तीव्रता से उसका तिरस्कार करने के पश्चात् उठकर भक्त प्रवर के मर्म पर वार किया और तब तक करता रहा, जब तक भक्त प्रवर का निर्जीव शरीर पृथ्वी पर नहीं लुढ़का.

. . .रात के सन्नाटे में केवल निर्झर का कलकल स्वर सुनायी दे रहा था. वातावरण में जुही की कली का सौरभ समाया था, लेकिन स्त्रियां रो रही थीं. पुरुषों के मन संदेहाकुल थे. रोती स्त्रियों को कठोरता से चुप रहने का आदेश देकर पुरुषों ने उन्हें चुप कर दिया और भूंकने वाले कुत्ते उनके कोड़ों के आघात से चुप हो गये. अंधेरी और खामोश रात जब दु:सह हो गयी, तब अपराध के बारे में सब में जोरदार बहस शुरू हो गयी. सभी जोर से चिल्लाने लगे. पौ फटने तक चिल्लाते रहे.

सूर्य की पौ फटी तो प्रकृति नटी का रंग बदला. सब चुप हो गये. भयभीत से, स्तब्ध से. सूर्य की किरणों ने संत भक्तप्रवर के लहूलुहान ललाट को हल्के से स्पर्श किया. स्त्रियां बिलख-बिलखकर रोने लगीं. पुरुषों ने पश्चाताप से मुंह ढक लिये. वे पूछ रहे थे, "अब हम किसका अनुसरण करेंगे? कौन करेगा हमारा मार्ग निर्देशन?" पूर्व दिशा के एक वृद्ध ने कहा, "जिसको हमने मारा, वही हमारा मार्ग निर्देशक होगा."

सभी नतमस्तक हो गये. किसी के पास कहने को कुछ न था.

पूर्व दिशा के वृद्ध ने फिर कहा, "संदेह के वशीभूत होकर हमने उसे मार्ग से हटाया. क्रोध के वशीभूत होकर उसे मार डाला, किंतु, अब हम प्रेम के वशीभूत होकर, उसे गले लगायेंगे. मरण को वरण कर, वह मृत्युंजय हुआ है. अब वह हमारे अंत:करणों में जीवित है." सभी खड़े हो गये, और एक स्वर से गाने लगे, "जय, जय, जय, हे मृत्युंजय !" □

प्रस्तुति : हरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्ना केरेनिना को तॉल्स्तोय की तलाश है

ब्रजेश्वर मदान

> साहित्य सृजन की प्रक्रिया के मूल में किसी न किसी प्रकार के आवेग का होना जरूरी है. यह आवेग किस प्रकार विश्व साहित्य में विभिन्न रूपों में प्रतिफलित होता है तथा किस प्रकार अविस्मरणीय पात्रों के रूप में अपने को चिरजीवी बना देता है, उसी का विश्लेषण कर रहे हैं सारिका-पाठकों के सुपरिचित कथाकार

आदमी और प्रकृति के रिश्तों ने दुनिया के महान साहित्य की संरचना में अहम भूमिका अदा की है. जब हम आदमी और प्रकृति के रिश्तों का जिक्र करते हैं तो आदमी की अपनी प्रकृति को भी उससे अलग नहीं किया जा सकता. विशेष रूप से साहित्य में भावावेग की स्थितियों के विश्लेषण के लिए आदमी की मूल प्रकृति में जो मूल भावनाएं हैं, उनको समझना बहुत जरूरी है.

आज साहित्य में मादाम बावेरी, अन्ना केरेनिना, लेडी चैटरली या दोस्तोयव्यस्की के इडियट में रोजोगिन और नताश्या जैसे जो चरित्र हैं, वे आदमी की इन्हीं मूल भावनाओं और सामाजिक स्थितियों के टकराव से ही उत्पन्न हुए हैं. ऐसे चरित्र हिंदी साहित्य में भी मिल जायेंगे, जो समाज की प्रचलित मान्यताओं के अनुसार चलने से इंकार करते हैं. वे अपने समय और समाज की उन स्थितियों के खिलाफ पूरे पैशन से जीते हैं, जो उन्हें स्वीकार्य नहीं होती. यहां एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि आदमी की मूल प्रकृति में जो मूल भावनाएं हैं, वह मानव विरोधी नहीं हैं, उसकी जो भावनाएं आत्मघाती सिद्ध होती हैं, वह उनसे ऊर्जा ग्रहण कर सकता है. होता यह है कि या तो आदमी अपनी प्रकृति को समझ नहीं पाता या उसके दबाव में उसे बिना जाने उससे संचालित होता है. यही कारण है कि प्रकृति को न जान पाने के कारण ही कहीं उन मूल भावनाओं पर 'सप्रैशन' होता है और कहीं वह समाजविरोधी रूप ले लेती हैं. सामाजिक नियमों के साथ टकराव की स्थितियां ही आदमी की भावना को फीड करती हैं—कहीं उन्हें कमजोर बनाती हैं और कहीं प्रबल.

भावावेग की स्थिति और चरित्रों को उनके समय के सामाजिक परिप्रेक्ष में ही देखा और परखा जाता सकता है. यही वजह है कि 'अन्ना केरेनिना' में अन्ना केरेनिना का प्रवेश अठारहवें अध्याय में होता है. क्योंकि तॉल्स्तोय जरूरी समझते थे कि पहले पाठक को उस सामाजिक परिप्रेक्ष से परिचित करवा दिया जाये, जिसमें वह चरित्र उपजा है. उसी तरह फ्लाबेयर की मादाम बावेरी को फ्रांस के तत्कालीन समाज में देखा जा सकता है. वह समाज जो सामंतवादी औद्योगिकीकरण की तरफ बढ़ रहा है, 'मादाम बावेरी' उस संक्रमण काल में बदलते हुए रिश्तों और टूटते हुए मूल्यों का ही एक दस्तावेज है. यहां यह भी उल्लेखनीय है कि 'मादाम बावेरी' को शुरू में अनैतिक रचना करार दे दिया गया था. उसी तरह डी. एच. लारेंस का 'लेडी चैटरलीज लवर' भी इंग्लैंड के आभिजात्य समाज की नपुंसकता से उत्पन्न हुआ था, जिसके नैतिक मूल्यों को लारेंस ने तार-तार करके रख दिया है.

बात बहुत साफ है कि 'अन्ना केरेनिना' के पैशन को फीड करनेवाली स्थितियां उस समय के समाज में थीं. इसी तरह 'लेडी चैटरलीज लवर' की इंग्लैंड के अभिजात्य समाज में लेडी चैटरली का चरित्र समाज में औरत की स्थिति को भी रेखांकित करता है. और वह जायदाद के हक के साथ जुड़ी है. लेडी चैटरली का पति, बच्चा स्वीकार कर लेता अगर वह किसी अभिजात से होता.

भारत में तो वर्ण प्रधान समाज के लिए महाभारत के चरित्र आज भी आर्किटाइप बने हुए हैं. चाहे वह कुंती का चरित्र हो या कर्ण का. भावावेग की स्थितियां महाभारत में भी कम नहीं हैं. युधिष्ठर जुए में द्रोपदी तक हार जाता है, यहां भावनाओं पर नियंत्रण न होने का कारण सामंती समाज था. हम उसे सामंती अहम के साथ जोड़ सकते हैं. वह अहम आज भी पूंजीवादी समाज में परिवारों के संघर्ष व पतन का चित्रण करनेवाले साहित्य में देखा जा सकता है.

जायदाद के हक के साथ जुड़कर औरत की मूल भावनाओं का कैसे शोषण होता है, यह आज की कथा-कहानियों में भी देखा जा सकता है. रमेश बतरा की कहानी 'फाटक' में जानकी की शादी एक जमींदार से हो जाती है. वह बूढ़ा जमींदार जानकी से विवाह इसलिए करता है, क्योंकि उसे जायदा[द के] लिए वारिस चाहिए. और जानकी उ[सका] बदला इस तरह लेती है कि बच्चे को [गर्भ] से निकलते ही जांघों में दबाकर मार डाल[ती है.] समाज के साथ इन विरोधी स्थितियों [के] कारण ही साहित्य में हीर-रांझा और सो[हनी] महिवाल जैसे अमर-चरित्र आये हैं. होता [यह] है कि समाज आदमी से एथिकल होने की [मांग] करता है, जबकि भावावेग में रिश्ते एथीरि[यल] रूप ग्रहण कर लेते हैं. हिंदी साहित्य में इस[की] मिसाल मीरा और महादेवी में मिल जा[येगी.] एथीरियल को हमारे यहां अध्यात्म के सा[थ] जोड़ दिया जाता है, जबकि उसके [मूल] संबंध बिल्कुल शारीरिक स्तर पर रह गये [हैं.] पिकासो की एक पेंटिंग में तो घोड़े भी ज[ंगल] की तरफ भाग रहे हैं, क्योंकि प्रकृति में [ही] स्वतंत्रता है. लेकिन यहां तो आदमी [का] जिक्र है. जब सब कुछ रिलेटिव है तो आद[मी] ही नहीं, जंगल भी आदमी तक पहुंच सकता [है.] जैसा कि बर्ट्रेंड रसेल ने कहा था—'[जैसे] आदमी बिल्डिंगों तक जाता है वैसे बि[ल्डिंगें] भी आदमी की तरफ आती हैं.'

हमारे यहां नैतिकता और मूल भावना[ओं] में हमेशा लड़ाई रही है. इस दृष्टि से भग[वती] चरण वर्मा की 'चित्रलेखा' को एक उल्ले[ख]नीय रचना माना जा सकता है. [ज]हां नैतिकता पर आदमी की मूल भावना[ओं] की विजय होती है.

दोस्तोयवस्की के चरित्रों ने आज तक [ ] संसार की इंटलैक्ट को विचलित किया [है.] उनके यहां आदमी अपराध करने के [ ] उन स्थितियों की जांच-पड़ताल भी करता [है.] इसमें संदेह नहीं कि दोस्तोयव्यस्की ने दुनि[या] को जिस तरह समझा है, बहुत कम [लोग] समझ पाये हैं. उनके चरित्र अपने व्यव[हार] और कार्य-कलापों में भावावेग की च[रम] स्थितियों तक पहुंचते हैं. चाहे वह रोजो[गिन] ही हो जो नताश्या को कत्ल करके निर्लि[प्त] भाव से बैठा है. यही नहीं, मूल भावना[ओं] के आवेग से उपजे उनके चरित्र समाज [की] विकृतियों को भी सामने लाते हैं. नै[तिक]

बंधन आदमी की प्रकृति के शुरू से विरो[धी] रहे हैं और अक्सर उससे अप्राकृतिक [और] अस्वाभाविक व्यवहार की मांग करते रहे [हैं.] यहां तक कि धर्म तो आदमी को बता [रहा] रहा है कि यह संसार सिर्फ मोह-माया [है.] यह कहकर वह आदमी को उसकी मूल प्र[कृति] के विरुद्ध दुनिया से विरक्ति का [ ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाने की कोशिश करता रहा है. काम भावनाओं को भी सिर्फ संतान उत्पत्ति तक ही अनिवार्य मानता रहा है. हमारे यहां इसका उदाहरण कालिदास है, जिन्होंने 'कुमार संभव' लिखा. देवताओं की रक्षा के लिए एक सेनापति की जरूरत है और वह जरूरत तभी पूरी हो सकती है जब शिव, पार्वती से संतान उत्पन्न करें. लेकिन आज कुमार संभव का जमाना है. परिवार नियोजन के लिए गर्भ निरोधक गोलियों ने सब प्योरटीन एथिक्स पर गोली चला दी है. इससे पता चलता है कि नैतिक मूल्य समय और समाज के साथ बदलते रहते हैं.

शरतचंद्र का 'देवदास' सामंती समाज के पतन का बहुत बड़ा प्रतीक है. दुनिया के इतिहास में भी देखा गया है कि अक्सर पतन के बाद मानव समाजों में सांस्कृतिक क्रांतियां होती हैं. कुछ अरसा ठीक-ठीक चलता है फिर मूल्य ढीले पढ़ने लगते हैं. इतिहास में पतन और संक्रमण काल ही साहित्य को डॉन क्विक्ज़ोट जैसे चरित्र दे जाते हैं. यहां आदमी समाज से नहीं बल्कि अपने मूल्यों से संचालित होता है. और कई बार वे मूल्य बहुत मानवीय होते हैं. ऐसे मूल्य सार्त्र और कामू को दूसरे महायुद्ध ने दिये. उनके यहां अपने-अपने मूल्यों के अनुसार भावावेग की स्थितियों को जीनेवाले और अपने समय की त्रासदी को दर्शानेवाले चरित्र मिल जायेंगे.

आज के लेखन में ऐसे भावावेग से परिपूर्ण चरित्र योगेश गुप्त के उपन्यासों में मिलते हैं. इन चरित्रों को आज की मशीनी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया जा सकता है. ट्रेजडी यह है कि इन चरित्रों का मूल्यांकन न होने के बराबर हुआ. योगेश के 'अंधेरा और अंधेरे', 'अकारण' और 'अनायास' में ऐसे चरित्र हैं जो औद्योगिक संस्कृति से और समाज से विभिन्न रेशे लेकर आज के आदमी और उसके संबंधों की त्रासदी को बुनते हैं. जैसे 'अंधेरा और अंधेरे' में नायिका अंत में नायक की पत्नी से कहती है, "तुम्हारे लिए तो वह बहुत पहले ही मर गया है, लेकिन मेरे लिए आज मरा है. जरूरत इस एथीरियल संबंध को आध्यात्मिक नहीं बल्कि भौतिक अर्थों में समझने की है. 'उनका फैसला' में भी शोभा के चरित्र में देखा जा सकता है कि कैसे इस समाज ने औरत से किसी से सहानुभूति दिखाने की भावना भी छीन ली है. लेकिन ऐसे चरित्रों का हश्र क्या होता है! आज भी समाज में देखा जा सकता है कि किसी अन्ना केरेनिना ने रेल के आगे छलांग लगाकर आत्महत्या कर ली, समाज में रोजोगिन और नताश्या हैं, लेकिन उनकी त्रासदी को चित्रित करनेवाले तॉल्स्तोय, दोस्तोयव्स्की आज नहीं हैं.

अमृता प्रीतम ने अपनी कविता में लिखा है. **अंज आखां वारिस शाह नू किते कबरां विचों बोल. ते अंज किताबे इश्क दा कोई अगला वरका खोल.** बात वही है कि आज भी मानव उसकी प्रकृति और उसके संबंध चित्रण के लिए वारिसशाह जैसे लेखक की मांग करते हैं. जिन्होंने पूरे भावावेग से जीनेवाले और मरनेवाले हीर और रांझे जैसे चरित्र साहित्य को दिये. □

आदमी आत्महत्या करेगा—पृष्ठ 57 से जारी

आदमी सन्नाटे में था. उसकी योजनाएं, भविष्य और मंसूबे और रहस्य... फिलहाल सब स्थगित और अनुपस्थित थे. पिछले दिनों वह इस कदर नालायक हो गया था कि सेक्स तक भी नहीं पहचान सका. शक्ल देखते हुए भी शरीर का अंदाजा नहीं लगा सका?

आदमी खुद से जूझा, उलझा और बड़े-बड़े आंसू रो दिया—उस तन्वंगी के मुंह-खोले-कंधों पर सिर टिकाकर!... सब कुछ आतंकित, रोमांचित और बेजोड़ सौंदर्य के रसपान में गुजर गया. आदमी की जिंदगी की उपस्थिति साकार हुई और आदमी का सिंहासन मुस्तैद था. अब राजा-रानी की शब्दरक्षा के लिए आदमी को रक्षक नियुक्त कर दिया गया.

उसके बाद कई वर्षों तक आदमी वफादारी की तैयारियां करता रहा. अस्सी करोड़ जनता के सुख के लिए. आदमी को गर्व हो उठता. वह सब कुछ को एक डायरी में लिखकर अस्सी करोड़ के प्रति एक लगाव उंडेलता. सरकारी कागजों पर जांच का निर्णय कुछ और होता लेकिन सही निर्णय आदमी की डायरी में होता.

इस डायरी की सुरक्षा के लिए आदमी शहीद हो सकता था. वह डायरी एक दस्तावेज हो सकती थी. कठोर सत्यों की बयानगी पेश करती वह जन-संपत्ति हो सकती थी. आदमी कुछ देर के लिए भले ही दूसरी औरतों के पेटीकोट का मेहमान बनता जरूर लेकिन उसका यह अपराध डायरी में आ जाता.

डायरी और ध्वनि-टेपों के बारे में पत्नी को कुछ मालूम नहीं—चूंकि आदमी को कुछ न कुछ अंश तक तो अकेला रहना ही होता है. आदमी इस अकेलेपन को लेकर बहुत सतर्क भी है. किसी दुर्घटना के बावजूद वह डायरियां और ध्वनि-टेप कैसे जनता तक पहुंच जायेंगे, यह प्रबंध आदमी कर चुका है. वह निश्चिंत है.

जब सारी ध्वनि-टेप और डायरियां धू-धू करके जल रही थीं, तब आदमी राजमहल से घर लौटा था. "मैडम...!" वह चीखा था, "मैं अपनी जिंदगी से ज्यादा, जिंदगी की इस गवाही को चाहता हूं..." पत्नी मुड़ी, वह रहस्यमय तरीके से सेक्स बदलकर सुरक्षा अधिकारी बन चुकी थी.

अधिकारी स्प्रिंग की तरह उछला और आदमी के सामने आ गया. सुरक्षित होने का अट्टाहास उछालता हुआ. आदमी को एकदम आकार लेना पड़ा. सुरक्षा अधिकारी से भी अधिक तेज और चालाक और आक्रामक और धारदार होना पड़ा. अगर वह आदमी नहीं होता तो सुरक्षा अधिकारी को जान से न मार पाता.

डायरी और ध्वनि-टेपों की राख आदमी के आंसुओं से ठंडी हो गयी थी. सुरक्षा अधिकारी को खत्म कर डालने के बाद (भी) आदमी को लग रहा था कि वह अब फिर अकेला हो गया. 'सुरक्षा अधिकारी' के बिना वह रात को सो सकता है, लेकिन बिना डायरी और ध्वनि-टेपों के वह जिंदा नहीं रह सकता.

आदमी की जिंदगी की गवाही अब गुमनाम हो गयी है. आदमी का यह घाव ताजा है. आदमी को लग रहा है कि पूरी जिंदगी गंदगी का एक ढेर है. आदमी की कलापूर्ण चतुराइयों को ध्वस्त कर दिया गया है और होंठ अपनी बात कह देने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं. जिंदगी के एक किनारे पर बैठकर जंगलीपने में दिन गुजार देने का कोई मतलब नहीं है. मानवता के पैकिंग के भीतर जो फैशनपरस्त अमानवीयता है, उस कुत्तेगीरी से आदमी का कोई सरोकार नहीं है. जिंदगी को एक प्रयोग की तरह आदमी जीने के पक्ष में नहीं है. हम-बिस्तर प्रेयसी की जगह सुरक्षा अधिकारी को आदमी नहीं झेल पाता है और विश्वासों की इस अप्रसन्नता को भी आदमी समाप्त करना चाहता है.

इसीलिए आदमी राजधानी आया है. अभी उसकी जिंदगी शेष है. उसने दोहरा जीवन जिया है, लेकिन वह जिंदगी को चुटकुले में तबदील नहीं होने देगा. वह भले ही इसे एक व्यावहारिक चुटकुला बना देगा लेकिन जिंदगी को नष्ट नहीं होने देगा. और इसलिए आदमी आत्महत्या करेगा—वह आदमी जो मैं हूं... और हां, हत्या भले ही एक पक्षीय होती हो लेकिन आदमी जानता है कि आत्महत्या एक पक्षीय नहीं होती. □

● **65/83 सेक्टर-तीन, रामकृष्ण आश्रम मार्ग, गोल मार्किट, नयी दिल्ली-110001**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांप का पिटारा

हशमत

> हशमत शैली से लिखा गया कृष्णा सोबती का यह आलेख तीसरी नजर स्तंभ की पहली किस्त (अप्रैल प्रथम, १९८५ अंक) पर प्रतिक्रिया भी है तथा कुछ विशिष्ट मुद्दों का खुलासा भी. हम समझते हैं कि इस आलेख को एक अच्छी बहस का मुद्दा बनाया जा सकता है और इस बहस के लिए हम आप सब साहित्य प्रेमियों को सादर आमंत्रित करते हैं. . .

मजमेबाज जनाब रा.व. की खिदमत में हशमत का आदाब.

क्यों साहिब. आप ही हैं न वह मजमेबाज, जो हाथ में परचम उठाये मजमेबाजी के खिलाफ जिहाद कर रहे हैं और खुद ही जोर-शोर से मजमेबाजी की पैरवी भी. वैसे पेशेवर मजमेबाज होकर आपको मजमेबाज कहलाने में कोई एतराज तो न होना चाहिए. है क्या? अगर है तो जाने दीजिए, हम आपको किसी दूसरे नाम से आवाज दे लेंगे.

इतना यकीन रखिए कि हमारी नीयत आपको न परेशान करने की है और न ही बेनकाब.

साहिब, मजमेबाजी में तो बला की हरकत है और हरकत में बरकत ही बरकत है. देखा जाये तो मजमेबाज हममें से कौन नहीं हो सकता? हम भी हो सकते हैं. आप तो हो ही सकते हैं. आपसे हमारा मतलब उस 'आप' से नहीं, जो 'तीसरी नजर' के नस्लवादी फिलासफर रा. व. 'आप' हैं. जिक्र तो उस 'आप' का है, जो हमारे [illegible] के होने से बाहर है.

आप पर छींटाकशी करने की हिमाकत तो भला हम कहां कर सकते हैं? आपके रोशन दिमाग में तो लटक रहा है दूधिया लट्टू 30 का और अपने यहां जल रहा है जीरो पावर. मुकाबला हो तो कहां से हो? कोई बराबरी ही नहीं साहिब. एक तरफ कुतुब मीनार और दूसरी तरफ एक लावारिस ईंट.

हकीकत तो यह है जनाब कि नस्लवाद या मजमेबाज की खोल में सब झूठ-सच, गरीबी-अमीरी, भुखमरी- खुशहाली, मजहब-सियासत, यहां तक कि अदब और अदीब भी समा सकते हैं. यह चोगा हो इतना बड़ा है कि पैराशूट की तरह लोगों को अपने में समेट लिया करता है.

हां, इस गलतफहमी में न रहियेगा कि आप ही वह 'नामवर' खलीफा हैं (हिंदी में नामवर तो अभी तक एक ही हैं) जो पहली बार लोगों को नस्लवाद के हिज्जे और मतलब समझा रहे हैं. याद रहे, कलमवाला जब भी बेवजह सियासी, अदबी और मजहबी मुद्दे उठाकर लोगों को पटाने की कोशिश करेगा, वह यकीनन एक न एक दिन ईमानवालों के हाथों धर लिया जायेगा. नस्लवाद से मिलता-जुलता एक और लफ्ज 'नक्सलवाद' अपने यहां एक खास तरह की पेशबंदी कर चुका है. अब आप नक्सलवाद को छोड़कर 'नस्लवाद' के बहाने कहना क्या चाह रहे हैं? इतना तो आप भी जानते ही होंगे कि 'नस्लवाद' का नारा हिटलर के नाम के साथ बराबर नत्थी रहा है.

अब अगर आप अदब के सिलसिले में भी उसे इस्तेमाल करने पर उतारू हैं तो यह भी बताइए कि वे कौन से अदबी और सियासी मुद्दे हैं, जिन्हें लेकर आप दो गिरोहों को लशा-पटा रहे हैं? दायें-बायें दोनों खेमों को एक दूसरे के खिलाफ क्यों भड़का रहे हैं? आप भी तो किसी के साथ होंगे, जो 'नस्लवाद' को जमाने के लिए इस मोथरेपन से खुले आम अपनी तालीम उछाल रहे हैं.

माफ कीजिए, आप जितने भी बड़े शातिर हों, हरूफ-शनास नहीं हैं. अपने शब्दों पर जरा गौर कीजिए. 'सेठी चंदों से चलती गोशालाएं और उनमें पलती हड़ियल और मरियल गउओं के झुंड रात के तीसरे पहर पिछले दरवाजों से ट्रकों में बूचड़खाने की ओर उनकी रवानगी.' उस्ताद, शब्दों के सामाजिक राजनीतिक संदर्भ भी हुआ करते हैं, जो उनकी नब्जों के साथ लगातार दौड़ते रहते हैं. क्या आप नहीं मानते कि ऐसे गंभीर ऐतिहासिक मामलों की ऐसी बेहूदा तामीद बांधने से बड़े-बड़े गुल खिल जाया करते हैं. दंगे-फसाद और गदर तक मच जाया करते हैं.

हाथ में फर्जी परचियां देकर पाठकों को गुमराह करनेवाला खिलवाड़ कम से कम लेखक के लिए तो गुनाह होना चाहिए. [illegible] रहे, यह खेल सियासत वालों का है, [illegible] बताइए कि 'नस्लवाद' का झंडा उठाये [illegible] किसके हिमायती हैं और किसके खिला[illegible] जो थोड़ा-बहुत अंदाजा हम लगा सकते हैं [illegible] यह कि आप अमरीकी जर्सी गउओं के ह[illegible] और हरियाणा के बैलों के खिलाफ हैं.

हरियाणा के सांस्कृतिक-साहित्यिक [illegible] गऊ, बल्द, गऊशालाओं और कुरुक्षेत्रीय [illegible] हिंदी के कंधे पर से निशाना लेकर जनाद[illegible] पर दागने चल दिये. कहीं आप हिसार [illegible] दोलत्ती खाये हुए नहीं हैं!

अंदरूनी पेंच तो आप जानें, हमें तो इ[illegible] ही कहना है कि भ्राता, ऐसा ऊंचा खेल [illegible] के लिए सिर्फ बौद्धिक काइयांपन ही काफी न[illegible] ऐसे मामलों में तालीम और करतब की [illegible] जरूरत हुआ करती है. अगर आप जरा खब[illegible] होते तो इस किस्म के घपलों में अपने [illegible] इस्तेमाल न हो जाने देते. वैसे भाषा की [illegible] को लेकर कोई छोटा-मोटा 'अहदनामा' [illegible] हो ही गया तो बात दूसरी है.

जहां तक आपकी ओर से लड्डुओं [illegible] खरबूजे के सफेद बीजों का जिक्र है, [illegible] लज्जतपसंदगी और चस्केबाजी का कुछ [illegible] अंदाजा तो हमें हो गया है. इजाजत हो [illegible] आपको लड्डू की जगह छैना-मुर्गी पेश की [illegible] इसे खाने के साथ ही आपके संस्कार और [illegible] में नब्बे फीसदी बदलाव होने की पूरी उम्[illegible] हैं हमें. सदियां गुजर गयीं आपको लड्डू [illegible] हुए, अब 1985 में अपना जायका बदल[illegible] कोशिश कीजिए.

जानते हैं आप, पाठकों को गुम[illegible] करने के खयाल से अपने लेख में [illegible] गन्ने का रस, शहतूत का [illegible] दही का मट्ठा और गुड़ का [illegible] सभी एक साथ उंडेल दिया है. तर्क [illegible] इस घोल में चींटियों की तरह दिख [illegible] इन लावारिसों को कोई बहुत बड़ा [illegible] ही चाटेगा. साहिब, घी सना चूरमा बना[illegible] काम लेखक को सौंप ही दिया जाये तो [illegible] शालीन ढंग की कूट-काट से कोई फायदा [illegible] जिस डालिए हमाम-दस्ते में और [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठा-ठा-ठा और चूरमा आपका इकसारा.

बुरा न मानियेगा, आपके नस्लवादी लेख की पतली झीनी 'आत्मा' को सड़ियल कुड़ियल दीमक चाट गयी है. उसी ने आपके अधकचरे तथ्यों का भी कबाड़ा कर दिया है. हमें आपसे पूरी हमदर्दी है. आपके हक में हम उस जिद्दी दीमक को गाली जरूर देंगे. बदबख्त ह. जा. दीमक.

अफसोस है तो इतना ही कि दीमक डंडे से नहीं डरती, न ही कंबख्त डंडे से मरती है. लग जाती है न एक बार तो ऐसी लगती है कि पांडुलिपियों से होती हुई दिमाग में पसरकर सब कुछ चट्ट कर जाती है.

आपकी अगली परेशानी 'त्याग' और 'भोग' की वर्ण संकरता है! आपकी मुद्रा से तो ऐसा लगता है, इसके लिए हम जैसे 'तंदूरी मुर्गे' खाये हुए लेखक ही जिम्मेवार हों! वैसे दिमाग पर कोई बोझ न पड़ता हो तो सोचकर बताइए हमें कि साहित्य में आपकी बुनियादी परेशानियां और सरोकार क्या हैं? चिंताएं क्या हैं? भाषा की शुद्धता क्या आपके जिम्मे है? अजीब लगता है न यह जानकर कि आप चंदे, गऊशाला और हिंदी के आश्रमीस्वरूप के नाम पर भटिंडा के रास्ते पहुंचे तो पहुंचे दूरदर्शन की महिला अनाउंसरों के पास. क्या कोई गुम-चोट खाये हुए हैं? 'श्रीमान' की जगह 'जनाब' बुलवाने में आपको किसी तरह की कुढ़न होती हो या हिंदी-प्रेम का ह्रास होता हो तो साहिब, हम आपको लगातार श्रीमान्-श्रीमान् कहकर पुकारते जायेंगे. वैसे आप 'श्रीमंत' कहलवाना चाहें तो इस जमाने में भी एक छोटी-मोटी रियासत खरीदने की पहल कर डालिए. मजमेबाजी में यह भी नामुमकिन नहीं है. इस हालत में हम आपको 'खम्माघणी' कह कर साष्टांग प्रणाम करेंगे. बुरा न मानना भ्राता, आपका चिंतन हमें ऐसे ही गुजरे हुए जमाने से जुड़ा हुआ लगता है.

भाषा की शुद्धता और शब्दों के चुनाव के सिलसिले में आपने उर्दू के शब्दों की बात उठायी है. कारगर, औजार, सरोकार बहरहाल, तहत, अमल, दिलचस्प, पुख्तगी, खारिज वगैरह. भोले भ्राता, शब्द चुनने से पहले इतना तो सही किया होता कि कम से कम दो-चार लफ्ज तो ऐसे हों, जिन्हें हम, आप या हिंदी के पाठक न समझ पाते हों. जिसके नाम पर आपने यह सारी नौटंकी रचायी है, उसकी सूची बनाने के लिए कुछ तो ढंग का जुगाड़ कर दिया होता. गलत को सही और झूठ को सच बनाने में काफी मेहनत की जानी चाहिए. वैसे आपके लिए तो इसे अंजाम देना इतना मुश्किल भी न होता. भला हिंदी पर खतरे की यह भूमिका बांधकर आप किससे किसकी हिफाजत करना चाहते हैं, यह कुछ साफ न हो सका. जिस ढंग से आपने 'नस्लवाद' के नाम पर भुनी खिचड़ी पकायी है, मालूम होता है वह हंडिया में ही घुआंख गयी है. अफसोस! आपकी प्रतिमा के रचनात्मक लौंग-इलायची और दालचीनी भी बेकार गये! गऊ, भैंस के तसले में ही डालनी पड़ेगी यह कीमती खिचड़ी. जर्सी गाय तो इसे खाने से रही, सूंघकर ही छोड़ देगी. कोई भूखा हिंदुस्तानी बैल मार ले तो मार ले. पिंजरा

> **कलम वाला जब भी बेवजह सियासी, अदबी और मजहबी मुद्दे उठाकर लोगों को पटाने की कोशिश करेगा, वह यकीनन एक न एक दिन धर लिया जायेगा. इतना तो आप भी जानते होंगे कि नस्लवाद का नारा हिटलर के नाम के साथ बराबर नत्थी रहा है.**

पोल के बहाने आप भाषाई साजिश पर क्यों उतारू हैं, यह बात तो अपने आप ही साफ हुई जाती है.

अदबी, मजहबी मुद्दे मिलाकर 'विजातीय शब्दों की फेहरिस्त' के नाम पर आपने जो शब्द पेश किये हैं, वे लगातार हिंदी में इस्तेमाल होते रहे हैं. उसमें जज्ब हो चुके हैं, मगर आपकी नजर में वे हिंदी की सांस्कृतिक छवि से दूर पड़ते हैं. आप इन्हीं विजातीय प्रभावों से हिंदी को आजाद करवाकर इसे ऋषि-मुनियों की आश्रमी भाषा का नाम देने पर उतारू हैं न!

इतना ही चाहते हैं न आप कि संस्कृत के आतंक में सिर्फ पुरानी पांडित्य परंपरा में लेखक ऐसे ज्ञान का विवरण प्रस्तुत करें, जिसमें व्याकरण, छंद, अलंकार, न्याय, वेद-वेदांत, पुराण, आयुर्वेद एवं तंत्र आदि नाना शास्त्रीय शैलियों का एक साथ जमावड़ा हो और हिंदी आधुनिक वैज्ञानिक समकालीन संस्कार से अलग-थलग अपनी आध्यात्मिक मुद्रा बरकरार रखे. जिसकी जितनी अक्ल हो, उसे उतना ही समझ में आये और साहित्य अपने आप में देव-वाणी की मुद्रा ही अपनाये रखे.

याद रहे, हिंदी अब मात्र हिंदी प्रदेशों की ही भाषा नहीं. अब हिंदी राष्ट्र भर की व्यापक चेतना की प्रतीक है. जो सांस्कृतिक और प्रबुद्ध सोच हिंदी साहित्य ने पिछले कुछ वर्षों से संजोयी है, वह किसी प्रदेश विशेष की नहीं, अपनी समग्रता में वह समूचे भारतीय मानस का प्रतिनिधित्व करती है. एक आप हैं, जो फूटी कौड़ियों की माला उसके गले में पहना रहे हैं. उसे 'गरीब' करार दे स्वयं इतरा रहे हैं और उसके नाम से ही अपने सर्वनाम की कीमत उगाह रहे हैं. हथिया रहे हैं. किस इरादे से, इस पर कुछ भी कहने की जरूरत नहीं, क्योंकि वह खुद ही अपना ऐलान कर रहा है.

भ्राता गड़े, मुरदों का नाम ले-लेकर आज तक कभी कोई जीता-जागता पुतला खड़ा नहीं हो सका. भाषाएं-बोलियां जब एक दूसरे के नजदीक आती हैं, एक दूसरे से टकराती हैं, घुलती मिलती है, तभी एक दूसरे में भाषाई सम्मिश्रण से नये-नये शब्द-प्रयोग छनकर लोक-मानस और भाषाओं द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं. ऐसी कोई भाषा नहीं, जो दूसरी भाषाओं के प्रभावों से बिल्कुल अछूती हो. अंग्रेजी की बात करें तो उसमें सैकड़ों भारतीय शब्द घुल-मिल चुके हैं. आपके मुहावरे में अंग्रेजी भाषा भी अशुद्ध हुई है. कोई भी भाषा अलग-थलग इकाई नहीं. वह अन्य भाषाओं से अलग होकर विकास नहीं करती. उसका विकास अन्य भाषाओं के संपर्क से होता है.

क्या पूछने की गुस्ताखी कर सकते हैं कि हिंदी में भारत भर की क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों की भाषाई और वैचारिक बहुलता आपको क्यों खटकती है?

माईजान, अदबी मौसम का 'फोरकास्ट' देखकर 'शुद्धता' के बहाने लोगों पर किये जाने वाले साहित्यिक हथकंडों से हमारी भी वाकफियत है. इसमें भाषा को घसीटना बड़ी घटिया और टुच्ची हरकत लगती है. खास तौर पर जब हिंदी के नाम पर खुले आम आप सांप्रदायिकता का प्रचार कर रहे हों. एक छोटा-सा सुझाव है कि जो कुछ भी जिसके बारे में कहना हो, उसमें चुटकी भर, झूठ-मूठ ही, धर्म-ईमान का पुट भी रहने देना चाहिए. ऐसा करने में जरा पुरानी परंपरा और आदर्शों की साख बनी रहती है भ्राता.

आखिर आपको यह दिमागी घपला हुआ तो कैसे हुआ. चुनाव तो कब के हो चुके! अब सिर्फ हिंदी और पंजाबी को लेकर यकायक कैसे आप हिंदी की शुद्धता के लिए तड़पने-खड़कने लगे.

हिंदी में उर्दू के शब्द और मुहावरे घुल-मिल रहे हैं तो इससे आपको बौखलाने की भी जरूरत है क्या? उर्दू फारसी के प्रभाव से अपने को मुक्त करने के दौर में से गुजरी है या गुजर चुकी है, इस पर भी आप नाखुश हैं. पंजाबी, ब्रज, हिंदी, अपभ्रंश के संस्कार से एक नयी जमीन बनाकर आगे बढ़ चुकी है, इस पर भी आपकी गलत आंख फड़क रही है?

साहिब चक्कर है तो क्या, इस 'शुद्ध' ध्वजबाजी से हिंदी के नाम पर सिर्फ राम-भज सरकार बनाने की भूमिका है क्या?

हशमत एक सुझाव देने जा रहे हैं. अगर इत्तफाक से आपको राष्ट्र की एकता और हिंदी में कोई तालमेल नजर नहीं आता तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कागज और सरकंडे मंगवाइए-एक लाख नाम लिखकर हिंदी की गोलियां बनवाइए और आटे के साथ मिलाकर मछलियों को डाल आइए. उधर मछलियों की तृप्ति हुई और इधर हिंदी का भविष्य उजागर होकर सीधे सत्ता की ऊंची सीढ़ी पर.

रा. व., कहना हम यह भी चाहते हैं कि 'सारिका' जैसी अखिल भारतीय साहित्यिक पत्रिका के मंच से ऐसे संकीर्ण और फूहड़ विचारों से हिंदी और 'सारिका' दोनों को संकोच में न डालिए. लोगों के बहाने भाषा को नकारने और दुत्कारने से भाषा की साहित्यिक अ[illegible]ता और गरिमा का बंटाढार न कीजिए. भाषा का सारगर्भा होना मात्र संस्कृतमयी होना ही नहीं है.

वह कौन-सी हिंदी है, जिसका आपने जिक्र किया है कि "यह हमारे शिक्षा संस्थानों की आश्रमी हिंदी की नाक पर मूंग दलेगी. हिंदी हिंदुस्तानियों के ही हाथों मजाक और अपमान की भागी बनेगी." उस्ताद, तुम्हारी गैरजिम्मेदाराना इबारत के मतलब इतने साफ हैं कि तुम्हारी बेबाकी बेमौत ही मर गयी है. लिखते हुए ध्यान तक न रहा कि हिंदी का मुहावरा छाती पर मूंग दलने का है, नाक पर मूंग दलने का नहीं! क्या ध्यान किसी वासवदत्ती नाक पर था या 'छाती पर मूंग दलना' लक्ष्मण रेखा से बाहर था!

ब्रादर, तुम्हें तो मालूम होगा आजकल किसी की नाक नहीं होती—तुम्हारी है क्या? अब बताइए यह कि जो विशिष्ट लेखन हिंदी में किया गया है, वह आप के दिल में खीझ, आक्रोश और एक खास तरह की तमाशाई हेकड़ी क्यों पैदा कर रहा है? कहीं न कहीं कुछ न कुछ लाग-लपेट जरूर है. क्या किसी 'भाषाई. इंश्योरेंस' का मामला है. अगर है तो इस बहस को छोड़कर लेखकों की पांडुलिपियों और प्रकाशित पुस्तकों का बीमा करवाने के हेतु लोकमत तैयार कीजिए. जीवन-बीमा इस बिचारे लेखक वर्ग की बात मान जाये, आप अपनी ओर से प्रचार-प्रसार की मदद से इसकी जी तोड़ कोशिश कीजिए. यह बीमा पालिसी दीमक, आग, दंगे-फसाद, डाकाजनी और चोरी से बचाव के लिए होनी चाहिए. हमें यकीन है, इस पर आपको कोई एतराज न होगा.

'भाषा' को लेकर आपने जो भी अपनी मन-पसंद फब्तियां कसी हैं, वे आपको सगुणों के साथ मुबारक हों, पर जनाब, यह खास मजमा लगाने के मौके पर 6 वर्ष पुरानी प्रकाशित कृति 'जिंदगीनामा' आपको कैसे याद आ गयी. उसे 'खेत' समझकर आपने उसी पर ट्रैक्टर चला दिया. हम कसम खाये हुए हैं कि हम 'जिंदगीनामा' के हक में कुछ न कहेंगे. आप बेशक, बेझिझक उसे 'कांजीहाउस' भिजवा दीजिए. पांच रुपल्ली देकर हम उसे छुड़वायेंगे तक नहीं.

हां कांजीहाउस में अगर चारे की कमी की वजह से कोई अमरीकी नस्ल की सेहतमंद गाय या भैंस इसे खा-पचा ही जाये तो मुमकिन है, उसी में से कोई एक नयी साहित्यिक नस्ल उभर आये. अच्छी फसल के लिए खाद तो जरूरी होती ही है. तीन भाषाई टेक्सचर वाली यह कृति मुमकिन है 'फर्टीलाइजर' का काम कर ही दे, पर हिंदी के हिमायती साहिब जी, आपकी परेशानी तो फिर भी हल होने वाली नहीं. आखिर दोगली जबान से शुद्ध भाषा कहां से पैदा होगी!

हां, दूसरी बात साफ कर देना चाहते हैं कि जिस हिंदी महतारी के चरण छूकर उसके पढ़ने-लिखनेवाले उसके पांव की धूल सिर पर चढ़ाते हैं, उसे 'गरीब' कहने की फूहड़ हरकत हम कभी बरदाश्त न करेंगे.

शुद्ध शब्दों और भाषा के संदर्भ में ऐसे तेवर और हिंदी की छीछालेदारी हमने कुछ अंग्रेजीवालों के माथों पर देखी है. इस विशिष्ट वर्ग को अभी कुछ बरस उसी की मुहब्बत में कैद रहने दीजिए. जहां तक आप जैसे नीम हकीम का तआल्लुक है, उसकी जबान से हिंदी की शान के खिलाफ हम कुछ न सुनेंगे, क्योंकि हम जानते हैं कि भाषा के सवाल को लेकर एक खास वजह से यह अदबी भड़भूंजापन किया गया है. कभी भट्टी में फूंक और कभी कढ़ाई में रगड़, फिर फूंक फिर रगड़—समझे आप! किसे रगड़ रहे हैं आप! चलिए छोड़िए.

शेखर : एक जीवनी, त्यागपत्र, गिरती दीवारें, बूंद और समुद्र, मैला आंचल, झूठा सच, बाणभट्ट की आत्मकथा, वह पथ बंधु था, जुगलबंदी, सूखा पत्ता, कब तक पुकारूं, गोली, अपनी-अपनी बैतरणी, मुर्दाघर, दो लहरों की टक्कर, उखड़े लोग, वरुण के बेटे, गंगा मैया, बीज, सफेद मेमने, काले कोस, दूसरी तरफ, एक चूहे की मौत, काला जल, हौलदार, समय साक्षी है, एक चिथड़ा सुख, तमस, खोई हुई दिशाएं, उनका फैसला, महाभोज, दूसरी बार, पटरंगपुर पुराण, टूटते बिखरते लोग, अस्वीकार, संबंधों के किनारे, बारह बूढ़े लोग, लाल पीली जमीन, कभी न छोड़ें खेत, गोबर गणेश, सत्ती मैया का चौरा, जंगल के आसपास, शहर वही है, परिशिष्ट, कुरु-कुरु स्वाहा, निक्का निमाणा, नेताजी कहिन, सफेद घोड़ा काला सवार, मायोपोत, देर सवेर, हत्या, कुछ दिन और, सात नदियां एक समुंदर, जहाज, घर बने घर टूटे, खुदा सही सलामत है, मन वृंदावन, लेकिन दरवाजा, तत्सम, अंधेरे बंद कमरे, एक था केशोराम, गुजरा हुआ जमाना, अश्वारोही, वायदा [illegible] गवाह, बैठक की बिल्ली, चीख के आर पार, नौकर की कमीज, आदि जो रचनाएं हमने पढ़ रखी हैं. और इस वक्त सुभीते से हमें याद आ गयी हैं, यह उन्हीं की सूची है. इसमें कोई दूसरे मतलब न ढूंढ़िएगा. विषय-वस्तु और वैचारिक धरातल पर यह लेखन जिस जीवंत रचनात्मकता और व्यापकता की ओर संकेत करता है, वह आपके शक-शुबह को दूर करने के लिए काफी होना चाहिए. हिंदी पर खतरों के नाम पर मनगढ़ंत गंडे-तावीज ले लेकर उसकी शुद्धता और सुरक्षा के लिए महाजाप और यज्ञ करवाने की योजना को पुड़िया बनाकर निगल डालिए.

गंभीर मसलों को सतहीपन से और मामूली भोथरी बातों को गंभीरता से चटखारा ले-लेकर प्रस्तुत करना अपने आपमें चमत्कारिक विधा तो हो सकता है, पर भाषा विज्ञान की अटकलपच्चू भूमिका नहीं.

हशमत इतना कहे देते हैं आपसे कि तीसरी नजर का नजरिया बनाम नस्लवाद को महज डुगडुगीवाला बंदर का तमाशा काहे बनाने चले थे उस्ताद!

हिंदी अपनी जगह मजबूती से कायम है. उसके पीछे अपनी कीमती जान हलकान न करो! जरा अपनी सेहत का भी ध्यान करो.

याद रहे, अंग्रेजी के दबदबे के आगे जिस हिंदी ने आज तक अपना अस्तित्व और भाषाई अस्मिता बनाये रखी और अपनी गरिमा की रक्षा की, अपने को बिखर जाने नहीं दिया, ऐसी जबान खुद-ब-खुद किसी भी समृद्ध [illegible] का सामना करने की सामर्थ्य रखती है. उसे नारेबाजों की मदद की जरूरत नहीं होती. रचनात्मक स्तर पर हिंदी लेखन अलग-अलग क्षेत्रों की भाषाओं में से होकर बोलियों के ऐन बीचोंबीच से उभरा है. इसी भारतीय विविधता को हिंदी भाषा द्वारा रेखांकित होने का श्रेय प्राप्त है.

बंगाल की भाषा बंगाली है. जो गुजराती कलकत्ता में जन्मा-पला है, वह अपनी मां-बोली गुजराती के अलावा बंगला या गुजराती किसी भी भाषा में मौलिक लेखन करेगा तो उसकी रचना में क्या आप बंगला और गुजराती का मिला-जुला संस्कार स्वीकार नहीं करेंगे. वह पंजाबी, जो महाराष्ट्र में पलता है, मराठी जानता है, पंजाबी, हिंदी या मराठी लेखन में क्या उसके क्षेत्र विशेष की संवेदना अथवा संवाद की अपेक्षा आप नहीं करेंगे!

जो तमिल, उत्तर प्रदेश में शिक्षित हुआ है, वह हिंदी में लिखने का निर्णय करे तो क्या 'तमिल' की अनुभूति और संवेदन की उम्मीद हम उससे नहीं करेंगे.

जनाब, आप जिसे 'विजातीय' शब्दों का नाम दे रहे हैं और उसे हिंदी पर 'घुसपैठ'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ रहे हैं, वह दरअसल हिंदी की विस्तृत सीमाओं की द्योतक है, उसी की खूबी है, क्योंकि वही हिंदी की ऊर्जा भी है. इसे दूसरी भाषाओं द्वारा हिंदी पर अतिक्रमण न समझिए. **हम इसे भारतीय एकता के सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय विस्तार की भूमिका का नाम देना चाहेंगे.** कोई एतराज ? जहां तक साहित्यिक भाषा में शब्दों के चुनाव का सवाल है—हर लेखक को छूट है कि वह अपनी भाषा में शब्दों का मनचाहा चुनाव करे. कोई भी लेखक वही लिखेगा या लिखना पसंद करेगा—जिस भाषा को, जिन शब्दों को वह अपने संस्कार में जीता रहा है. वह संस्कार जो उसकी जड़ों में से उभरा है. किन्हीं भी भारतीय भाषाओं और बोलियों से हिंदी में आये शब्द, संवाद या उसकी विशेष भंगिमाओं पर हमें तेवर चढ़ाने ही चाहिए, यह बात हमारी समझ के बाहर है. कहना हम यह भी चाहते हैं कि इन्हें अस्वीकार करने की छूट अब आपके हाथ में नहीं रह गयी. हो सकता है, इसीलिए आप तिलमिला भी रहे हैं.

अखिल भारतीय भाषा का स्वरूप अपने व्यापक माध्यम से जिस गंभीर प्रौढ़ता और प्रांजलता के किसी भी लेखक और पाठक के निकट गर्व का ही विषय होगा.

जिन शब्दों को आप 'विजातीय' कहकर पुकारते हैं और जिन पर आपको एतराज है साहिब, वही 'देशी शब्द' हिंदी भाषा की शब्द-संपदा के महत्वपूर्ण और विशिष्ट तत्व हैं. हमें आपको क्या यह भी बताने की जरूरत है कि हिंदी की शब्द गरिमा और अर्थ-समृद्धि भारतीय भाषाओं में विशेष स्थान रखती है. विभिन्न भारतीय भाषाओं और परिप्रेक्ष्यों वाली हमारी संस्कृति की अभिव्यक्ति करने में हिंदी समर्थ है. **हिंदी निरंतर विकासमान है और समूची भारतीय संस्कृति की अस्मिता का उत्तरदायित्व बखूबी निभा सकती है.**

लगता है उर्दू के खिलाफ आप कोई गहरी रंजिश पाले हुए हैं. उर्दू और हिंदी दोनों भाषाएं आमने-सामने से एक से बोलचाल के अंदाज को अलग-अलग स्वरों में शब्दों को एक दूसरे के साथ खटखटा और बजाकर भी एक दूसरे को अनोखी अदा देने की क्षमता रखती हैं.

आइए, जरा उर्दू मंदिर की ओर चलें. नाम तो सुना ही होगा आपने. नहीं सुना ? भाषा के पचड़े पर टीप देने से पहले कुछ थोड़ा बहुत 'होम वर्क' ही कर लिया होता. उर्दू मात्र नवाबों और महलों की ही भाषा नहीं. ब्रिटिश साम्राज्यवाद की सरपरस्ती में समूचा सामंत वर्ग अपने अपने भाषाई तर्ज में एक ही सी संस्कृति का पोषक रहा.

संस्कृतनिष्ठ नयी हिंदी और फारसी से जुड़ी उर्दू और अन्य भारतीय भाषाएं भी दरबारी तामझाम और भाषाई संवाद और शिष्टाचार को संवारते रहे.

सभी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ अपने-अपने ढंग से लोकतंत्रीय चेतना का लेखन भी प्रस्तुत करते रहे. सिर्फ हिंदी और उर्दू में ही नहीं, किन्हीं भी भारतीय भाषाओं में अलगाव पैदा करना, सांप्रदायिकता को भड़काना होगा.

भाषा के भाषाई तत्वों की छानबीन और समझ-बूझ के बिना ही उस पर

भाषा-बोलियां जब एक-दूसरे के नजदीक आती हैं, एक-दूसरे में टकराती हैं, घुलती मिलती हैं, तभी एक-दूसरे में भाषाई सम्मिश्रण से नये-नये शब्द प्रयोग छनकर लोक मानस और भाषाओं द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं.

इस किस्म के फतवे दे डालना साहित्यकार का काम नहीं. चाहे वह तीन आंखों-वाला बड़ा अफलातून ही क्यों न हो. 'हिंदी अगर पंजाबी होकर भी हिंदी रह सके तो उस सरकार को और क्या चाहिए.'

क्या चाहिए—यह क्या आपको नहीं मालूम ? अगर यह नहीं मालूम तो साहिब, आपको और भी बहुत कुछ नहीं मालूम. इस टिचकरबाजी से भला क्या फायदा ? लगता है आप 'खुड्डा लाइन' पर उतर चुके हैं. (भ्राता, 'खुड्डा लाइन' शब्द के अर्थ किसी शब्दकोश में न ढूंढ़िएगा, वहां न मिलेंगे!) हां, एक बात याद रखें कि मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा और गिरजाघरों से उठता सियासी शोर ही अलग-अलग भाषाओं की पहचान नहीं है उस्ताद. इस मसले पर जरा गंभीरता से सोचने की कोशिश कीजिए.

याद आया, हम लोग उर्दू मंदिर की बात कर रहे थे न. उर्दू लश्करों की देन है. मुगल काल में किले के आसपास पड़े लश्करों में रहने वाले हिंदू सिपाहियों के लिए पूजा-अनुष्ठान के हेतु दिल्ली के जैन समुदाय ने इस उर्दू मंदिर की स्थापना की थी. देर तक यह मंदिर उर्दू मंदिर के नाम से ही जाना जाता रहा. हैरान और परेशान न होइए, भाषाओं के मामले में हमारी और आपकी थू-कोड़ी की विद्वता से जन-मानस कहीं आगे है.

जनाब, बुरा न मानिएगा. हमें लगता है, आप असल में 'डंका टाइट्स' के शिकार हो चुके हैं. यह तो बड़ी खतरनाक किस्म की बीमारी है. वायरस. इलाज तो इसका और भी मुश्किल है. आदत पड़ जाये और [illegible] यह बुद्धिजीवी के दिल दिमाग [illegible] की, खतरनाक अपना ही नाम पीटने की तो कौन-सा डॉक्टर, वैद्य, पंडित या आलोचक है, जो सुई ठोंककर आपको इसके चंगुल से छुड़वा सके. प्यारे भ्राता, इस बीमारी का मरीज पेशेवर मजमेबाज होकर ही दम लेता है. हमारी दाद दीजिए कि आपकी पहचान में हमने कोई गलती नहीं की. शिनाख्त सही उतरी. जनाब, बीमार तो आप थे और बहाने-बहाने मिजाज पुर्सी भाषाओं की करने लगे.

विद्वान-श्री, मजमेबाज होने की हैसियत से आपका हक बनता है कि आप अपने पसंद की अपने लेखन के लिए एक पवित्र ऋषीकेशी भाषा गढ़ डालिए और उसी में साहित्य सृजन कीजिए. वैसे इतना जरूर याद रखियेगा कि हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी के कुएं या बावली की हदबंदी में न घेर डालिएगा. **हिंदी गंगा है, उसे गंगा की ही तरह बहने दीजिए.**

सो जनाब, नस्लवादी साहिब, हशमत अब आपसे इजाजत लेते हैं. आप हरकी-पौड़ी पर जमकर मनमाना मनचाहा साहित्य सृजन कीजिए और जब करते-करते थक जायें तो हारमोनियम पर भक्ति भाव से इस गीत की धुन निकालिए—

हे प्रभो तेरी निराली शान है.
आंखवालों को तेरी पहचान है.

याद आया, जाने से पहले एक पते की बात आपसे कहनी है. जरा नजदीक आइए. सुनाई नहीं पड़ा ? कान में मैल होगा. लाइए, हम निकाले देते हैं. झिझकिए नहीं. यह तो एक तरह से हमारा धंधा ही ठहरा. हैरान न होइए. अपने यहां की परंपरा के मुताबिक लेखक की हैसियत कान का मैल निकालने वाले नाई की-सी ही है. न इससे ज्यादा और न उससे कम.

सिर मूंड़ा, चंपी की, हजामत बनायी, इधर-उधर की लगायी बुझाई और बचे-खुचे वक्त में उपन्यास लिखा, कविता सजाई या समीक्षा जुटाई. पेशेवर लेखक के जिम्मे इतना ही काम है. अन्य पेशों में लगे लेखकों की बात दूसरी है.

हां, जो बात हम कहना चाह रहे थे, वह यह कि अगर कभी सत्संगी भीड़ में आपको मजमेबाज की अम्मा मिल जाये तो उसे हमारा सलाम कहिए और अगर मजमेबाज का बाप मिल जाये (माफ करना भ्राता, यहां 'पिताजी' कारगर न होंगे) तो मौका पाते ही उसके सिर पर लगा 'गुड़हल का फूल' नोच लेना.

आपको भी मालूम तो होगा ही कि उसी 'गुड़हल के फूल' में मजमे की रूह बंधी रहती है. एक बार हाथ आ जाये तो फिर सारे गुर मजमेबाजी के खुलते चले जाते हैं. एक के बाद एक, यहां तक कि सिर ही सांप का पिटारा बन जाया करता है. □

हशमत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

स्थूल उपन्यासों पर स्थूल चिंतन

जिस तरह आदमी पतले और मोटे होते हैं, उसी तरह उपन्यास भी पतले और मोटे होते हैं. जिस प्रकार कोई पतला आदमी मोटे आदमी को देखकर यही सोचता रह जाता है कि यह मोटा हुआ कैसे होगा तो उसी तरह पतले उपन्यासों और छोटी रचनाओं के लेखक भी यही सोचते हैं कि मोटे उपन्यास किस तरह लिखे जा सकते हैं. शरद जोशी भी इन दिनों उसी प्रकार के चिंतन में व्यस्त हैं. प्रस्तुत है इस बात का बतंगड़—

कल मैंने एक फिर मोटा उपन्यास देखा और मेरा लेखक मन मोटे हीनभाव से भर गया. मैं आज नहीं, बरसों से उन उपन्यासकारों की ओर, जो लिखते हैं तो बस लिखते ही चले जाते हैं, इतने ही आदर और भय से देखता हूं जैसे मोहल्ले के लड़के अपने एरिया के पहलवान की ओर मुग्ध भाव से टकटकी लगाकर देखते हैं. वे यह समझ नहीं पाते कि चाहने पर भी कोई पहलवान कैसे हो जाता है. और है तो क्या बात है कि लीजिए वाकई है. कुछ ऐसा ही मेरे मन में मोटे उपन्यास को देखकर होता है. मैं उन उपन्यास लिखनेवालों के भी दर्शन कर चुका हूं. विदेशों की बात मुझे नहीं पता, पर भारत में मोटे उपन्यासों के लेखक प्रायः बड़े दुबले होते हैं. ऐसा लगता है, उनके अंदर की सारी हवा पिचककर निकल गयी और उनके उपन्यासों में भर गयी है. नतीजा यह है कि उनके उपन्यास मोटे हो गये और वे दुबले. इससे उन्हें दो अधिकार प्राप्त हुए. एक तो उनकी निजी तस्वीर करुण बनी रही, जो हिंदी में साहित्यकार के लिए एक एसेट मानी जाती है और दूसरे, कृति मोटी होने के कारण उनका साहित्य में दबदबा स्थापित हो गया. यह कुछ ऐसा ही है जैसे पत्नी मोटी होने के कारण किसी का मोहल्ले में दबदबा स्थापित हो जाये.

मैंने प्रायः उपन्यास के मोटे होने की प्रक्रिया का गहराई से अध्ययन किया है. तीन-चार साल पहले मैंने एक बार बीस-पच्चीस मोटे बेस्टसेलर अपने आसपास जमा कर पूरी गंभीरता से अध्ययन करने का प्रयत्न किया कि उपन्यास मोटे कैसे होते हैं? पर जैसा कि मैंने कहा, मुझमें हीनभाव जागृत होने लगा और छटपटाते हुए मैंने वह काम रोक दिया. पहलवानों का सम्मेलन आयोजित करने से आपके स्वास्थ्य में सुधार हो जाये, यह कोई जरूरी नहीं. मैं तो अभी तक यही समझ पाया कि उपन्यास उसी तरह मोटे होते हैं, जिस तरह आदमी

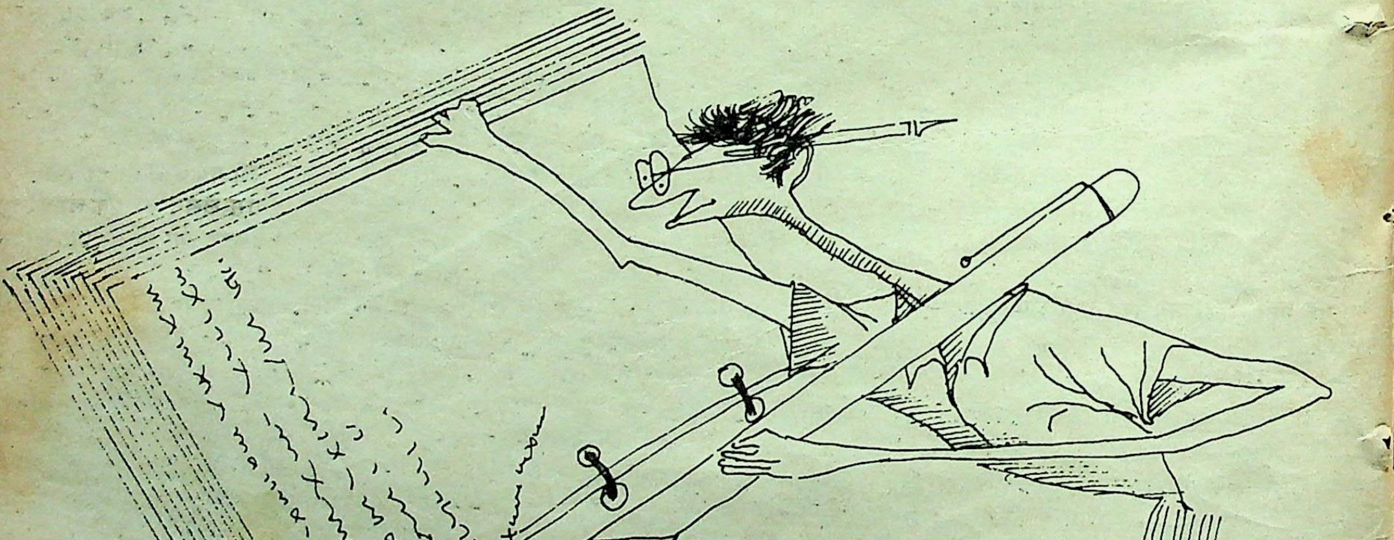

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोटा हो जाता है. वह धीरे-धीरे और अनजाने ही मुटाने लगता है. उसे एहसास नहीं होता कि धीरे-धीरे उसके साथ क्या हो रहा है! एक दिन इसी तरह वह भयावह स्थूलता अर्जित कर लेता है. जैसा कि मोटे उपन्यासों के लेखक उपन्यास के मोटे होने का बारीक रहस्य समझाते हुए यह मोटी बात कहते रहे हैं कि शुरू में मैंने जो कुछ सोचा नहीं था, पर वह धीरे-धीरे विस्तार प्राप्त करता चला गया.

बीच में यह अफवाह उड़ी थी कि मोटे उपन्यासों का युग समाप्त हो रहा है. हिंदी में ऐसी अफवाहें प्रायः उड़ती हैं कि यह धारा आ रही है, वह विधा जा रही है. उसकी वापसी हुई, इसका टिकट कटा, पर उपन्यासों की समाप्ति की खबर पूरे संसार में थी. ताल्स्तोय अपनी कब्र में दर्द से करवटें बदल रहे होंगे, क्योंकि कहा यह जा रहा था कि जेट युग के इंसान के पास अब 'वार एंड पीस' जैसे महाग्रंथ पढ़ने का समय नहीं रहा. उसे हर चीज संक्षिप्त में, केपसूल में चाहिए. दूसरे वह सिनेमा, टी. वी. और वीडियो से इतना तृप्त है कि वह यों भी किताबों में क्यों सिर खपायेगा. मोटी किताबों के लिए तो कदापि नहीं. यह खबर मुझ जैसे पतला लिखनेवालों के लिए उत्साह-दायिनी थी, पर वह अफवाह साबित हुई. यह भी कहा जाता था कि कागज कम और मंहगे हैं, प्रकाशक क्यों चाहेगा कि वह अपनी पूंजी मोटी किताबों में अटकाये, पर हुआ इसका उल्टा. ढेर सारे मोटे उपन्यास एक के बाद एक पश्चिम से पूर्व की तरफ फेंके जाने लगे. यहां तक कि वे पूरब में मोटा लिखनेवालों के लिए चुनौती बन गये. हिंदी के प्रकाशकों ने पहले तो हिंदी लेखकों को उचकाया कि क्या ऐंचियों जैसे पड़े हो, उठो राग दरबारी लिखो, पर लेखक सुस्त रहे. तो वे बंगला का ही कुछ मोटा उपन्यास छापने लगे. दक्षिण के मोटे उपन्यास तेजी से अनुवाद होने लगे. चिंता यह नहीं थी कि किसका क्या छप रहा है. खुशी यह थी कि जिसका जो छप रहा है, मोटा छप रहा है.

हिंदी में एक लतीफा आम है कि एक परीक्षक ने एक छात्र से पूछा कि उपन्यास कितनी तरह के होते हैं? छात्र ने सामाजिक, ऐतिहासिक उपन्यास के साथ एक श्रेणी और बतायी —धारावाहिक उपन्यास. बात हंसी में आयी गयी हो गयी, पर धारावाहिक उपन्यास साहित्य की एक सुनिश्चित विधा है. यह एक दिन मैंने भी महसूस किया, जब एक लेखक से मैंने नम्रता से पूछा कि आजकल आप क्या कर रहे हैं. उत्तर मिला कि आजकल में एक धारावाहिक उपन्यास लिखने की सोच रहा हूं. हिंदी में सारे उपन्यास धारावाहिक ही होते हैं.

हिंदी में मोटे उपन्यास लेखन में तीन स्थितियां प्रमुख हैं. पहली स्थिति, जिसमें लेखक यह कहता मिलेगा कि मैं एक उपन्यास लिखने की सोच रहा हूं. दूसरी स्थिति कि उसका उपन्यास अधूरा है, जिसे पूरा करना है. और तीसरा गौरवशाली क्षण वह, जिसमें वह लेखक घोषित करेगा कि उसका उपन्यास आ रहा है और साथ में बतायेगा कि वहां से अर्थात किस प्रकाशक से आ रहा है. इन तीन महान क्षणों से गुजरने के बाद उसका वह मोटा उपन्यास रिलीज होता है. लेखक की कालरात्रि या कतल की रात आरंभ होती है. वह यह जानने के लिए तड़पता है कि जो भारी ईंट उसने साहित्य के सिर पर फेंकी है, उससे वातावरण लहूलुहान हुआ या नहीं. उसका यह प्रहार व्यर्थ जाता है, क्योंकि कहीं कुछ होता नहीं व्यापता है. हिंदी के शांत पानी में नयी गर्म रचनाएं उतर प्रायः अंगारे-सी बुझ जाती हैं. उसका उपन्यास अंततः क्या हुआ, लेखक को काफी दिनों पता नहीं चलता. हिंदी में प्रकाशित होने के तीन वर्ष बाद मोटा उपन्यास पाठकों के पास पहुंचता है. बड़े दिनों तक वह पुस्तक विक्रेताओं की अल्मारी में सजा रहता है. ज्यादा कीमत होने के कारण कोई उसे जल्दी नहीं उठाता. फिर काफी दिनों वह पुस्तकालय की अल्मारी में शोभा पायेगा. नयी और कीमती किताब होने के कारण चतुर लायब्रेरियन किसी ऐरे-गैरे को छूने नहीं देते. धीरे-धीरे यह बात फैलती है कि फलां उपन्यास पढ़ने लायक है. तब सरगर्मी से उसकी तलाश जारी होती है. हर शख्स इस चक्कर में रहता है कि कहीं किसी से मुफ्त में पढ़ने को मिल जायें तो अच्छा है. लायब्रेरी से 'इशू' हो जाता है. पुस्तक विक्रेता के पास प्रतियां खत्म हो जाती हैं. वह मंगा देने का वादा करता है. और तब कहीं महीनों बाद हिंदी का असल प्रेमी पाठक एक दोपहर वह उपन्यास पढ़ता है.

यहां चिंता का विषय उपन्यास की गति-दुर्गति नहीं है. वह तो यह कि जिसके जैसे भाग्य और जिसके जैसे रिश्ते. अकादमी के निर्णायक बिना पुस्तक पढ़े पुरस्कार देने के आदी रहे हैं. उनका कहना है कि इतना मोटा उपन्यास है तो अंदर कुछ तत्व तो होगा ही. इसलिए वे बिना पढ़े पुरस्कार दे देते हैं. हिंदी में ऐसे पुरस्कृत, सम्मानित और न पढ़े गये उपन्यासों की कमी नहीं है, पर चिंता का विषय यह है कि ये उपन्यास लिख कैसे लिये जाते हैं. क्या धैर्य है इसमें? यह गुण कैसे आया?

कालेज के जमाने में एक शब्द पढ़ा था—वातावरण प्रधान अर्थात गद्य की कुछ किस्में ऐसी होती थीं, जो वातावरण प्रधान कहलाती थीं. जैसे धान की कोई किस्म ऐसी हो कि भूस प्रधान. अर्थात् ऐसा धान, जिसमें दाना कम हो और भूस अधिक निकले. उसी तरह वातावरण प्रधान उपन्यास होते हैं. पूरे समय पाठक धूप, गर्मी, बरसात सहन करता रहता है. कभी चांदनी छिटक आती है, कभी धूप निकल आती है, अंधेरा छा जाता है. मतलब यह कि कुछ न कुछ होता रहता है. यह सूचना दी जाती है कि इस साल आम खूब बौराया या फसल ठीक रही. मगर वह जो इन सबके बीच पात्र होता है, वह कला फिल्म के नायक की तरह टस से मस नहीं होता. कहानी वहीं अटकी रहती है, जहां पचास पेज पहले थी, पर सारा जिक्र उस धूप के चकत्ते या रोशनी की शहतीर का होता है, जो कंबख्त हस्बमामूल ठीक उसी जगह आ फिर वहीं विराजमान हो जाती है, जहां वह हिंदी उपन्यास के उद्भव से पूर्व रही है. उपन्यासकार लिखेगा कि वातावरण में गहरी उमस थी. यह सुनकर पाठक का पारा चढ़ने लगता है. अबे होगी उमस, तू अपनी बात कर कि किस्सा क्या है? क्या फोकट में टेम गंवा रिया है?

पर वह टेम न गंवाये तो उपन्यास मोटा कैसे हो? अतः वह कुछ बात को फैलाता, फुलाता, चौड़ाता, लंबाता रहता है. एक दिन वह फैलाव कृति कहलाने लगती है. साहित्य की खोपड़ी पर वजन बन जाती है, जीवन सफल और रायल्टी-पुरस्कारमय हो जाता है. हम जैसे कम पन्ने लिखनेवालों के मन में हीनभाव उत्पन्न होने लगता है. उनके लिए यह भी एक उपलब्धि है कि उनके लिखने के कारण समकालीन साहित्यकारों के मन में हीनभाव जागा. 'वामा' के पिछले कुछ अंकों में मैंने उपन्यासों के संक्षिप्त संस्करण देखे. एक प्रश्न मन में उदित हुआ कि जब ये उपन्यास इतने संक्षिप्त में हो सकते थे तो ये मोटे ही क्यों लिखे गये? इस उदित प्रश्न का शमनकारी उत्तर यह है कि मोटे लिखे गये तभी तो संक्षिप्त हुए अर्थात मोटे उपन्यास लेखन का एक लाभ यह है कि वह संक्षिप्तिकरण की एक समांतर प्रवृति को जन्म देता है.

कल मैंने मोटा उपन्यास देखा, तभी से मैं इस सोच में बैठा हूं कि अरे शरद, तू यूं ही जोशी हुआ. तुझे जोशी ही होना था तो मनोहर श्याम कम से कम होता. कुछ बड़े उपन्यास लिखने का करता काम. श्रेय तो मुझे मिलता. सारी उमर व्यर्थ गंवायी और एक लंबी कथा न बनायी. अरे भाई, इस तरह छोटा-छोटा लिखकर तू कब तक करायेगा जग हंसाई. अल्ला का दिया वातावरण. तू जाता क्यूं नहीं उसकी शरण. देख, अब तेरे घर के सामनेवाले पेड़ की पत्तियां भी उतनी ही सूखी हैं. फिर तेरे प्रकाशक की आत्मा क्यों भूखी है. उठ पगले और चला कलम. लिख, लिख, लिख, लिख, लिक्खे जा. खा, खा, खा, खा, खायेजा. जब तक तू मोटा न हो जाये. भर भूस का भंडार. चला कलम. जब तक कि छोटी-सी कहानी उपन्यास न हो जाये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक जगह पहुंचकर भी खैरबाद

—डॉ. धनंजय

नयी कहानी के बाद, कुछ हद तक उसके विरोध में, सोच और रचनाशीलता के नये आग्रह के साथ साठोत्तरी कहानी का जो आंदोलन शुरू हुआ, उसे विकसित करने तथा उत्कर्ष देने का काम जिन थोड़े से कहानीकारों ने किया, उनमें कामतानाथ भी एक हैं. इस आंदोलन के ऐतिह्य की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि विशिष्ट रचना-दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में भी, वह बात उल्लेखनीय हो सकती है कि साठ के बाद की कहानी के बदलाव को संवेदना एवं शिल्प के स्तर पर रेखांकित करने के लिए जिन कहानियों से अक्सर उदाहरण दिये गये, उनमें कामतानाथ की कहानियां भी रही हैं. इनका संदर्भ यद्यपि समकालीन कहानियों से बहुत अलग नहीं है, फिर भी इनकी खासियत संदर्भों के इस्तेमाल की विशिष्टता में हैं, जो पूरी कहानी का रचना विधान बन जाता है और ठीक वहीं, बड़े अनुकूल रूपों में कहानी का कथ्य-संवेदन भी. इनमें अनुभव की दोहरी-तिहरी लय नहीं मिलती, जो आज से एक-डेढ़ दशक पहले की तमाम कहानियों, और दूसरे स्तर पर कविताओं में भी, एक अनिवार्य चीज की तरह मिलती रही है. समाज तथा जीवन के संदर्भ जिस तरह और जितनी विविधता में बदल रहे थे, उन्हें नाटकीय कार्य-व्यापार की सहजता से इनकी कहानियां प्रस्तुत करती हैं. कामतानाथ की कहानियां स्थितियों के संघर्ष और यथार्थ की सहज अभिव्यक्ति हैं. नयी कहानी के दौर में यह विशेषता अकेले अमरकांत में दिखती है—भाषा के फर्क के बावजूद. बाद में पुरखों से मिली विरासत के रूप में नहीं, बल्कि स्वतः अर्जित अनुभव की तरह इसे कामतानाथ ने अपनाया. हिंदी कहानी के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का विश्लेषण करते हुए मुझे लगा था कि वह 'ठीक जगह पहुंचे' कथाकार हैं.

लेकिन अभी प्रकाशित कहानीसंग्रह **'सब ठीक हो जायेगा'** पढ़ते हुए यह धारणा सहसा लोट-पोट हो गयी. जैसे किसी लेखक के बारे में ठोस रचनात्मक कारणों से निकाले गये नतीजे माकूल न साबित हों और हम यक-ब-यक 'शॉक्ड' रह जायें. मुझे अब लगा है कि कामतानाथ ठीक जगह पहुंचकर भी उस जगह को खैरबाद कर चुके हैं.

इतना बड़ा विपर्यय यदि लेखन की गति-अधोगति के सर्वमान्य सिद्धांत के तहत हो, तब खास चिंता की बात नहीं होती, लेकिन अपने ही द्वारा खड़े कर लिये गये अथवा दूसरों द्वारा खड़े कर दिये गये दृष्टिगत तथा स्पष्ट कारणों

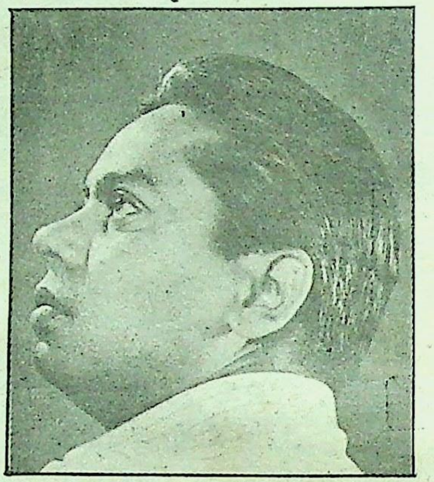

● कामतानाथ

से यह स्खलन होता है, तब किसी भी सशक्त और गहरी सूझ-बूझ वाले लेखक के लिए नितांत त्रासद स्थिति है. कहानी में समय-समय पर उभरने वाले छद्म आंदोलन का लाभप्रद हिस्सा ऐरों-गैरों और ढेरों नत्थू खैरों को जितना भी मिला हो, हानिप्रद पहलू यह है कि इसने बहुतेरे संभावनापरक, समर्थ तथा संवेदनशील कहानीकारों की अत्यंत क्रूर और निर्मम हत्याएं की हैं, कितने ऊर्जाशील कथा लेखकों की तेजस्विता को बड़ी बर्बरता से समाप्त किया है.

यह अवधारणा, आप चाहें तो इसे मेरी प्रतिक्रिया ही कह लें, संदर्भित कहानी-संग्रह **'सब ठीक हो जायेगा'** को मद्दे नजर रखकर है. कुल बारह कहानियों में गांव और शहरी दोनों परिवेश हैं, शहरी परिवेश को केंद्रित कर कहानियां ही अधिक हैं. अपने कथ्य के विस्तार से लेखक शायद प्रमाणित करना चाहता हो कि उसके अनुभव का दायरा काफी बड़ा है. नयी संवेदनाओं को खोजने-बदलने की प्रक्रिया में ही वह कहानियां लिखता है, लेकिन उसकी कोशिश इन कहानियों में बहुत सफलता से रेखांकित होती नहीं दिखती. दरअसल, इनमें परिवेश के बदलने का ही बोध है, संवेदना का नहीं. सभी कहानियों को पढ़ जाने के बाद ऐसा नहीं लगता कि हम अनुभव के किसी नये क्षितिज के सामने खड़े हैं या जो कुछ अब देखते आ रहे हैं, उनके प्रति कोई अलग, विशिष्ट, नयी दृष्टि मिली है. इनमें गांव, शहर, निम्न मध्यवर्गीय जिंदगियां, इन जिंदगियों की हताशा, करुणा, कटुता, विषमता, अभाव, परेशानी, खोखलापन और उसे ढंकने की नाकाम कोशिशें, अमीर-गरीब के बीच की दूरियां, डूबते मानवीय रिश्ते, पूंजीवाद के प्रभाव से मतलबबाज संस्कृति का उदय, मूल्य-संघर्ष यानी कि सब कुछ है, लेकिन इन सबको जीवन के मुख्य प्रवाह से जोड़ देने की तटस्थ सर्जनात्मक दृष्टि नहीं है. यकीनन लेखक की सच बोलने की मजबूरी है, पर यह भी उतना ही सत्य है कि सच का अपना एक स्पर्श होता है, जिसकी अपेक्षा कहानी से की जाती है.

संग्रह की पहली कहानी **'देवी का आगमन'** गांव के अर्द्धशिक्षित या अशिक्षित लोगों की धर्ममूढ़ता, रूढ़िवादिता, दैनिक आस्था तथा दूसरी तरफ इसका फायदा उठाकर अपना स्वार्थ साधने वाले संपन्न किंतु अक्लमंद वर्ग का चित्रण करती है. **'एक दिन और'**, **'जूता'**, **'साथ'** में निम्न मध्यवर्गीय चिंता, अभाव, संघर्ष, कशमकश, कुंठा, बंद रास्ते में कैद हो जाने की छटपटाहट, एक रट में बंधी जिंदगी को परिवेशगत यथार्थ के साथ बड़ी मार्मिकता से रखा गया है. **'मूर्ख'** और **'दोस्त'** कहानियां सिद्धांत एवं कार्य की भिन्नता, स्वार्थपरकता के साथ-साथ मानवीय स्तर पर संबंधों के बीच विकसित होती बेडौल अजनबीयत का बहुत सूक्ष्म विश्लेषण करती हैं. **'गौतम बुद्ध की वापसी'** कमजोर कथ्य की 'अनकन्विंसिंग' कथा है. इसकी शुरुआत पुरा-कथा एवं लोक कथा की मिली-जुली शैली में होती है और अंत इन्हीं कथाओं की परंपराओं की कातर भावुकता में, जहां मनुष्य और पशु आमने-सामने खड़े समान रूप से प्रेमाश्रु बहा रहे हैं. स्थूल और बाहरी दुनिया का बदलाव उन्हें स्तंभित, जड़ीभूत बनाता है, आश्चर्यलोक में एलिस की तरह और भावनात्मक या भीतरी स्तर पर मनुष्य का बदलना बेचैन तथा परेशान करता है. संग्रह की आखिरी कहानी **'सब ठीक हो जायेगा'** विखंडित होते भविष्यवाद एवं खास अर्थों में मृगतृष्णा की कहानी है.

सब ठीक हो जायेगा (कहानी संग्रह) कामतानाथ; प्रकाशक : ज्ञान भारती, 4/14, रूपनगर, दिल्ली-110007, मूल्य : बीस रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक गोलबंदी से बाहर

—डॉ. मस्तराम कपूर

स्वातंत्र्य काल में हिंदी कहानी को रेखांकित करने के लिए अब तक अपनायी गयी विधि लगभग एक सी रही है. समीक्षक या संपादक अपने गोल की मान्यताओं के आधार पर कुछ लेखकों को चुनता है और उनकी एक रचना को प्रतिनिधि करार देकर कहानी की यात्रा का एक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करता है. इस विधि का बार-बार प्रयोग किये जाने के कारण लाभ तो यह हुआ कि हिंदी के कुछ लेखक चंद्रधर शर्मा गुलेरी की तरह एक-एक कहानी के बल पर प्रसिद्ध हो गये, किंतु इससे यह भ्रम भी फैला कि हिंदी में यही लगभग दो दर्जन कहानियां उल्लेखनीय है, जिनका संकलनों में बार-बार जिक्र आया है.

यादवेंद्र शर्मा की **'इक्यावन कहानियां'** पुस्तक कहानी के विकास को रेखांकित करने की एक दूसरी विधि को अपनाने का अवसर जुटाती हैं. अब तक अपनायी गयी विधि मैक्रोप्रोसेस है, जबकि माइक्रोप्रोसेस भी खोज की एक सर्वमान्य विधि होती है. लगभग तीस साल से कहानी लेखन में लगा हुआ व्यक्ति किन-किन उतार चढ़ावों से गुजरता है, इसे देखकर भी साहित्य के विकास की दिशा को समझा जा सकता है.

यादवेंद्र के इस वृहत् कथा संकलन में उनकी 1954 से 1982 तक की कहानियां हैं. इन कहानियों को व्यष्टि प्रक्रिया (माइक्रोप्रोसेस) के लिए इसलिए भी चुना जा सकता है कि यादवेंद्र साहित्यिक गोलबंदी से बाहर रहकर लिखते रहे. उन्होंने न परंपरा से कटने का प्रयास किया, न किसी 'वाद' की रौ में बहे और न ही किसी साहित्यिक आचार्य से मार्ग मार्गदर्शन ग्रहण किया.

इधर साहित्यिक विकास को दशकों से मापने की लचर प्रथा भी फैशन बन गयी है मानो कलेंडर वर्ष की दहाई का आंकड़ा बदल जाने से स्थिति में स्वतः बदलाव आ जाता है या समाज समाज न होकर मियादी बुखार हो, जो निश्चित समय तक रहता है. दशक अर्थशास्त्रियों का माप तो हो सकता है, लेकिन इतिहास का नहीं. साहित्य की दृष्टि से स्वातंत्र्य काल का विभाजन दशकों में नहीं, खास-खास पड़ावों में होना चाहिए. प्रथम पड़ाव 1961-62 या 1964-65 तक हो सकता है, जिसे हम नेहरू युग या मोह काल कह सकते हैं, क्योंकि इस काल में समाज और अधिकांश बुद्धिजीवी भी आजादी के नशे में मदहोश रहे. उसके बाद 1966-67 से ले कर इंदिरा युग या क्षोभ काल शुरू होता है जिसमें सामाजिक चेतना में उथल-पुथल होने लगती है.

यादवेंद्र की 1965-66 तक की कहानियों में ध्यान आकर्षित करने वाली बात यह है कि इनमें लेखक की मुख्य दृष्टि रूमानियत की रही है. यह रूमानियत कभी प्रेम संबंधों में प्रकट हुई है कभी इतिहास की रंगीनी में.

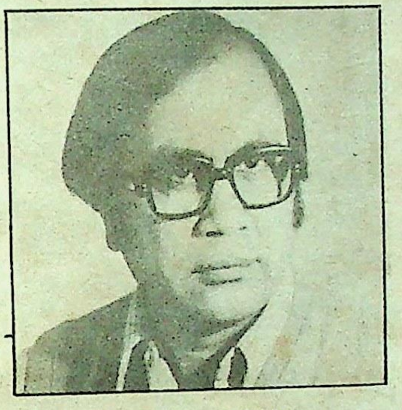

● यादवेंद्र शर्मा चंद्र

'चकवा चकवी की बात' कहानी में तोता मैना के किस्सों की शैली में स्त्री-पुरुष संबंधों को दो अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखा गया है. **'वह रात सारा और सिपाही'**, **'गिरजे पर पथरायी दृष्टि'**, **'पत्थर में पानी'**, **'सांवली बेबी'** और **'मिस मोनिका और पेड़ का तना'**, **'प्यास के घेरे,'** और **'सूखे तालाब की बेल'**, ये सभी कहानियां स्त्री-पुरुष संबंधों की हैं. इनमें **'वह रात सारा और सिपाही'** आर्थिक विषमता की तीव्र अनुभूति के कारण अलग तेवर की बन गयी है. इसमें एक भिखारिन सेठ की हवेली के बाहर गश्त लगाने वाले सिपाही से बच्चे को सर्दी से बचाने के लिए कोट मांगती है और बदले में साथ सटकर अपनी गरमी सिपाही को देने के लिए तैयार हो जाती है. रुटीन को तोड़ने वाली इस दौर की अन्य कहानी है **'टूटे हुए इन्सान'** जिसमें नब्बे रुपये वेतन पाने वाला एक क्लर्क अपनी पत्नी सरस्वती की फरमाइश को पूरा नहीं कर पाता. फरमाइश यह कि वह रोज-रोज दाल नहीं खा सकती और पति से सब्जी लाने को कहती है, जिसे वह नहीं ला पाता. आज की सरस्वती के लिए यह कहानी अजीब लगेगी, जो आठ रुपये किलो के भाव से दाल भी नहीं खरीद पाती. ऐतिहासिक रोमांस के अंतर्गत चार कहानियां हैं. **'गोरा हट जा'** में भरतपुर किले पर अंग्रेजों के आक्रमण के प्रतिकार का प्रसंग है.

दूसरे दौर के साहित्यिक वातावरण में लोगों को आजादी **'सिल सी'** लगने लगी और कुछ लोग चतुराई से सिल पर पाल्थी मारकर बैठ गये. कुछ उनके झब्बों से लटक गये और बाकी सिल के नीचे दबते-पिसते गये. जो पाल्थी मारकर बैठे थे वे नार्म्स तय करते थे और सम्मान पुरस्कार बांटते थे, जिसका लाभ स्वयं उन्हें और झब्बों से लटकने-वालों को मिलता था. जो सिल के नीचे दबे थे, उन्होंने विद्रोह की मुद्रा अपनायी. चूंकि यादवेंद्र सिल के ऊपर पाल्थी मारकर बैठने वालों में नहीं थे, [illegible] कहानियों में विद्रोह के स्वर का अधिक मुखर होना स्वाभाविक था. **'अकाल आकृतियां'** में वे राजस्थान के सूखे का भयानक चित्र प्रस्तुत करते हैं और अकाल राहत कार्य से साख बनाने वाली सरकार तथा पुण्य कमाने वाले सेठों का भोंडापन चित्रित करते हैं. **'वे दोनों'** में वे दिखाते हैं कि गांव में चमड़े का ठेका व्यापारी को मिल जाने के बाद लालिया और बिजली किस तरह ठेकेदार को आधी मजदूरी कमीशन में देकर काम करने को मजबूर होते हैं. **'जाल'** में सुंदर औरतों के पतियों को नौकरी देने वाले धनपति का चित्र है. **'दर्द का दायरा'** कहानी आदिवासी किसानों के भयानक शोषण की कहानी है. इसमें किसान अपनी जवान लड़कियों को सरकारी अफसरों के साथ सोने के लिए भेज देता है. **'महापुरुष'** में नेताओं की लंपटता पर तीखा प्रहार किया गया है. **'बारूद के ढेर'** और **'विनाश में जन्म'** में हड़ताली शिक्षकों और मजदूरों के संघर्ष और उन पर पुलिस द्वारा किये जाने [illegible] को दिखाया गया है. **'अपराधगाह** [illegible] लेखक सारी व्यवस्था को जेल की तरह मानता है और एक प्रदर्शन के सिलसिले में जेल में जाकर जिस दहशत का अनुभव करता है, वैसी ही दहशत वह मंदिर, कालेज और अन्य जगहों पर अनुभव करता है.

इस दौर की स्त्री-पुरुष संबंधों की कहानियों में भी दृष्टि का बदलाव दिखाई देता है. अधिकांश कहानियों की समस्या काम तृप्ति की नहीं, भूख की है. **'धापली'**, **'गोमली'** **'जारिणी'**, **'अजीबदास'**, **'गिद्ध'**, **'तीसरा बिस्तर'**, **'दुखियारा'** और **'पीटर बहुत बोलता है'** आदि कहानियां सेक्स से अधिक आर्थिक विवशताओं की कहानियां हैं. □

इक्यावन कहानियां : यादवेंद्र शर्मा चंद्र; प्रकाशक : पुस्तकायन, 2 अन्सारी रोड, नयी दिल्ली 2; मूल्य : 110 रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवितराम की वापसी

राकेश वत्स

गपशप की जमीन पर साहित्य जगत की हलचल को तीसरी नजर से देखने का प्रयास इस स्तंभ का लक्ष्य है, लेकिन यह तीसरी नजर न तो पत्रिका की है न संपादक की. यह नजर है राकेश वत्स की. और इस बार यह नजर पड़ रही है मध्यप्रदेश की साहित्य और कला परिषदों की दो पत्रिकाओं पर. . .

मध्यप्रदेश कला परिषद और साहित्य परिषद की दो पत्रिकाओं 'पूर्वग्रह' और 'साक्षात्कार' के तीन अंक आजकल काफी चर्चा का विषय बने हुए हैं. ये अंक जैसा कि ... की निजी जरूरतों को देखते हुए स्वाभाविक ही था, पूरी तौर पर कविता पर केंद्रित हैं और कविता की ताकत पर विश्वास रखनेवाले शक्तिसंपन्न लोगों की राजाश्रयी कोशिशों का नतीजा है.

इन अंकों में समकालीन कविता को लेकर जन्मी घोर निराशा और व्यर्थताबोध को भुलाने, दबाने और चमकाने के कई जोरदार प्रयास किये गये हैं. समीक्षा की वर्तमान दशा के प्रति निराशा व्यक्त की गयी है और कहीं-कहीं कवितेत्तर विधाओं, विशेषकर उपन्यास और कहानी पर संदर्भहीन हमले भी किये गये हैं.

मोटे तौर पर रुझान यह पैदा किया गया जान पड़ता है कि कविता जो गहरे राजनीतिक षड्यंत्र के कारण राजा राम की तरह निर्वासित कर दी गयी थी, उसे वापस लाने और फिर से केंद्रित गद्दी पर आरूढ़ करने की भरसक कोशिश की जानी चाहिए. इसके लिए दो विरोधी शिविरों के बीच (ये दक्षिण-वाम हैं या प्रगतिशील और जनवादी, यह स्पष्ट नहीं है) ... रा शिविर बनाये रखना चाहिए, ... से साहित्य के गणतंत्र (प्रजातंत्र) की र... की जा सकती है.

पूरी किलाबंदी के बावजूद यह भी जरूरी समझा गया है कि 'पैशन' और 'आवेग' को निरस्त करके इनकी जगह यथार्थ की पार्थिव और सपाट समझ को तरजीह देनेवाली शक्तियों को निशाना बनाया जाये. इन शक्तियों में से उपन्यास और कहानी को सबसे ज्यादा नामुराद समझा गया है, क्योंकि ये मुक्तिबोध की तरह 'फैसला करो कि तुम किस तरफ हो' की तरह फैसला करने की प्रेरणा देती हैं. सोचा गया कि सबसे पहले इन्हीं की जड़ों में तेल डाला जाना चाहिए.

और यह तेल श्री कुंवर नारायण अपने लेख 'सामाजिक यथार्थ और कविता का आत्मसंघर्ष कुछ नोट्स' के पांचवें नोट के ज़रिये कैसे डालते हैं: "एक उपन्यास या कहानी में लेखक के व्यक्तित्व का हस्तक्षेप न्यूनतम भी हो सकता है, जबकि एक कवि अपने पूरे पैशन के साथ सामाजिक यथार्थ में हिस्सेदारी रखता है और—अपने व्यक्तित्व का वह अतिरिक्त आयाम देता है, जिसके बिना कविता सपाट और व्यक्तित्वहीन हो जायेगी.

लेखक के व्यक्तित्व के हस्तक्षेप की न्यूनता वहां पैदा होती है, जहां अपने सामाजिक व्यक्तित्व की अपने-आपको ही सही समझ होने की बजाय उसे 'पैशन' या 'आवेग' के बहाव में त्वरित अभिव्यक्ति मिलती है. कवि को यह सहूलियत अपेक्षाकृत ज्यादा है, क्यों कि कविता में बात को ढकी-मुंदी रखने के कौतुक को ही आर्ट या क्रियेशन समझ लिया जाता है. उपन्यास और कहानी में लेखक का सामाजिक व्यक्तित्व स्पष्ट होकर सामने आता है. वहां छद्म के लिए कम से कम गुंजाइश रहती है. यही कारण है कि समकालीन कविता चंद लोगों की एक खास जहनियत तक ही सिमटती चली गयी है, जबकि उपन्यास और कहानी ने विरोधी जहनियतों के बीच मंच बनाने का खतरा लेकर पाठकों के बहुत बड़े वर्ग तक अपना विस्तार किया है.

'पूर्वग्रह' ने जिन कविताओं द्वारा बकौल अशोक वाजपेयी 'खतरों से भरी मान्यताओं' की पैरवी करनी चाही है, उन्हें भिन्न प्रकार के मोटे-पीले कागज पर इस तरह अलग से छापा गया है जैसे टीवी पर चल रही किसी फिल्म के मोहक दृश्य पर 'सूटिंग-शर्टिंग' का विज्ञापन चमकाया गया हो. 'कविताएं 1984' शीर्षक के अंतर्गत छपी कविताओं में कुंवरनारायण की कविताएं भी हैं और विनोदकुमार शुक्ल की भी. कौन हैं ये विनोदकुमार शुक्ल? शायद वे ही हैं, जिनके 'नौकर की कमीज' शीर्षक उपन्यास को इन्हीं शक्तियों द्वारा गैस की आतिशबाजी की तरह आसमान से उड़ाया गया था. उसको उडाने में उपन्यास के प्रकाशक की भी खासी साझेदारी थी. अब जरा इन कविता के पैशन का मुलाहिजा कीजिए—

नदी इस किनारे केवल / या उस किनारे / या अंधकार ही पूरी वह / प्यार में नदी समझ में नहीं आती / नदी में भीगने से / लगता है / ... में भीगा / बिना छाता लिये जब कभी / टहलने निकला / बाढ़ में डूबी उल्टी नाव की / छत के नीचे / हमारा घर बसा है.

लगता है कि अज्ञेय की स्कूली जीवन में लिखी कविताएं खो गयी होंगी और वे विनोद जी के हाथ लग गयी होंगी. उपन्यास और कहानी के सामाजिक यथार्थ को इन कविताओं के नितांत वैयक्तिक यथार्थ के बल पर अपदस्थ करने की कल्पना कितनी हास्यास्पद लगती है और बचकानी भी.

अब एक कविता कुंवरनारायण की भी हो जाये, शीर्षक है 'पालकी' : **कंधे धरी यह पालकी / किस कन्हैया लाल की? / इस गांव से उस गांव तक / नंगे बदन, फेंटा कसे / यह कर्ज पुश्तैनी अभी रिश्ते हजारों साल की कंधे धरी. . . / इस पांव से उस पांव पर / ये पांव बिबाईं फटे / कंधे धरा किसका—महल? / हम नींव पर किसकी डटे / यह माल ढोते थक गयी तकदीर खच्चर-हाल की / कंधे धरी. . . / फिर एक दिन आंधी चली / ऐसी कि पर्दा उड़ गया / अंदर न दुल्हन थी, न दूल्हा / एक कव्वा उड़ गया / तब भेद जाकर यह खुला- हमसे किसी ने चाल की / कंधे धरी यह पालकी लाला अशर्फी लाल की.**

निश्चय ही यह कविता शुक्ल की कविता की निसबत ज्यादा पायेदार है, लेकिन किसी 'पैशन' की वजह से नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ की समग्रता की समझ की वजह से. सार्थक रचना में से गुजरना किसी दुर्घटना या सुघटना में से गुजरने की तरह होना चाहिए. चाहे वह यात्रा मानसिक तौर पर ही क्यों न हो. सृजनात्मकता की यह क्षमता कविता में भी हो सकती है और कहानी तथा उपन्यास में भी, लेकिन उपन्यास में अनुभवों की बहुमुखता का हस्तक्षेप ज्यादा हो सकता है, कविता की निसबत.

(अगले अंक में 'पूर्वग्रह' के कहानी अंक पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

सारिका
टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

कहानियों और कथाजगत की जीवंत पाक्षिकी
वर्ष : 25; अंक : 384; प्रथम पक्ष जुलाई 85

संपादक
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
सज्जा
सुमीता

प्रतिनायक कहानी अंक

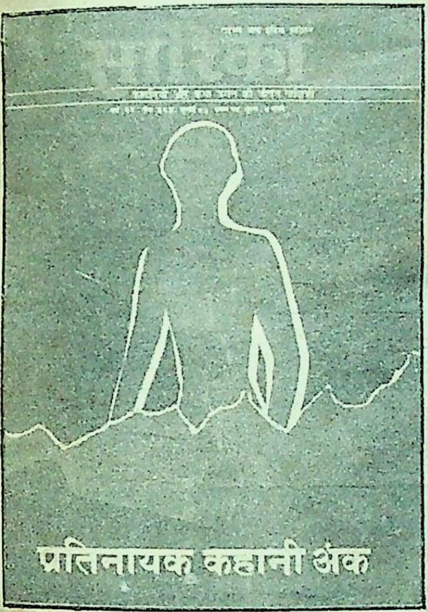

आवरण : सुमीता

कहानियां

18 मस्ते मिर :
कृश्न चंदर
21 कविता और रोटी :
उमेश अग्निहोत्री
29 वेटर, एक बीयर और
गाई द मोपासां
37 प्रेतछाया :
हरीश पाठक
41 दुख :
एंतोन चेखव
46 यह कहानी नहीं :
अमृता प्रीतम
49 तमाशा :
जीलानी बानो
50 डैडी नंबर लगाते थे
लुई एम. मेरीवेदर
52 गवाह :
दिनेश त्यागी
59 उसकी इच्छा :
ओ. हेनरी
61 मामूली लोग :
हेनरिख ब्योल
62 मार्खीम :
राबर्ट लुई स्टीवेंसन

रेखाचित्र

10 विपर्यांतर :
फणीश्वरनाथ रेणु

विशेष

26 चोर-चोर-चोर! :
(लोक-साहित्य)
34 अ-चरित्र और कहानी
चंचल

आत्मावलोकन

64 हड़ताल :
भैरवप्रसाद गुप्त
67 हड़ताल : अविश्वसनीय मगर सच
रमेश उपाध्याय

आते हुए लोग

68 रोशनी की ओर
ऋषि प्रियदर्शी

उपन्यास

14 अजनबी :
आल्बेयर कामू
32 अंधा उल्लू :
सादेह हिदायत
40 कालचक्र
प्रफुल्ल राय
54 रात का मेहमान
मनोज बसु

स्थायी स्तंभ

5 आपकी बात
7 बहस
9 अपनी बात
72 पखवारे की पुस्तकें
74 हलचल

संपादकीय पता : 'सारिका, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar